

व्रत-तिथि-निर्णय

ॐ स्वस्ति नमो भगवते वासुदेवाय ॐ
ॐ स्वस्ति नमो भगवते वासुदेवाय ॐ
ॐ स्वस्ति नमो भगवते वासुदेवाय ॐ
ॐ स्वस्ति नमो भगवते वासुदेवाय ॐ

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

शानपीठ मूर्तिदेवी-संस्कृत-ग्रन्थमाला नाम
डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए० डी० लि०
डॉ० ए० एन० उपाध्याय, एम० ए० डी०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री, भारतीय शानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, गोरख

प्रथम सम्स्करण

१९५६ ई०

मूल्य तीन रुपये

आम्रम
ज्ञानमण्ड
श्रीरचोरा, बन

पूज्य गुरुदेव
श्रीमान् पण्डित रत्नाग्रचन्द्रजी मिद्वान्तशर्मा
के वरवर्मामें
मादर समर्पित

भक्तान्त
नेमिचन्द्र दासजी

विषय-सूची

प्रस्तावना	११
ग्रन्थवा प्रास्ताविक	६७
तिथिमानके लिप् हिमाद्रि और कुशाग्रिमत्	६८
मासलिक कार्योंके लिप् प्राज्ञ उत्तरावण	७०
मास, पक्ष और तिथि गणना	७१
तिथिके सम्बन्धमें केसवसेन और महासेनका मत	७२
गान, अध्ययन और पौष्टिक कार्योंके लिप् तिथि-न्यवस्था	७५
इष्ट भेष्य हुताशन सञ्चक तिथियाँ	७६
शून्यसञ्चक तिथियाँ	७७
सूयदग्धा तिथियाँ	७८
चन्द्रदग्धा तिथियाँ	७८
तिथि प्रमाणके लिप् पद्मदेवका मत और उसका उपसंहार	७९
एक ही दिन कई तिथियाँ होनेपर मत तिथिका व्यवस्था	७९
वेदा तिथिका लक्षण	८०
ग्रहोपनयन आदि कार्योंके लिप् तिथिमान	८१
शुभ कार्योंमें खाल	८३
शुभ कार्योंके लिप् पञ्चाङ्गानुद्धि	८३
नभग्रनामावली	८३
नभग्रोही सञ्चार	८४
योगोशी नामावली और उनके अशुभ भाग	८४
विभिन्न कार्योंके लिप् वारन्यवस्था	८५
मतके लिप् छद्मगी प्रमाणतिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष	८६
मत विधिका आवश्यक अंग—समयानुद्धि	८७
तिथिद्वयमें मतविधान करनेका नियम	८८
नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान भेद	८९
रसावली और पञ्चावली मत	९०

द्विकावलीव्रत	९१
आकाशपद्मी	९१
चन्दनपट्टी	९१
नैशिक व्रतोंके लिए तिथि-व्यवस्था	९२
दशलाक्षणिक और अष्टाद्विक व्रतोंमें बीचकी तिथि क्षय होनेपर व्रत व्यवस्था	९२
पञ्चाशनके लिए तिथि विचार	९७
षोडश कारण और मधुमालाव्रतका विचार	१००
मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ	१०३
रत्नप्रयव्रतकी तिथियाँका निर्णय	१०५
मुनिमुव्रत पुराणके आधारपर व्रत तिथि का प्रमाण	१०७
व्रततिथिके निगयके लिए निगयसिन्धुके मतका निरूपण तथा खण्डन	१०८
तिथिवृद्धि होनेपर व्रतोंकी तिथिका विचार	११२
तिथिवृद्धि होनेपर व्रत व्यवस्था	११४
मरुव्रतकी व्यवस्था	१२०
व्रततिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत	१२३
भूलसप्त और सनगणके आचार्योंके मतानुसार तिथि-व्यवस्था	१२४
दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनारकी अवधि का निर्णय	१२७
व्रततिथिके निगयके लिए अन्य मतान्तर	१३०
व्रततिथिके लिए विभिन्न मत	१३४
चूर्तियांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी जाखोजना	१३७
षष्टोदश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमें तिथि माननेवाले मतकी समीक्षा	१४०
व्रतके आदि मध्य अन्तमें तिथिक्षय होनेपर अन्नदेवका मत	१४२
तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वराका मत	१४४

मततिथिका प्रथमा	१४६
शुभ कृष्णोंके लिए शुक्र और गुरुका भोग	१४९
शुक्र और मूय शुद्धिका विचार	१५०
प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके मतका व्यवस्था	१५१
शुक्र और रात्रिके मुहूर्तोंका प्रमाण	१५१
शुक्र मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५२
द्वितीय इति मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५२
शुक्राव सप्त मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५२
चतुर्थ सारभट्ट मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५३
पञ्चम दैत्य मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५४
षष्ठ वैरोधन मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५४
सप्तम वैश्वदेव मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५५
अष्टम अभिजित् मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५५
नवम रोहण मुहूर्तमें विधेय कार्य	१५५
राम, लकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश और पञ्चदश मुहूर्तोंके स्वभाव और उनमें विधेय कार्य	१५६
विधिदास हानवर मृताया मन्त्रका विधान	१५७
मर्तोंके भेद, निररधि मन्त्रांक नाम तथा कर्मका द्वापन	
मन्त्री परिभाषा	१५८
त्रितमुलावर्णान्न मन्त्र	१६०
मुलावर्ण मन्त्रके भेद और उनका व्यवस्थापन	१६१
सप्तोऽक्षरि मन्त्रका लक्षण	१६२
त्रितमुलवर्णोक्त मन्त्री विधि	१६४
मुलावर्णी मन्त्री विधि	१६६
द्विजावली मन्त्री विधि	१६६
चतुर्दशवर्णी मन्त्र व्यवस्था	१६९
चक्रवर्णीमन्त्री विधि और फल	१७०

सायधि व्रतोंके भेद	१७१
सुगचिन्तामणिव्रतका स्वरूप	१७२
तिथिदास और तिथिगुद्धि हानेपर सुगचिन्तामणिव्रतकी व्यवस्था	१७३
अष्टाद्विंशदि व्रतोंमें तिथिक्षय होनेपर पुन व्यवस्था	१७५
मासाधिक हानेपर भावसरिर त्रियाका विधि	१७६
अधिमासाकी तालिका	१७८
मासक्षय होनेपर व्रतके लिख व्यवस्था	१७९
तिथिना प्रमाण	१८१
व्रततिथिसे निजयमें शक्राका समाधान	१८२
अपने स्थानका तिथिमान निकालनेके लिख रेखाशानोधक सारिणी	१८४
सुकुटसप्तमीव्रतका स्वरूप	१८९
निर्दापमसमी व्रतका स्वरूप	१८९
धवणद्वादशी व्रतका स्वरूप	१९१
जिनरात्रि व्रतका स्वरूप	१९३
सुतावली व्रतका स्वरूप	१९४
रत्नत्रय व्रतकी विधि	१९५
अनन्तव्रत विधि	१९६
मेघमाला और षोडशकारण व्रतोंके करनेकी विधि	१९९
अष्टाद्विका व्रतको करनेकी विधि	२००
प्रत्येक प्रकारके व्रतका धारण करनेका सकल्पमन्त्र	२०१
व्रत समाप्तिके दिन व्रत तिसजनका सकल्पमन्त्र	२०२
दैवमिक व्रतोंका निर्णय	२०३
त्रिमुखगुद्धिव्रतकी विधि	२०३
द्वारावलोक्यव्रत	२०४
जिनपूजाव्रत, गुणमति पर्व शास्त्रभक्ति व्रतोंका स्वरूप	२०४

पञ्चदाश और प्रतिमायोग प्राज्ञा स्वरूप	२०६
नैतिक दण्डोंका वर्णन	२०७
मासिक दण्डका वर्णन	२०८
पञ्चमास अनुदानीयन, शीलचतुर्दशीयन और रूप चतुर्दशीयन	२०८
वनकालादतही विशेष विधि	२१०
रथकालादतही विशेष विधि	२११
नानदत्तामी और भावनपदासी दानकी विधि	२१४
नमस्कृत पैतामी दानकी विधि	२१७
भारतावधि दण्डोंका वर्णन	२१८
उपेक्षितिनवर दण्डका विधि	२१८
त्रिनगुणमन्त्राणि दानकी विधि	२१९
चन्द्रमण्डा दानकी विशेष विधि	२२०
होहिजादान करनेकी आवश्यकता	२२१
होहिणीदानका फल	२२१
होहिणीदानकी व्यवस्था	२२२
होहिणीदानकी विशेष विधि	२२४
मिथिपथ और निविवृद्धिम देनाकारकी प्रसादाका प्रिय	२२७
शिविदानकी विधि	२२८
शिविदानका फल	२२९
सहायकस्थान दानका विधि	२३०
शार्ङ्गमुकुट महासीमा	२३१
अभयनिधिदानकी विधि	२३२
मासिक सुगन्धदानमादान	२३३
मावसरिक दण्डोंका वर्णन	२३४
चरित्रशुद्धिमतकी व्यवस्था	२३५
मिहनिर्वादि दानकी व्यवस्था	२३६

पुरन्दर व्रतकी विधि	२३९
दशलक्षण व्रतकी विधिपर प्रकाश	२४१
तिथिक्षय होनेपर दशलक्षणव्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल	२४३
पुष्पाञ्जलिव्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल	२४४
उत्तम मुक्तायनी व्रतकी विधि	२४६
प्रकारान्तरसे सुगन्ध दशमीव्रतकी विधि	२४८
नक्षत्रनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष	२४९
मेघमाहव्रतकी विशेष विधि	२५१
रत्नत्रय व्रतकी विधि	२५२
तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय व्रतकी व्यवस्था	२५३
फाल्गुव्रतोंका फल	२५३
भद्राम्यव्रतारा घटन	२५४
उत्तम पञ्चायण व्रतोंका निर्देश	२५७
पञ्चरूपपाणक व्रततिथिबोधक चक्र	२५८
पञ्चपरमेष्ठी व्रत	२६०
संबाधसिद्धि व्रत	२६०
धनचक्र व्रत	२६०
नक्षत्रनिधि व्रत	२६१
शीघ्र व्रत	२६१
श्रेयन क्रिया व्रत	२६१
कमचूर व्रत	२६२
एशु सुखसम्पत्ति व्रत	२६२
चारद सौ चैतन्य व्रत या चारित्र्यवृद्धि व्रत	२६३
दृष्टसिद्धिकारक नि शक्य अष्टमी व्रत	२६३
कोकिला पद्ममी व्रत	२६३
त्रिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत	२६४
गुरुके समर्थ व्रत ग्रहण करनेका आदेश	२६४

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थसे उक्त कमी सयथा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अंशोंमें इस लुप्तप्राय कृति द्वारा उक्त ग्रन्थम्याम महायता प्राप्त होगी। और जयतक इस नियमपर विचारलगाय ग्रन्थ सम्पत्ति नहीं होता है, तबतक लिए यह ग्रन्थ निगयविधुने समान ॥ उपयोगी सिद्ध होगा।

त्यौहारोंकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहारोंको जैन भी अथ घमाश्लभिषोंके साथ मनाते हैं। इन त्यौहारोंका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रसंगमें कतिपय धार्मिक त्यौहारोंकी तिथि एवं विधि विधानव्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

जैन आगममें अनुसार नवीन वर्षका प्रारम्भ भावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्य ध्यानि विरी थी। यथाया गया है कि युगका प्रारम्भ, सुप्रम सुप्रमादि धीरशास्त्र जयन्ती बालचक्रका अथवा उत्तरपिणा अरुत्तरपिणी रूप कालों का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति आषाढा पूर्णिमाको होती है, पश्चात् भावण कृष्ण प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र, बालचक्रण और शैवमुहूर्तमें युगका आरम्भ हुआ करता है। यथा—

‘भावणउडुल पाडिवरइमुहुर्त मुहोदये रविणो ।

अभिनरस पडमजाण जुगसस जादी इमस्य पुढे ॥

धवला टीका, त्रिलोकसार, लोकविभाग आदि धार्मिक ग्रन्थोंमें अल्पावधि ज्योतिषकरणटक, जम्बुद्वीपप्रकृति प्रभृति ज्योतिषविषयक ग्रन्थोंसे भी उक्त कथनका समर्थन होता है।

भगवान् महावीरका प्रथम दिव्योपदेश इसी तिथिसे हुआ था। इसकी महत्ताके सम्मर्थमें श्री जुगलकिशोरजी मुस्तारका अभिमत है कि

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थसे उक्त कमी सन्तुष्टा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अशौच इस लुप्तप्राय कृति द्वारा उक्त व्यवस्था में सहायता प्राप्त होगी। और जतन इस नियमपर विशालकाय ग्रन्थ सम्मिलित नहीं होता है, तबतकके लिए यह ॥ ५ निर्णयसिन्धुने समान ही उपयोगी सिद्ध होगा।

तय्यारोंकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहाराको जैन भी अन्य धर्मावलम्बियोंको साथ मनाते ह । इन त्यौहाराका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है । इस गमगम कतिपय घामिन्न त्यौहारोंकी तिथि एवं विधि विधान यद्यथा पर प्रकाश डाला जायगा ।

जैन आगमने अनुसार तृतीय वषट्का प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरजी प्रथम दिव्य ध्वनि स्रिरी थी। यथा—

यथा— यथाया गया है कि युगका प्रारम्भ, सुपम सुपमादि कालचक्रका अथवा उत्सर्पिणी अउसर्पिणी रूप कालों का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति आप्यादी पूर्णिमाको होती है, पश्चात् श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र, गुरुग्रहण और रौद्रमुहूर्तमें युगका आरम्भ हुआ करता है। यथा—

'सावणग्रहसे पाश्र्विरुद्धमुहूर्त सुहोदये रविणो ।

अभिनवस्य पद्मनील जगत्स्य आदी इमस्त्य पुद ॥

धवला टीला, त्रिलोचनार, लोरभिमार्ग जादि धामिन् प्र योके
अलाना ज्योतिःशरण्डन, जम्बूदीपप्रशस्ति प्रभृति ज्योतिषविषयन प्र योके
भी उक्त कथनना समायन होता है ।

भगवान् महावीरका प्रथम दिव्योपदेश इसी तियरी हुआ था ।
इसकी महत्ताके सम्बन्ध था जुगलकिशोरजी सुस्तारका अभिमत है कि

[illegible]

प्राचीनतम और विचारपूर्ण हिन्दू विद्वानों में श्री १००० वर्षीय
ब्रह्म समाज है । —

[illegible]

अथारू—भारतीयोंके समुदायका एक अल्पसंख्यक भागमें लैबीय का, साठ माह और पन्द्रह दिन का रहनेपर एक भाषा समक प्रथम भर्त्तानेमें कृष्णपञ्चा प्रतिपदा दिन अर्थात् विष्णुपञ्चमी उदित रहनेपर भारतीयोंका उत्पत्ति हुई ।

श्रीरामाया अठ्ठ-टी भावना कृष्णा प्रतिपदाक। अमिन्नि नारायणे दानेपर
ही समान ३१ जानी आहिए । अमिन्नि नारायणा प्रमाण आशियस २९
मदी माना गया हे । उरणादा राधिका अतिम २७ पटिचो तथा
भवना १९६ आदिचो ४ पटिया ही अमिन्निची पटियां हाजी हें । प्राय

१ धरगढीका प्रथम भाग १० ६३ ।

२ त्रिगोपपञ्चर्गा प्रथम-विहार गाथा ६८ ६९ ।

आषाढी पूर्णिमा पूषापादाके अन्त और उत्तराषाढाके आदिमें पड़ती है। पूर्णिमाके दिन उदयमें पूषापादा नक्षत्र रहता है तथा प्रतिपदाके प्रातःकालके समय उत्तराषाढा नक्षत्र आ ही जाता है। अतएव वीरशासन जयन्ता उसी तिथिमें मनानी चाहिए जिस तिथिमें उत्तराषाढा की अन्तिम १५ घटियों तथा अरण नक्षत्रकी ४ घटियों आवें। यह स्थिति कभी कभी द्वितीया तिथिमें भी आ सकती है, क्योंकि नक्षत्रमानके अनुसार अभिजित् द्वितीयाको आ सकता है। वीरशासन जयन्तीमें अभिजित् मानकी प्रधानता है। अभिजित्मान नक्षत्रमाला गणनाके अनुसार लिया गया है और तिथि चांद्रमानके अनुसार गृहीत है। अतः दोनों मानोंका कभी कभी सन्तुलन नहीं होगा तथा कभी सन्तुलन हो भी जाया करेगा। यतः तिथि मान जितना घटता बढ़ता है, नाक्षत्रमानमें इससे कम हीनाधिकता होती है। अतः दोनों मानोंमें प्रायः एक वर्षमें ५ दिनका अन्तर होता है, इससे कभी कभी भावण प्रतिपदाके दिन—जिस दिन उदयकालमें प्रतिपदा हो, उस दिन अभिजित् नक्षत्र नहीं भी आ सकता है। इस प्रकारकी स्थितिमें द्वितीया तिथिमें ही अभिजित् पड़गा, अतः अभिजित् नक्षत्रके दिन ही वीरशासन प्रवृत्तिरा समय आवेगा। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि आषाढा पूर्णिमा सवत् २००६में मंगल चारको २० घटी १५ पल है। इस दिन मूल नक्षत्रका प्रमाण १८ घटी १५ पल है तथा बुधवारको प्रतिपदा १५ घटी ३० पल है और पूषापादा २० घटी ३० पल है। इस स्थितिमें वीरशासन जयन्ती किस दिन मनाई जानी चाहिए।

मंगलवारको पञ्चाङ्गम अंकित पूर्णिमा २०।१५ है। अतः वहोरात्र प्रमाणमेंसे पूर्णिमाको घटाया तो अनंकित प्रतिपदाका प्रमाण हुआ—
 $(६० - २०।१५) = ३९।४५$ अंकित प्रतिपदा, इसमें पञ्चाङ्ग अंकित प्रतिपदाको जोड़ा तो $३९।४५ + १५।३० = ५५।१५$ कुल प्रतिपदा। किन्तु बुधवारको १५ घटी ३० पल ही प्रतिपदाका मान है। इस दिन मूल निकालना है कि कौन सा पद्धत है। $(६०।० - १८।१५ =$

४१।८' अनर्कित पूजापादा, अतः ४१।४५ + २०।३० पञ्चाङ्ग अंकित
 = ६२।७५ मूवापादाया कुल मान हुआ, किन्तु बुधवारका २० घण्टी
 २० पल ही पूवापादा है। इसके पश्चात् उत्तरापादाका आरम्भ हो
 जाता है। अतः बुधवार को (६०।०—२०।३०) = ३९।३०
 उत्तरापादा है। बुधवारको भ्रमण नहीं आ सकेगा, अतः भ्रमणकी
 प्रथम चार घटिया हमें नहीं मिलेंगी। ऐसी स्थितिमें अभिजित् नञ्च,
 जो कि उत्तरापादा और भ्रमणके सयोगसे निष्णात होता है, शुद्धगर्भो
 मिलेगा। इस दिन द्वितीया तिथि हो आयगी, एही स्थितिमें धीरे
 शासन जयन्ती गुरुवार द्वितीयाको ही मनानी होगी। निश्चय यह है
 कि चारशासन जयन्ती अभिजित् नञ्चक होनेपर ही सम्पन्न करना अधिक
 उचित है। यह काल मध्यममानसे प्रायः सबदा प्रातः ८९ बजे मध्यम
 आयगा। अतएव इसदिन भगवान् महावार स्वामीका पूजा करना,
 उपवास करना तथा भगवान्के उपदेशों का प्रचारके लिए सभा आदिका
 आयोजन करना चाहिए। साधारणतया जिसदिन प्रतिपदा पञ्चाङ्गमें
 उदयकालमें हो रहती है उस दिन प्रायः अभिजित् नञ्च भगवान् ही जाता
 है। अतः यहाँ प्रतिपदाका मान उदयकालीन ही ग्रहण करना चाहिए।
 दो प्रतिपदाएँ होनेपर जो प्रतिपदा उदयकालमें १० घण्टा या इसमें अधिक
 हो, उसीमें यह दिन पड़ता है। अतएव अभिजित् नञ्चके आनेपर ही
 प्रतिपदाको ग्रहण करना शास्त्रसम्मत है और यही धर्मतीर्थके प्रवर्तनका
 काल है।

भगवान् पञ्चनाथ भगवान् पञ्चनाथका निवाणदिवस प्रायः सारथ
 का निवाणदिवस मनाया जाता है। भगवान् पञ्चनाथका निवाणक
 सम्बन्धमें बताया गया है—

सिद्धमत्तर्मापदोसे भावणमामग्नि जम्भणभवत्ते ।

सम्मन्ने पामन्तिणो उत्तीसज्जुणे गद्दा मोक्ख ॥

—तिलोपण्णत्तो ८।१२०७

अर्थात्—पादनाथ जिनेन्द्र भावण मासमें शुक्ल पक्षकी एतमीका

अथात् उपासना माना गया है। यह निश्चित है कि तिथ्योपपत्ती उत्तर पुराणसे पहलेकी रचना है तथा भगवान्ने त्रिगणकालकी मान्यता प्रदोषकालकी अधिक प्रामाणिक है। प्रदोषकालमें निर्माण होनेसे भी निवागोत्सव वनटामें प्रातःकाल ही होता चला आ रहा होगा। इसी कारण उत्तरपुराणकारने भगवान् पार्श्वनाथका त्रिगणकाल उपासना मान लिया है। अतएव भगवान् पार्श्वनाथका त्रिगणोत्सव समी तिथिरी रात हो जानेपर अष्टमीने प्रातःकालमें होना चाहिए। यदि सप्तमीको विद्यासा नक्षत्र मिल जाय तो और भी उत्तम है, अपथा सप्तमीकी समाप्ति होनेपर अष्टमीकी प्रातःकालमें सूर्योदयसे पूर्व ही त्रिगणोत्सव सम्पन्न करना अधिक शास्त्रसम्मत है। यहाँ अष्टमी तिथिका आरम्भ नहीं माना जायगा, क्योंकि सूर्योदयके पहले तक सप्तमी ही मानी जायगी। इस प्रकारके उल्लेखोंमें उदया तिथि ही ग्रहण की जाती है। जिन स्थानोंपर पट्टीकी समाप्ति और सप्तमीके प्रातः में निवागोत्सव सम्पन्न किया जाता है, वह भ्रान्त प्रथा है। इसी प्रकार अष्टमिकमें निवागोत्सव मनाना भी भ्रान्त है।

रक्षाबन्धन पर्वकी कथा प्रायः विदित है। इस दिन ७०१ मुनियोंकी रक्षा होनेके कारण ही यह पर्व रक्षाबन्धनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। हरिवंशपुराणके बीगने नाममें मुनि विष्णु कुमारका आख्याता आया है। रक्षाबन्धनकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें उदया तिथि ही ग्रहण की गई है। इसका प्रमाण कारण यह है कि उदयकालीन पूर्णिमा जिस दिन होती, उस दिन भवण नक्षत्र आ ही जायगा। गणितका नियम इस प्रकार का है कि चतुर्दशीकी रात्रिको प्रायः भवण नक्षत्र आ ही जाता है। भुवसागर मुनिने मिथिलामें चतुर्दशीकी रात्रिको भवण नक्षत्रका कम्पन देखा था। आराधनाकथाकोशमें बतलाया गया है—

मिथिलाधामाय ज्ञानी धृतमागरवद्रवाह् ।

मुनीन्द्रा वशमि नक्षत्रं भवणं धमणात्म ॥

वर्षमान समालोक्य हाह्यार विधाय च ।

उपसर्गा मुनीन्द्राणां घतते महता महान् ॥

इससे स्पष्ट है कि श्रवण नान्न चतुदशीकी रातमें प्रायः आ जाता है । गणितसे भी श्रवण चतुदशी सव्याकालमें आ ही जाता है । परन्तु यह चतुदशी भा उदया द्वितीयादि । उदयकालमें एकाघ घटी होने पर भी चतुदशीकी रातमें श्रवण आ जायगा । अतः श्राव धन पूर्णिमाको श्रवणके रहते हुए सम्पन्न किया जायगा ।

इस पर्यन्त दिन पिण्डुमार मुनिकी पूजाके पश्चात् यशोपवीत बदलौकी किया भा सम्पन्न की जाती है । बताया गया है—

श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे पूष्यजिह्वाम् ।

पूरुहोमादिकं कुर्यान्मासि कल्या परित्यज्येत् ॥

श्रावण मासमें पूर्णिमाके दिन श्रवण नक्षत्र होने पर हवन, पूजन आदिके पश्चात् यशोपवीतको बदलना चाहिए । ज्योतिषशास्त्रमें भी आया है—

समाप्ते श्रावणस्यान्ते पञ्चमास्यां दिनोदये ।

स्नानं कुर्यात् मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ॥

हवन करते समय इस रातका ध्यान रखना होगा कि हवामें भद्रा न हो । भद्राकालमें हवा करना वर्जित है । अतः पूर्णिमा को जिस समय भद्रा हो, उस कालका त्यागकर अन्य समयमें हवन किया सम्पन्न करनी चाहिए । यदि प्रातः काल भद्रा हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नोत्तर भद्रा होने पर प्रातः हवा काय कर लेना चाहिए ।

१—मद्राया द्वे न कृत्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।

श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥

×

×

×

नित्ये वैमिक्तिके जप्ये होमे यन्त्रन्यासु च ।

उपाक्रमणि श्रोत्सर्गं ग्रहवेधो न विद्यते ॥

साधारणतया भद्राके अमासमें हवन मध्याह्नोत्तरकालमें किया जाता है। बताया गया है “ततोऽपराह्णमये हवनकार्यं यज्ञोपवीतधारणकार्यञ्च करणीयं प्रतिर्है ।” अतः अपराह्णकालमें अथवा एक बजे हराकायकी सम्पन्न करना चाहिए।

यज्ञोपवीत बदलनेका मात्र यह है—

ओं नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नप्रथस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु भर्ते नमः स्वाहा।

प्रती व्यक्तिर्षोको—रक्षावधनवका मत करनेवालोंका पूणिमाका उपवास करना चाहिए। इस दिन विष्णुसुमार मुनिकी पूजा तथा अथ गुह्यभोक्ती पूजाके पदवात् मयाहमें हरिउग्रपुराणका स्वाध्याय करना चाहिए। तीनों कालोंमें “ओं ह्रीं भर्ते धीषद्भ्यः नमः” कर्ममन्त्र विधूतन सर्वशान्तिपालमस्त्योपवदन् कुद कुद स्वाहा” मंत्रका जाप करना चाहिए। रात्रि जागरण करते हुए भस्मामस्ताका पाठ एव कल्याणमन्दिरस्तोत्रका पाठ करना चाहिए। प्रातः प्रतिपदाके दिन नित्य कमसे निवृत्त होकर भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजाके उपरांत गमोकार मंत्रकी तीनों मालाएँ जपनी चाहिए। अनन्तर एक अनाज का भोजन—दूध भात या भात-दहा अथवा रात दूधका आहार करना चाहिए। नमक, मीठा, फल और शाक-सब्जीका त्याग इस दिन करना होता है। केवल एक अन्नस पारणा की जाती है। यह व्रत आठ वर्षों तक किया जाता है, पश्चात् उत्थापन कर दिया जाता है। इस दिन भेषासनाथ भगवान्का निवाण भी हुआ है।

भाद्रपद मासमें ओक पर और व्रत हैं, किन्तु उनका विवेचन व्रतोंके अन्तर्गत किया जायगा। इस महीनेके केवल वामुपूज्य निगणोत्तमकी व्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है। वामुपूज्य स्वामीने निवाणोत्तम दिवसके सम्बन्धमें आचार्योंमें मतभिनता है। तिलोय पण्णत्तीमें बताया गया है—

वामुपूज्य-निवाण
दिवस

पञ्चगुणग्रहले पचमि अग्रहो अस्मिणीसु चंपाप् ।
ग्याहियउसयमुदो सिद्धिगदो घासुपुज्जजिणो ॥

अथात् वासुपूय जिनेद्र फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीके दिन अपराह्नकाल में अदियागी नक्षत्रक रहते छह सौ एक मुनियोंसे युक्त होते हुए चम्पापुर से सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।

उत्तरपुराणमें उपयुक्त मायता दिखलाई पड़ती है । उसमें बतलाया गया है—

अग्रमन्दरशीलस्य स्नानुस्थानविभूषणे ।
वने मनोहरोद्याने पल्पहासनमाभित ॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्नाचतुदश्यापराह्नके ।
विशाखाया ययौ मुक्तिं चतुणवतिमयते ॥
परिनिर्वाणकरपाणपूजाश्रान्ते महोत्सवे ।
अवन्दिपत ते देव देवा सेवाविचक्षणा ॥

—उत्तरपुराण पर्व ५८, श्लोक० ५२ ५४

अर्थ—जब भगवान् वासुपूय स्वामीकी आयुमें एक मास अवशेष रह गया तब योग निरोधकर रजतमालिका नामक नदीके किनारेकी भूमि पर वर्तमान मन्दरगिरिकी शिखरकी मुशोभित करनेवाले मनोहरोद्यानमें पल्पहासनसे स्थित हुए तथा भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अपराह्नके समय विशाखा नक्षत्रमें चौरानने मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए सेवा करनेमें अत्यन्त निपुण देवोंने निवाणकल्याणरक्षा पूजाके उपरान्त बड़े उत्सवके साथ भगवान्की वन्दना की ।

यद्यपि प्राचीनताकी दृष्टिसे वासुपूय स्वामीका निवाणोत्सव फाल्गुन कृष्ण पञ्चमीको ही मनाया जाना चाहिए, किन्तु ज्योतिषशास्त्रकी गणना अनुसार फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीको अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति नहीं घटित

होती है। क्योंकि यह नियम है कि प्रत्येक महीनेकी पूर्णमासीको उस महीनेका नक्षत्र अवश्य आ जाता है। पूर्णिमाओंके दिन पड़नेवाले नक्षत्रोंके नामोंके आधारपर महीनोंका नामकरण किया गया है। जैसे चैत्र महीनेकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र पड़नेसे यह मास चैत्र कहलाया, अगली पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्र पड़नेसे अगला मास वैशाख कहलाया, इससे अगले महीनेकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र पड़नेसे यह अगला मास ज्येष्ठ हुआ। इसी प्रकार आगेके महीनोंका नाम भी पूर्णमासियोंके नक्षत्रोंके आधारपर रखा गया है। इस स्थितिके आधारपर विचार करनेसे अवगत होता है कि पास्तुन पूर्णिमाको पूर्वपास्तुनीका अन्त और उत्तरपास्तुनी का आरम्भ होना चाहिए। अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति पास्तुन शुक्ल पञ्चमीकी आती है। अतः नक्षत्र और तिथिका समन्वय पास्तुन शुक्ल पञ्चमीकी हो जाता है। इस प्रकाशमें हम इस निकषपर भी पहुँचते हैं कि 'कमुणबहुले' के स्थानपर 'कमुणमुक्के' पाठ होना चाहिए, 'मुक्के' के स्थानपर 'बहुले' पाठ भ्रमसे रखा गया है।

अब उत्तरपुराणकी मायतापर विचार किया जाता है। उत्तरपुराणमें भाद्रपद शुक्ल चतुदशीकी विशाखा नक्षत्र पड़ने हुए वासुपूज्य स्वामीका निवाण बतलाया गया है। ज्योतिषकी गणनानुसार विशाखा नक्षत्र भाद्रपद मासमें चतुदशीके दिन कभी नहीं पड़ सकता है। यह भाद्रपदमें सर्वदा शुक्ल पञ्चमी पञ्चमी या पञ्चमी पड़ेगा। क्योंकि इस महीनेकी पूर्णिमा पूषाभाद्रपद या उत्तराभाद्रपदमें होगी। चतुदशीके दिन शतभिषा या पूषाभाद्रपदमेंसे कोई भी नक्षत्र रह सकता है। सञ्ज्या समय तो पूषा भाद्रपदकी स्थिति आ ही जाती है। अतः विशाखा नक्षत्र चतुदशीको कभी नहीं पड़ा होगा। उत्तरपुराणकी अन्य तिथियोंका मेल भी नक्षत्रोंके साथ नहीं बैठता है। तिलोत्पण्णत्तीने प्रायः सभी नक्षत्र तिथियोंसे मिल जाते हैं। एकाध स्थलपर अशुद्ध पाठ आ जानेसे तिथि-नक्षत्रोंमें समन्वय नहीं हो पाता है, पर शुद्ध पाठ रख देनेसे समन्वय आ जाता है। अतः उत्तरपुराणकी मायता अशुद्ध मादम पड़ती है। अथवा उत्तरपुराणके

पाठः 'दिग्गताया' के स्थानपर 'पूष्याया' पाठ रखा जाय तो यह तिथि ठीक मानी जा सकती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यत्तमात्रकाष्ठमें समाजमें उत्तर पुष्पाया का रत्नाका हा प्रसार करने क्यों दिग्गतायी पड़ता है? तिलोर पुष्पाया की प्रकाश शेष क्यों हो गया? इससे यह कारण है। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि 'तिलोरपुष्पायी' माघ ही बहुत समपत्तक समाजक समीप ही आया। अनुचित रहने के कारण साक्षात्धारण उगरे आरंभ ही रहे। दूसरी बात यह भी है कि तिलोरपुष्पायी कल्याणयोग का प्रथम प्रारंभ भागमें है, अतः इसका स्वाध्याय प्रायः बन्द ही रहा। उत्तरपुष्पाया वैशाखिक माघ है, अतः इसके स्वाध्यायका प्रचार सभी प्रकारके विधियोंके ही हो जाता रहा। वस्तुतः उत्तरपुष्पायाका माघमास दिग्गता के कवियों, पाठकों तथा अन्य समस्त व्यक्तिगतक पैरु गढ़। जिसके सम्बन्धमें आज समाज विज्ञानोन्मेष इस माघक आधारपर समाजमें प्रवर्तित है।

प्रचलित मान्यताके अनुसार इस तिथिनिर्णयको चतुर्दशीकी संध्याके समाज में करना चाहिए। जिस दिन अस्तित्वकालमें चतुर्दशी मिले, उसी दिन समाजका सम्मेलन किया जाए।

अब आगे अभियान यह है कि समाज विज्ञानोन्मेष 'तिलोरपुष्पायी' के अनुसार करना चाहिए। जैनाभाष्यमें उत्तर का पौर्णमासी अर्थात् पूष्य मासिका के दिग्गता प्रकाशक माना गया है। यदि कार उत्तरमासियोंका नियत पूष्य मासिक समाज भिन्नता रखा है, तो उस भिन्नता पूष्य मास ही प्रकाशक है। अर्थात् तो समाज अनुसार कार्य करना चाहिए। अतः पूष्यमास समाजका तिथि वास्तुतः सुझाव पञ्चमीको सम्मान देना उचित माना है।

अतः पूष्यमास उत्तरमासिक दिग्गताका समाज तिथि होना चाहिए। उत्तरमास समाजका तिथि है। अतः समाजका दिग्गता कार्य


और द्वितीय चतुदशी, जो हि वस्तुन अमावस्या है, उसके प्रातः कालमें मनाया जायगा। यहाँ सबसे बड़ी नियामक बात स्वाति नक्षत्रकी है, जिस दिन स्वातिका योग चतुदशीके अवसानमें प्राप्त हो, उसी दिन निवाणोत्सव सम्पन्न करना चाहिए। अमावस्याके उदयमें तो स्वाति आता है, पर राततक नहीं रहता है। अतएव चतुदशीके समाप्तिकादमें स्वाति नक्षत्रके रहनेपर यह उत्सव सम्पन्न किया जाता है। यहाँ तिथिका नियामक नक्षत्रको मानना चाहिए।

दीपावलीके दिन बहियोंको बदला जाता है तथा लक्ष्मीकी पूजा भी करनेकी प्रथा हमारे समाजमें बतमान है। अतः यहाँ वही और लक्ष्मी पूजाके समयकी व्यवस्थापर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। लक्ष्मी पूजाका समय प्रदोषकाल माना गया है। बताया गया है—“प्रदोष समये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः प्रभातम्,” “दीपान् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य पचाविधि,” “प्रदोषार्चनप्रश्रव्यापिनी मुद्रया,” “प्रदोषस्य मुख्यत्वादधराग्रेऽनुष्ठेयामापाञ्च”। अर्थात् लक्ष्मीपूजा प्रदोष समयमें शुभ लग्नमें करनी चाहिए। प्रदोष शब्दका अर्थ लक्ष्मीपूजाके लिए रात्रिके प्रथम प्रहरके उपरान्त द्वितीय प्रहर पर्यन्त समय ग्रहण किया गया है। यदि इस दिन भद्रा हो तो भद्राके समयके उपरान्त तृतीय या चतुर्थ प्रहरमें भी पूजा का जा सकती है। लक्ष्मीपूजाका समय प्रायः एक बर घण्टा निर्धारित करना होगा। साधारणतया यह पूजा ९ बजेके उपरान्त और दस बजेके बीचमें होता है। इसके लिए धनु लग्न सर्वोत्तम, कुम्भ मध्यम और मीन निःश्रेष्ठ है। उत्तम लग्न किसी कारणसे न मिले तो उत्तम लग्नका नाराज अवश्य लेना चाहिए।

दुकान या बड़ पसराके बसना मुहूर्त—लक्ष्मी पूजन करनेके पूर्व अष्ट-द्रव्य तैयारकर चौकियोंपर रख ले। एक चौकीपर मंगल कलशकी स्थापना करे। गद्दीपर बही साता, दावात तलम, तवीन वस्त्र, रुपयोंकी शेली आदि रखे। प्रथम मंगलाष्टक पढ़कर रखी हुई सभी वस्तुओंपर पुष्प अर्पण करे। अनन्तर

दीपावली पूजाकी
विधि

स्वस्ति विधान, देवशास्त्र गुरुका अर्घ, पञ्चपरमेष्ठी पूजन, नवदेवपूजन, महावार स्वामी पूजन, गणधर पूजन करे। अनन्तर बहियोंपर सायिया बनानेके उपरान्त 'श्री रूपमाय नम', 'श्री महावीराय नम', 'श्री गौतम गणधराय नम' शौकेवलज्ञानसरम्बल्यै नम' और 'श्री लक्ष्म्यै नम' लिखकर 'श्रीवद्धताम्' लिखे। अनन्तर निम्नाकारमें धीका पवत बनावे।

० श्री ०	यैलाम स्वस्तिक बनानेका नियम
० श्री श्री ०	० ० ० ० ० ० ० ०
० श्री श्री श्री ०	० श्री ०
० श्री श्री भा श्री ०	०  ०
० श्री श्री आ श्री श्री ०	० श्री वद्धमानाय नम ०
	० ० ० ० ० ० ० ०

इसके पश्चात् "श्री देवाधिपेय श्री महावीरनिवाणात् २७८२२तमे वीराब्दे श्री २०१३तमे विक्रमाब्दे १९५९ इस्वीयमवसरे शुभलग्ने स्थिरमुहूर्ते श्री त्रिशास्त्र विधाय भद्र कार्तिककृष्णामावास्याया शुभवामरे लाभवेत्याया नूननवमनामुहूर्त करिष्ये"।

सब बहियोंपर यह लिखकर पान, लड्डू, मुषाड़ी, पीली सरसों, दूदा और हल्दी रखे। पश्चात् "श्री वद्धमानाय नम, श्री महालक्ष्म्यै नम, ऋद्धि सिद्धिभवमुतराम्" केवलज्ञानलक्ष्मीदेव्यै नम, नम सवगिद्धि भवतु, काममागध्योत्सवा सन्तु, पुण्य वद्धताम्, धन वद्धताम्" पढ़ कर बही-खातोंपर अंग चढ़ावे। अनन्तर मगध कलशवाली चौकीपर दण्योंकी घैलीकी रखकर उसमें "श्रीलक्ष्म्यस्तुव महर्षिकुलप्रदु कीर्तिप्रमो दास्पद चाग्देवीरतिवेत्तन जयरमाजीदानीधान महत् । स स्यात्सर्वमहो-त्सवैकभवन य प्रार्थितार्यप्रद प्रात पश्यति करतपादपदलच्छाय जिना-द्धिद्वयम्" ॥ "लोक पदकर सायिया बनाने। पश्चात् लक्ष्मीपूजन करे और लक्ष्मीस्तोत्र, पुष्पाहवाचन, शान्ति, त्रिस्तवन करे।

१ यह पूजन हमारे पास है।

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हैं । इस कालमें वह सबप्रथम
 माघकृष्णा चतुदशी तीर्थप्रवृत्ता हैं । उनके निवाण दिवसका उत्सव
 ऋषभनिवाण दिवसोत्सव सम्पन्न करना अत्यावश्यक है । भगवान्
 ऋषभदेव स्वामीने निर्वाण दिवसने सप्त
 मधमें तिलोपपण्णत्तीमें बताया गया है ।

माघस्य किंद् सौदसि पुष्यण्डे णिययजम्मणस्तसे ।

अट्ठापयम्मि उरहो भगुदंण सम गभो णोमि ॥

—अधि० ४, गाथा ११८५

अथ—ऋषभनाथ तीर्थंकर माघकृष्णा चतुदशीके पूवाह्निकालमें अपने
 जन्म नक्षत्रके रहते—उत्तराषाढाके चतुर्मान रहते वैशाख पक्षसे दश
 हजार मुनियोंके साथ निवाणको प्राप्त हुए । उाको मैं नमस्कार
 करता हूँ ।

आदिपुराणमें भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघकृष्णचतुदश्या भगवान् भास्करोदये ।

मुहूर्त्तेऽभिजिति प्राप्तपर्यङ्को मुनिभि समम् ॥

प्राग्निह्मुम्बस्तृतीयेन शुस्तध्यानेन रद्धवान् ।

योगत्रितयमन्त्रेण ध्यानेन चातिकर्मणाम् ॥

—आदि० पर्व ४७, श्लो० ३३८ ३९

अथ—माघ कृष्णा चतुदशीके दिन सूर्योदयके समय शुभ मुहूर्त्त और
 अभिजित् नक्षत्रमें भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूव दिशाकी ओर मुख कर
 अनेक मुनियोंके साथ पर्येकासनसे निराजमान हुए, उाोंने तीसरे सूत्र
 त्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनों योगाका निरोध किया और
 अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निवाण प्राप्त किया ।

तिलोपपण्णत्ती और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव
 स्वामीकी तिथि एक मानते हैं, निवाणका समय भी दोनोंका एक ही है ।
 केवल नक्षत्रोंमें अंतर है । तिलोपपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव
 स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निवाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित् नक्षत्रो भगवान्का निवाण नक्षत्र मानते हैं। अभिजित् नक्षत्रकी ज्योतिषमें भोगात्मक रूपमें पृथक् स्थिति नहीं मानी गयी है, क्योंकि अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढाकी अन्तिम १५ घटियों तथा भवणकी आदिकी ४ घटियों, इस प्रकार कुल १९ घण्टा प्रमाण होता है। तिलोदयणक्षीम उत्तराषाढाका जिक्र है, अतः यहाँ स्पष्ट है कि भगवान्का निवाण उत्तराषाढाके अन्तिम चरणमें हुआ है। यही अन्तिम चरण अभिजित्में आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा भवणका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी शुभत्वके कारण उत्तराषाढाके चतुर्थ चरण और भवणके प्रथम चरणकी सहा अभिजित् की गयी है। अतएव दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है। ज्योतिषकी गणनासे भी माघ कृष्ण चतुर्दशीको उदयशाल्य उत्तराषाढाकी समाप्ति आती है। अतः माघी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका आना निश्चित है, मघा उत्तराषाढासे १६ घण्टा नक्षत्र पड़ता है, माघ कृष्ण चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ घण्टा सराया है, अतः गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्ण चतुर्दशीको उत्तराषाढा नक्षत्र ही है।

निवाण तिथियोंके लिए नियामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी घटा बढीमें नक्षत्रोंके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस दिन चतुर्दशीके प्रातःकालमें उत्तराषाढाका चतुर्थ चरण बतमान रहेगा, उसी दिन भगवान्का निवाणोत्सव मनाया जायगा। प्रातःकाल सुबोधने समय नित्य पूजाके उपरांत भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। प्रधान् सिद्धभक्ति, सुत भक्ति, चारित्र्य भक्ति, योगि भक्ति, निवाण भक्ति या निवाण काण्ड पञ्चक पूजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए इन विधाका आयोजन भी किया जा सकता है। सप्ताह समस्त समाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जीवन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन धर्मकी प्राचीनता भगवान् ऋषभदेवके चरित्रसे स्पष्ट सिद्ध होती है।

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हैं। इस कालमें यह सबप्रथम माघवृष्णा चतुर्दशी तीर्थप्रवृत्ता है। उनमें निर्वाण दिवसका उत्सव सम्पन्न करना अत्यावश्यक है। भगवान् ऋषभदेव स्वामीके निवाण दिवसमें छत्र मधम तिलोपपण्णत्तीमें उताया गया है।

माघस्म जिह्वां हामि पुष्पण्हे जियवन्ममणस्सरे ।

अट्ठावयम्मि उरहो भजुदण सगं गन्तां णोमि ॥

—अधि० ४, गाथा ११८५

अथ—ऋषभनाथ तीर्थंकर माघवृष्णा चतुर्दशीके पृथाहकालमें अपने जन्म नक्षत्रमें रहते—उत्तराषाढाके वर्षमान रहते कैलाश पर्वतमें दश हजार मुनियोंके साथ निवाणको प्राप्त हुए। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

आदिपुराणमें भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघवृष्णाचतुर्दश्या भगवान् भास्करोदये ।

मुहूर्त्तमभिषिक्तिं प्राप्तपत्न्यङ्को मुनिभिः समम् ॥

प्राग्निदग्धमस्मृतीयेन श्रुत्यन्यायेन हृदयान् ।

योगप्रितयमत्येन ध्यानेन चातिरमणाम् ॥

—आदि० पर्व ४७, अंगो० ३३८ ३९

अथ—माघ वृष्णा चतुर्दशीके दिन स्यादयके समय शुभ मुहूर्त्त और अभिजित् नक्षत्रमें भगवान् ऋषभदेव स्वामी पृथु दिशाकी ओर मुँह कर धनेक मुनियोंके साथ पर्यन्तासनमें विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्म त्रिषाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तानों योगोंका निरोध किया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निवाण प्राप्त किया।

तिलोपपण्णत्ता और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी तिथि एक मानते हैं, निवाणका समय भी दोनोंका एक ही है। बस नक्षत्रोंमें अंतर है। तिलोपपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निवाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित् नक्षत्रको भगवांका निवाण नक्षत्र मानते हैं। अभिजित् नक्षत्रको ज्योतिषमें भोगात्मक रूपमें पृथक् स्थिति नहीं मानी गयी है, क्योंकि अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढाकी अन्तिम १५ घटियों तथा भयनका आदिकी ४ घटियों, इस प्रकार कुल १९ घण्टी प्रमाण होता है। तिलोत्पल्लसाम उत्तराषाढाका शिक है, अतः यहाँ स्पष्ट है कि भगवांका निवाण उत्तराषाढाके अन्तिम चरणमें हुआ है। यही अन्तिम चरण अभिजित्में आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा भयनका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी गुणके कारण उत्तराषाढाके चतुर्थ चरण और भयनके प्रथम चरणको संज्ञा अभिजित् की गयी है। अतएव दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है। ज्योतिषकी गणनामें भी माघ कृष्ण चतुर्दशीको उदयकालमें उत्तराषाढाकी गणना आती है। अतः माघी पूर्णिमाको मन्त्र नक्षत्रका आना निश्चित है, तथा उत्तराषाढासे १६ घण्टी नक्षत्र पड़ता है, माघ कृष्ण चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ घण्टी उत्तरा है, अतः गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्ण चतुर्दशीको उत्तराषाढा नक्षत्र ही है।

निवाण तिथियोंके लिए निषामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी पटा-बंदीमें नक्षत्रोंके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस दिन चतुर्दशीक प्रातःकालमें उत्तराषाढाका चतुर्थ चरण पड़ता रहेगा, उसी दिन भगवांका निवाण आता माना जायगा। प्रातःकाल उषादिवके समय निवाण पूजाके उपरान्त भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। पश्चात् सिद्धमन्त्रि, भुतमन्त्रि, चारित्र्यमन्त्रि, यागिमन्त्रि, निवाणमन्त्रि या निवाण काण्ड पढ़कर पुजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए हवन श्रियाका आयोजन भी किया जा सकता है। सन्ध्या समय समाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके आसन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन धर्मकी प्राचीनता भगवां ऋषभदेवके चरित्रसे स्पष्ट सिद्ध होता है।

भगवान् महावीर स्वामीका जन्मदिन महावीर जयन्ती के नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् का जन्म चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के उत्तरपात्सुनी नक्षत्रमें हुआ था। तिलोत्पण्णतामें भगवान् के जन्म का मन्त्र पढ़ाया गया है—

सिद्धाश्वरायपियवारिणीहिं णवरम्मिकुड्दले घीरो ।

उत्तरपात्सुनिरिक्खे चित्तमियातेरसीण उप्पण्णो ॥

—ति० अ० ४, गाथा ५४९

अर्थ—भगवान् महावीर कुड्दलपुरमें पिता सिद्धाश्व और माता प्रियवारिणीसे चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के दिन उत्तरपात्सुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए। उत्तरपुराणमें भगवान् के जन्मदिन का वर्णन निम्नप्रकार है—

नवमे मासि सम्पूर्णे चैत्रे मासि त्रयोदशी ।

दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यवर्मणि नामनि ।

—परं ४७ श्लो० २६२

अर्थ—नौवें मास पूरा होने पर चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के दिन कार्यमा- उत्तरपात्सुनी नक्षत्रमें, शुभ योगमें भगवान् महावीर का जन्म हुआ।

निवाणमत्ति के निम्न श्लोकोंसे भगवान् के जन्मकाल पर भी सुन्दर प्रकाश पड़ता है—

चैत्रसितपक्षपात्सुनि शशाक्योने दिने त्रयोदश्याम् ।

जज्ञे म्बोधस्थेषु ग्रहेषु सीम्येषु शुभलग्ने ॥

हस्ताश्रिते शशाके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिपत्त ।

पृवाद्धे रत्नघटैर्विपुधेन्द्राश्रितुरभिषेकम् ॥

—नि म श्लो ५-६

अर्थ—भगवान् महावीर का जन्म चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के दिन उत्तरपात्सुनी नक्षत्रमें शुभलग्नेमें, जब शुभग्रह उच्च राशिमें थे, हुआ था। देवीने भगवान् का जन्मस्नान कर चतुर्दशी के दिन, जब चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर था, पृवाद्धमें सम्पन्न किया।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि भगवान् का जन्म मध्यरात्रिके उपरान्त जब कि

पारणा समारंभे—अग्य तृतीयाक दिन उनका प्रथम पारणा ग्रहणकी वलासे गणित करके दिशा विदिशाओंमें स्थापित किये हुए भुजाकोको लिये हुए है, यह देखाई सार है—देखाधीन घटनाआका सूर्य है ।

यह तिथि भी उदया प्राप्त है । जिस दिन उदयकालमें उत्त दूताया हो, उसी दिन अग्य तृतीयाका उत्तर सम्पन्न करता चाहिए । दान दाना, पूजा कराना, अतिथिउत्सव करना आदि विधेय कार्योंको इस तिथिम करना चाहिए ।

भुतपञ्चमी पर अत्यन्त प्रसिद्ध पर है । यह पर ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी को सम्पन्न किया जाता है । इस दिन पट्टरञ्जागमका प्रणय समाप्त हुआ था । चतुर्विध सवो मिल्कर आगमकी पूजा की थी तथा उत्तर सम्पन्न किया था । बताया गया है कि क्षीराष्ट देशक गिरिगारपन्नकी चन्द्रगुप्तमें आचार्य धरसेना आयाह शुक्ला एकादशीक प्रमातमें भूतबलि और पुण्डन्त नामक दो मुनीन्द्रोंको आगम साहित्य पढाया था । गुरुदक्ष दिवंगत होनेपर उक्त सिध्य युगलने कम साहित्यपर पट्टरञ्जागम सूत्रकी रचना आरम्भ की । बीचमें ही पुण्डन्त आचार्यक भी किसी कारणसे पृथक् हो जानेपर भूतबलिनने ही अवशेष ग्रन्थको समाप्त किया । यह ग्रन्थज ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको पूजा हुआ तथा इसी दिन इसकी अर्चना की गई । अन्तवतार कथामें आचार्य इन्द्रादिने बतलाया है—

ज्येष्ठसितपञ्चम्यां चातुर्यर्ण्यसप्तमयेत ।

तपुस्तकोपकरण्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥

भुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरिय परमाप ।

अद्यापि येन तस्यां भुतपूजां कुर्वते जैना ॥

—भुतावतार स्तो० १४३-१४४

अथात्—ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीको चतुर्विध सवने बड़े वैभव और उत्साहके साथ जिनवाणी माताजी पूजा की थी । तभीसे यह पर्यं भुत

पञ्चमी नामसे प्रख्यात हो गया है। आज भी जैन समाजमें इस दिन भुतपूजा की जाती है।

इस तिथि की व्यवस्थाके सम्बन्धमें इतना ही ज्ञान लेना आवश्यक है कि जिस दिन उदयकालमें छ घटी प्रमाण यह तिथि मिलेगी, उसी दिन भुतरञ्चमी पर्व सम्पन्न किया जायगा। यदि उदयकालमें छ घटी प्रमाण तिथि न मिले तो उससे पूर्व दिन ही पञ्चमी मान ली जायगी। मान उदया तिथि की भुत पञ्चमी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि चतुर्विध सर पूजा या प्रतर्पण लिए छ घटी प्रमाण तिथि की, तबतः प्राप्त मानता है, जसक अपराध रूप विशेष विधान गहा रहना। इस दिन भुत पूजा के साथ सिद्धमति, भुतमति और शांतिमत्तिका पाठ करें। विशेष विधान करना हो तो निम्न मन्त्र की २०८ आहुतियों देनी चाहिए।

ओं भद्रं सुखं कर्मवासिनि पापामक्षयकरि भुतज्ञानम्यालासहृन्
प्रगलिते सरस्वति अमाक पाप हन हन दह दह को को पूं कीं क
क्षीरवधरले अमृतसन्मये य य हू हू पद् म्याहा।

प्रत और पर्व विचार

जीवन शोधनके लिए प्रत की आवश्यकता है। समस्त आचरणाचार और मुन्याचार प्रताचरण रूप ही है। उपकरण भी प्रतागत है। प्रारम्भमें उपवास उपकरण की सम्पन्न करने के लिए अनेक प्रकारके मन्त्रा विधान किया गया है। प्रत शब्दका परिभाषा साधारणनानुष्ठान निम्न प्रकार उल्लेख की है।

सकलपुत्रक सेप्ते निमोऽनुभक्तमंज ।

निवृत्तिना प्रत रथाद्वा प्रवृत्ति शुभकमणि ॥ साधार० अध्याय २

अर्थात्—सेवन करने योग्य विषयोंमें सकलपुत्रक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मोंसे सकलपुत्रक विरक्त होना अथवा पात्रदा नादिक शुभ कर्मोंमें सकलपुत्रक प्रवृत्ति करना प्रत है।

रत्ननय, दशलक्षण, अष्टाह्विता, षोडशकारण, मुक्तायनी, गुप्ता

इजली आदि व्रतोंके सम्पन्न करनेसे आत्मानिर्मलताके साथ महान् पुण्य का रत्न होता है। आचार्य वसुनन्दिने अपने भावकाचारमें व्रतोंके पत्थों का निरूपण करते हुए लिखा है—

फलमेवस्ते भोक्षुण देव मनुष्यसु इदियन्मुक्ता ।

पद्म पाण्ड मोक्ष शुनिज्जभागो सुरिं देहि ॥

रत्नत्रय, षोडशकारण, जिनगुण सम्पत्ति, नन्दीश्वरपति, विमानपति आदि व्रतोंके पालन करनेके फलसे यह जीव देव और मनुष्योंमें इन्द्रिय जनित मुख भोगरत्न, पश्चात् देवोंमेंसे उन्नति किया जाता हुआ मोक्षपद प्राप्त करता है।

व्रताचरणकी आवश्यकतापर जोर दते हुए लिखा गया है—

व्रतेन धो पिना प्राणी पशुरेव न सशय ।

धौम्यायोग्य न जानाति भेदस्यत्र कृतो भवेत् ॥

व्रत रहित प्राणी निस्सन्देह पशुके समान है। जिसे उचित अङ्ग चित्तका ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशुमें क्या भेद है? अतः व्रतधियान करना प्रत्येक घर नारीके लिए आवश्यक है। व्रतोंके भेद प्रभेद ध्यान करना शास्त्रकारोंने व्रतोंके प्रधान नौ भेद बतलाये हैं। उनके नाम इसी प्रथममें निम्न प्रकार हैं—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवसिद्धानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरिकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमायांनि, इति नवधा भवन्ति ।

अर्थात्—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वषावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमाय ये नौ भेद व्रतोंके हैं। निरवधि व्रतोंमें ब्रह्मद्रव्य, तपोऽञ्जलि, जिनसुरावलोचन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली आदि हैं। सावधि व्रत दो प्रकारके होते हैं—तिथिकी अरुभिसे किये जाने वाले मुख्यचिन्तामणि मारना, पञ्चविंशतिभावना, द्वाविंशत्भावना, सप्तस्व पञ्चविंशतिभावना और णमोत्तर पञ्चविंशत्भावना आदि हैं। दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंमें दुःसहस्रव्रत, धमचक्रव्रत, जिनगुणसम्पत्ति,

सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, धृतिकरणाक, चन्द्रकल्याणक आदि हैं ।
 दैवसिक्त्रतोंमें दिनकी प्रधानता रहती है, पञ्चतियर्थों तथा दशलक्षण
 रत्नत्रय आदि दैवसिक्त्रत हैं । आकाशपञ्चमी जैसे व्रत नैशिक माने जाते
 हैं । जिन व्रतोंकी अवधि महीनेकी होता है, वे मासिक कहे जाते हैं जैसे
 षोडशकारण, मेघमाला आदि मासिक हैं । जो व्रत किसी अभीष्टकामनाकी
 पूर्तिके लिए किये जाते हैं, वे काम्य और जो निष्काम रूपसे किये जाते हैं वे
 अकाम्य कहलाते हैं । काम्यव्रतोंमें संकटहरण, लहरण, धनदकलश आदि
 व्रतोंकी गणना है । उत्तम व्रतोंमें सिंहनिष्पीडित, भाद्रवनसिंहनिष्पीडित,
 सर्वतोमद्र आदि हैं । अकाम्योंमें कमचूर, कमनिजरा, मेघपति आदि हैं ।

व्रतोंकी सराग आरम्भमें बहुत थोड़ा थोड़ा पौष्पाणिश साहित्यमें व्रतोंकी
 सरागका विकास स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है । पद्मपुराण और आदि
 व्रतोंका विकास पुराणमें भावकाचार और भावकोंके व्रतोंका उल्लेख,
 दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण और अष्टाह्विता व्रतों
 के पालनके रूपमें ही हुआ है । भावकाचारोंमें रत्नकरण्डभावकाचार,
 अमितगतिभावाकाचार, सागारधमामृत, स्वामिकास्तित्रेयानुपेक्षा, गुण
 भूषणभावाकाचार और ऋषी संहितामें मूलगुण, बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमा
 और सल्लेखनाका हा निरूपण है, व्रतोंका नहीं । पुराणोंमें सबसे प्रथम
 हरिवंशपुराणमें और भावकाचारोंमें वसुनन्दिभावकाचारोंमें कुछ प्रमुख
 व्रतोंकी विवेचना की गयी है । वसुनन्दिभावकाचारमें पञ्चमोव्रत, रोहिणी
 व्रत, अदिगनीव्रत, सौख्यसम्पत्तिव्रत, नन्दीश्वरपति व्रत और विमानपति
 व्रत इन ७ व्रतोंका उल्लेख मिलता है । हरिवंशपुराणमें सुप्रतिष्ठके
 नानाविध उपवासोंका वर्णन करते हुए सर्वतोमद्र, वसन्तभद्र, महासवतो
 भद्र, रत्नारली, उत्तम म यम जषय सिंहनिष्पीडित आदि महोपवासोंका
 वर्णन किया है । भवलाटीकामें आचार्य चारसेनने भी उपवासोंकी उपमाका
 विवेचन किया है । हरिवंशपुराणमें उल्लेख किया है—

तपोविधिविज्ञेयं स सर्वतोमद्रपञ्चकं ।

षष्ठिभूषणान्वक्तं सिंहनिष्पीडितोत्तरे ॥

श्रवणादपि पापान्तानुपवासमहाविधीन् ।
 गृणु यादव । ते वच्मि समाधाय मन क्षणम् ॥
 एकादिपुपवासेषु पञ्चान्तेषु यथाक्रमम् ।
 अन्तयो कृतयोरादौ दोषमगसमुद्भवे ॥
 कतिपयचतुरस्रोऽय प्रस्तार पञ्चमद्वय ।
 सर्वतोऽप्युपवासाश्च गणया पञ्चदशाऽत्र हि ॥
 पञ्चाभिगुणितास्ते स्युः सत्यया पञ्चसप्तति ।
 ताडिता पञ्चभि पञ्च पारणा पञ्चविंशति ॥
 सर्वतोभद्रनमायमुपवासविधि कृत ।
 विद्यते सेधतोभद्र निवाणाम्युदयोदयम् ॥
 पञ्चादिषु नवान्तेषु भद्रोत्तरवसन्तक ।
 विधिस्तत्रोपवासास्तु पञ्चविंशत्सम परम् ॥

इससे सिद्ध है कि उपवासोंके मुनने और उनसे अनुष्ठान करने मात्रसे पापोंका भ्रस होता है, आत्मा में पुण्यका संचय होता है । उपवास कम निजरा ने भी हेतु है । धीरेसेनाचायने कमनिजरा ने लिए किये गये उग्र तपश्चरणम ही उपवासोंका घणन किया है । अतः संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंके आपग्रन्थोंमें थोड़ेसे ही व्रतोंका उल्लेख मिलता है । आराधना कथाकोश, हरिपणकथात्रोदसे भा महत्प्रशाली रत्नत्रय, पोटशकारण, अष्टाहिका, दशलक्षण, पुष्पाञ्जलि, जैसे प्रमुख व्रतोंको सम्मन करके पुष्पाञ्जन करनेवाले व्यक्तियोंकी कथाएँ ही उपलब्ध हैं । भट्टारकों द्वारा विरचित उग्रोपासनोंमें दशलक्षण, रत्नत्रय, पोटशकारण, अष्टाहिका, पुष्पाञ्जलि, अतत्रत, रत्नवारत्रत, नवग्रहव्रत, कवलचाद्रायण, चतुदशी, सुग धदशमी, ऋषिपञ्चमा, कमचूर, च दनपञ्चा, मुकुटसप्तमी, निरालय अष्टमी, रोट ताज, रोहिणी प्रभृति व्रतोंकी उपासना विधि बतलायी गयी है । इन समस्त उपासनोंका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दे सोलहवीं शती तकका है । कतिपय व्रतोंका उपासन विधान इतरसे प्रशसित हुआ है । श्री जैनसिद्धा तमवन द्वाराके हस्तलिखित गुटकेम लगभग २४ २५ व्रतों-

रापन समीत है। प्रततिथिने लिए संस्कृत और प्राकृत साहित्यम कोई एक ग्रन्थ नहीं है, जिसने आधारपर प्रतीक स्वल्प, उन्नी विधेय तिथियों, उनके अनुगान, लघ्व्य मात्र, पारणामें ग्रहण की जानेवाला वगुणा परिज्ञान किया जा सके। यह एक कमी थी। यद्यपि पुटवर रूपमें पुराणों, वयाः-यों, भावकाचारों, उग्रपनों आदिमें प्रतीकें सम्बन्धमें पूरी सामग्री दत्तमान है, तो भी एक प्रामाणिक ग्रन्थकी कमी थी। हिन्दामें विमान सिद्धने अपने विषाफोशमें प्रतीक का विस्तार वर्णन कर बहुत अशोमें यह कमी पूरी की है। सन् १९५२ में 'जैन प्रत विमान-संग्रह' भी ५० पार लालकी द्वारा संकलित प्रकाशित हुआ है। इन सभी ग्रन्थोंमें तिथि और प्रत व्यवस्थाका उदात्त सामोदाग विवचन नहीं है जितना चाहिए। विधेय तिथियोंके ऊपर निगपात्मक दृष्टिसे प्रकाश डालना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थमें तिथियोंकी व्यवस्थापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

नवीन वरका आरम्भ धीरशासनअपन्तीग माना जाता है, अतः भावण माससे प्रतीक की गणना करनी चाहिए। भावणमासमें धीरशासन जयन्तीव्रत, अजयनिधि, गरुडपञ्चमी, पटीव्रत, माधुव्रतमी, भावणल दशमी, दादशीव्रत और रक्षान-घन आत हैं। धीरशासनअपन्तीकी व्यवस्थाक सम्बन्धमें विचार किया जा चुका है। इस प्रतने उसी दिन सम्पन्न करना होता है। इस दिन उपवास किया जाता है तथा पूजाक अनन्तर 'ओं श्रीमहापारम्यामिन् नमः' इस मात्रका साथ तीनों बाल किया जाता है।

अजयनिधिव्रत भावणपुक्ला तथमीको पूजा स्वाध्यायक पश्चात् धारण करे। एका दिन एकाशनकर संयमका अव्यास करे। भावणपुक्ला दशमी, जिस दिन उदयकालमें छ घटी हो उस दिन उपवास करे। दिनको घनप्यानपूर्वक विताकर, रात्रि जागरण करे। भावणपुक्ला एकादशासे भाद्रपद कृष्णनवमी तक एकाशन करे। अनन्तर दशमीका उपवास कर, पुनोत्त रीतिसे घर्मजानपृचक रात्रि विताकर एकादशीको एकाशन करे।

दादशीमे दोनों समय भीड़ा करे। यह व्रत द्वात्रिंशत्क किया जाता है। इसमें त्रिकाल भोजनका आचरना चाहिए। प्रत्येक प्रभु धारणा और त्रिभुवनक समय इसी मन्त्रमें वर्णित आण्डिकप्रत्येक करने गये सन्तान म शेषों बलशायी रूपी त्रिभिन्न अनुसार करना चाहिए।

श्रावणमास दशमी मंत्र भाषणानुक्रम तत्तमीको एकाग्रन कर धारणा करना चाहिए और पुनः दशमीका उपवास कर धामपानपूर्वक दिन व्यतीतकर रात्रि जागरण करना चाहिए। दिनमें हीर्वां वाक्य 'ओं ह्रीं पूषभक्तिनमः' इस मन्त्रका आचरना चाहिए। इस व्रतक इस व्रतका पालन कर उपासन किया जाता है। व्रतका तिथि छ पद्ये प्रमाण उदयमे होकर हा प्रहण की जाती है, अथवा पहले दिन प्र सम्पन्न किया जाता है।

श्रावणमास मंत्र भाषणानुक्रम पञ्चके दिन प्रहण कर एकाग्रन किया जाता है। दशमीको धामपानपूर्वक उपवास करे। अष्टमीको पारणा करे। यह व्रत सातवर्षोंमें पूरा होता है। इसमें 'ओं ह्रीं पाशनायाय नमः' मन्त्रका त्रिकाल आचरना चाहिए। व्रतके लिए तिथि यहाँ भी छ पद्ये प्रमाण ही प्रहण की गयी है।

श्रावणमास मंत्र भाषणानुक्रम चतुर्थीको एकाग्रन पूर्वक धारण कर पञ्चमीका उपवास त्रिभिन्नपूर्वक करना चाहिए। पौर्णमास व्रत करनेके उपासना उपासन किया जाता है। त्रिकाल 'ओं ह्रीं अर्द्धदशमी नमः' मन्त्रका आचरना करे।

मनोव्रतना सिद्ध करनेके लिए श्रावणमास गौरीका व्रत किया जाता है। यह व्रत पञ्चमीको एकाग्रनपूर्वक धारण किया जाता है। धारण करने के दिन त्रिनाल्यमे आकर नित्य त्रियम पूजा करनेके उपरान्त भगवान् नेमिनाथकी पूजा समा भक्तमर और बल्ल्याणमन्दिर स्तोत्रोंका पाठ करे। तथा इसी दिने 'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथाय नमः' इस मन्त्रका आचरना करे। पञ्चमीके दिन उपवास करे, पञ्चमीके समाप्त पूजा पाठ कर, धूप देकर भक्तमर स्तोत्रका पाठ करे और त्रिकाल 'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथाय

मम ' इस मंत्रका जाप करे। सप्तमीके दिन पारणा करे। पारणामें केवल एक ही अनाज रहना चाहिए। छ वषतक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। विधिमा मान छ घटी ही लेना चाहिए।

रक्षावधनकी व्यवस्था पर पूर्वमें प्रकाश डाला जा चुका है। इस दिन उपवास करना तथा "ओं ह्रीं श्रीविष्णुमुमाराय नमः" मंत्रका जाप करना चाहिए।

भाद्रपदमास अत्यन्त पवित्र है। इस महीनेमें सबसे अधिक व्रत आते हैं। बताया गया है कि इस महीनेमें दशलक्ष, षोडशकारण, रत्नत्रय, पुष्पाञ्जलि, आकाशपञ्चमी, सुगन्धदशमी, अनन्तचतुर्दशी, भुक्तम्भ व्रत, निर्दायसप्तमी, वादनपञ्चमी, तीसचौसीसी, जिनमुखाग्लोहन, रक्मिणीव्रत, निरालम्भश्री, दुग्धरसी, वनदकलक्ष, धौलसप्तमी, नन्दमतमी, कौञ्ज वारस, लज्जुमुक्तावली, त्रिलोकीज, अग्न्यादशी और मेघमाला व्रत सम्पन्न किये जाते हैं। इसी कारण मल्लपुराणमें कहा गया है—

अहो भाद्रपदाख्योऽयं मासाऽनेकव्रताकरः ।

धर्महेतुपरो मध्येऽयमासात्ता वरद्वन्द्वः ॥

अथत्—जिस प्रकार मनुष्योंमें भेष्ट राजा माना जाता है, उसी प्रकार समस्त मासोंमें भाद्रपदमास भेष्ट है, क्योंकि यह अनेक प्रकारके व्रतोंका स्थान स्वरूप है और धर्मका प्रधान कारण है।

इस पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीसे होता है। पशुपणना आरम्भ दिन शुद्धिका आदि दिन हैं। क्योंकि छठवें पशुपणकी व्यवस्था कालके अन्तमें भरत और ऐरावतमें लब्ध प्रलय होता है। बताया गया है—

सर्वव्ययणामणिर्लो गिरितमभूपटुर्दि शुष्णान्न करिष ।

अमादि दिवस जीवा मरन्ति मुच्छन्ति छठते ॥

छट्मचरिमे ह्येति मन्त्रादी मत्तसप्त दिवसवद्दी ।

अदिस्मी इरवारजिसयममीरजभूमवरिमाओ ।

नेहितो सेमन्ता नश्यति विमगिवरिन्दङ्गमही ।

इन्द्रियोयनमेतमधो शुष्णाक्किञ्चिद् हु कालपमा ॥

प्रिलाकसार गाथा ६४-६७

अर्थात्—छठवें कालने अन्तमें सप्त नामक पवन पारत, वृध, पृथ्वी आदिको चूणकर समस्त दिशा और क्षेत्रमें भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मृन्मिष्ट हो जाते हैं। प्रिययाधरी गुफामें रहित ७२ युगलोक अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अन्तमें परा, अल्प, प्रात, धार, रत, शिप, कठोर अग्नि, धूलि और पुँआका वषा एक एक सनाइतर होती है। इसक पश्चात् उत्सपणकालका प्रवेश होता है। अर्थात् छठवें काल अन्त होनेके ४९ दिनों पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

छठव कालका अन्त आषाढी पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ भावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्र होनेपर होता है। अत आषाढी पूर्णिमाके अनन्तर भावणी प्रतिपदाके ४९ दिनोंकी गणना की तो इनकी समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमा उत्सपण और अग्रहायणने आरम्भका दिन हुआ। उत्सर्गणा और अग्रहायणके छह कालों—सुप्रमसुपमा, सुप्रमा, सुप्रम हु पमा, दु पमा, सुप्रमादु पमा, और दु प्रमा दु प्रमाका अन्त सदा आषाढी पूर्णिमाको होता है। अत सुप्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमाका दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पत्र आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमा है और समाप्ति तिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। प्राचमें किसा तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्तिकी तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिन दिन धन्यादिक प्रमाणांनुसार व्रतके लिए चतुर्दशी मांगी जायगी, उसी दिन इस पर्वकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्यक्ति पूर्णिमाको सयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनोंमें शुक्लपक्षकी चतुर्थाको सयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पुनः रर पृणिमाको सयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम माग तो यही है कि दस उपवास त्रिच जायें। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पचमी, अष्टमी, एकादशी और चतु

विधि दशा इन चार दिनोंमें उपवास और शय्य छ दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। यह व्रतका मध्यम विधि है।

अथ सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमें किया ही गया है। अतः समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमें असल प्रकरणों द्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशीको पर तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनो अष्टमी और दोनो चतुर्दशियोंको प्रोषधोपवास करना चाहिए।

पञ्चतिथियाँ इन तिथियोंके व्रत उद्दयकालमें छ घटीसे अरु रहने पर पढ़ले दित्तिये जात द। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मध्यान पूरक इन व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रती श्रावणको अष्टमीर दिन^१ सिद्ध भक्ति, ध्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र्य भक्ति और शान्तिभक्तिना पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीको सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, ध्रुतभक्ति, पञ्चगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिए^२। जिस पक्षकी त्रेषल अष्टमीका व्रत परिमितकालर लिए करना हो, उसे उपवासपूरक 'नों हूँ नमा मित्राण मित्राधिपतये नमः' का त्रिकाल जाप करना चाहिए। आठ रष व्रत करनेर उपरांत उत्थापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करनेवाले आपाद गुप्ता चतुर्दशीसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी प्रत्येक प्रयोदशाको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

१ नष्टमा सिद्ध ध्रुत चारित्र्य शान्तिमय ।

२ सिद्धे चैत्ये ध्रुत भक्तिस्तथा पञ्चगुरमुत्ति ।

शान्तिभक्तिस्तथा कार्वा चतुर्दश्यमिति क्रिया ॥

सेहितो सेसजणा णस्मति विसग्गिवरिसद्वुमही ।

इधिनोयणमेत्तमघो चुण्णीविज्जदि हु कालवसा ॥

त्रिलोकमार गाथा ६४-६७

अथान्—उठवें कालने अत्तम सवत नामक पवन पउत, वृध, पृथ्वी आदिको चूणकर समस्त दिशा और क्षेत्रम भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मूर्च्छित हो जाते हैं। त्रिजयाधकी गुफामें रहित ७९ युगलोंके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अत्तम पवन, अत्यन्त गत, धार रत, विष, कठोर अग्नि, धूलि और पुँआका वषा एक एक सप्ताहतर होती है। इसने पश्चात् उत्तपणीशालका प्रवेश होता है। अथात् उठवें कालके अन्त होनेने ४९ दिना पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

उठव कालका अन्त आपादा पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ भावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित् नक्षत्रने होनेपर होता है। अत आपादा पूर्णिमाने अनंतर भावणी प्रतिपदासे ४९ दिनोंकी गणना की तो इनका समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमी उत्सवण और अनसवणने आरम्भका दिना हुआ। उत्सर्पिणा और अनसर्पिणाने उहो शर्ला—सुपमसुपमा, सुपमा, सुपम दुपमा, दुपमा, सुपमादुपमा, और दुपमा दुपमाका अन्त सदा आपादी पूर्णिमाको होता है। अत सृष्ट्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमासी दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पत्र आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमासी है और समाप्ति तिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। ग्राचमें किसी तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्ति तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिन दिन घन्टादिक प्रमाणानुसार व्रतक लिए चतुर्दशी मानी जायगी, उसी दिन इस पत्रकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्रत पूर्णिमाने स्वयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको सयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पूरा कर पृथिवीको सयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम मार्ग तो यही है कि दस उपवास किये जाय। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतु

विधि दशा इन चार दिनोंमें उपवास और शेष ॥ दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। यह प्रसंगी मध्यम विधि है।

अथ सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमें किया हो गया है। व्रत समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमें अगले प्रकरणों द्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशीको एक तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनों जन्मी और दोनों चतुर्दशियोंको प्रोषणोपवास करना चाहिए।

वर्षतिथियाँ इन तिथिद्वयके व्रत उद्भवकारणमें छ पटीसे अलग रहने पर पहले दित किये जाते हैं। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मध्यान पूरा कर व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। प्रती भाष्यको अष्टमीके दिन^१ सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र्य भक्ति और शान्तिभक्तिना पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीको सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पञ्चगुह भक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिए^२। जिस व्यक्तिकी वैयल अष्टमीका व्रत परिमितकालके लिए करना हो, उस उपवासपूर्वक 'ना हीं नमो सिद्धाय सिद्धाधिपतये नमः' का त्रिकाल जाप करना चाहिए। जाट रूप व्रत करनेके उपरान्त उन्नापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करोगाने आपादशुक्ला चतुर्दशासे आरम्भ कर प्रत्येक मासका प्रत्येक त्रयोदशीको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

१ अष्टम्या सिद्ध श्रुत चारित्र्य शान्तिभक्तयः ।

२ सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुह्यनुति ।

शान्तिभक्तिस्तथा काया चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥

पूणिमाको पारणा की जाती है। 'ओं ह्रीं अनन्तनाथाय नमः' इस मंत्रका त्रिकाल जाप किया जाता है। १६ वय तक व्रत करनेई उरगन्त उद्यापन कर देना चाहिए।

व्रतोंके उद्यापन

व्रत विधान अवगत हो जानेपर उनके उद्यापनकी विधि का जान लेना आवश्यक है। सम्यक् प्रकार व्रतानुष्ठानके पश्चात् उद्यापन कर देने पर ही व्रतोंका फल प्राप्त होता है। उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है।

इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको किया जाता है अथवा पञ्चकन्याणक प्रतिष्ठाने अगस्त्य पर कभी भी किया जा सकता है। उद्या-

रत्नत्रय व्रतके
उद्यापनकी
विधि

पा करनेसे दिन भी मंदिरजीम जाकर सबसेप्रथम एक गोल चौकी या टेबुलपर रत्नत्रय व्रतोद्यापनका मण्डल (माडना) बनाना चाहिए। चौकी चार फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी होनी चाहिए। चौकीपर दूने

बन्ध बिठाकर लाल, पाले, हरे, नीले और दूध रंगके चायलोंसे मण्डल बनाना चाहिए। इस मण्डलमें कुल ९३ कोठे होते हैं। मण्डल गोलकार बनता है। मण्डलके बाचम 'ओं ह्रीं रत्नत्रयव्रताय नमः' लिखे। इसके पश्चात् दूसरा मण्डल सम्यग्दर्शनका होता है, इसके चारों कोठे हैं। तीसरा मण्डल सम्यग्ज्ञानका होता है, इसके ४८ कोठे हैं। चौथा मण्डल सम्यक् चारित्र्य का होता है, इसमें ३३ कोठे हैं।

मन्दिरमें सत्रप्रथम भगवान्से अभिषेकके लिए जल लानेकी प्रिया करे। जलयात्राकी विधि यहाँ दी जाती है। जल लानेसे उपरान्त महा

१ समस्त उद्यापनोंके लिए जलयात्राका विधान यह है कि सौभाग्यवती स्त्रियाँ घरसे तृण लपेटे और कलशासे सुसज्जित नारियलोंसे ढके कलश जलाशयके पास रह जावें। जलाशयके पूर्व भाग या उत्तर भागमें भूमिको जलसे धोकर पवित्र करे। पश्चात् उस भूमिपर चावलका चौक बनाकर, चावलाका पुष्प रखे और धलशाको उन पुष्पां पर

रंगपित कर दिया जाय । धौनके चारों कीनोंपर दीपक जलाना चाहिए ।
पञ्चान् निम्न विधानकर कुँणसे जल निकाला जाय ।

पद्मापादनतो महामृतमवानन्दप्रदाना नृणां
जैनो भागं हृषावभासिविमलो योगीज शीताभवन् ।
जैनेन्द्रस्तपनोचितोदकनमा क्षीरोदवत्त मता
दूम्य तथा शुभशुद्धीवननिर्धि कासारसपूजये ॥१॥

ओं ह्रीं पद्मकराय अर्घ्यं निर्वपामासि स्वाहा । पदकर जलाशय—
कुँण पर अथ चढ़ावे ।

श्रीमुत्पदेवी कुलसैलमूर्ध्वपद्मादिपद्माकरपद्मसक्ता ।
पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥२॥

आ ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्य इद जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
यहाँसे जलाशय पूजा करे ।

गङ्गादिदेवीरतिमङ्गलाङ्गा गङ्गाशिवित्वातनदीनिवासा ।
पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥३॥

ओं ह्रीं गङ्गादिदेवीभ्य इद जलादि अर्घ्यं निर्वपा० ।

सातानदीविद्धमहाहृदस्थान् इदंश्वराभागकुमारदेवान् ।
पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥४॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाहृददेवेभ्य इद जलादि अर्घ्यं नि० ।
सीतोत्तरामध्यमहाहृदस्थान् इदंश्वरान्नागकुमारदेवान् ।

पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥५॥

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाहृददेवेभ्य इद जलादि अर्घ्यं नि० ।
क्षीरोदकालोदकताथवर्ति श्रीमागधादीनमरानशेषान् ।

पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥६॥

आ ह्रीं एवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्य इद जलादि अर्घ्यं नि० ।]
सीतातद्वन्द्यद्वयताथवर्ति श्रीमागधादीनमरानशेषान् ।
पद्म पटीराक्षतपुष्पहृष्यप्रदीपपूषोद्धफलै प्रयक्ष्ये ॥७॥

ओं ह्रीं सीतासातोन्मागधादितीर्थदेवेभ्य जलादि अर्घ्यं० ।

समुद्रनाथोल्लवणादमुष्यमध्याम्यर्तितमनुधिभूतिभोक्तृ ।

पयःपटीराक्षतपुष्पहृदयप्रदापधूपोद्भूतं प्रयक्ष्ये ॥८॥

ओं ह्रीं संख्यातातममुद्रदेवस्य जलादि अर्घ्यं० ।

लोकप्रसिद्धोत्तमतथ देवान्नन्दीश्वरद्वीपसर स्थितादीन् ।

पयःपटीराक्षतपुष्पहृदयप्रदापधूपोद्भूतं प्रयक्ष्ये ॥९॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवस्य इन्द्र जगदि अर्घ्यं० ।

गङ्गादय धीमुखाश्च देव्य धामागघाघादय समुद्रनाथा ।

हृदेशिनोऽन्येऽपि जलान्येषां सारयन्त्यस्य जिनोऽग्निताम्ब ॥

उपयुक्त इन्द्रको पङ्कर कुण्डमे जल निकालना आरम्भ करना चाहिए और जलको छानकर एक बड़े बर्तनमें रग रेंगना, पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर कलशाम अंग भरना चाहिए ।

आ ह्रीं श्री ह्रीं प्रति-कीर्ति-बुद्धि-रमी शान्तिपुष्टय श्रीदिव्यनुमार्पणे जिनेन्द्रमहाभियेन्द्रशमुपेयेतेषु निर्यविशिष्टा भवत भवत स्वाहा ।

तीर्थनामन तीर्थान्तरदुरधिगमोदारदिव्यप्रभाय

सृष्टीर्त्तीर्थोत्तमस्य प्रथितजिनपते प्रेषितप्राभृताभान् ।

श्रीमुरारयातदेवीनिगहृतसमुखायामनोद्भूतशक्ति—

प्रागव्यानुद्धरामा जयजयनिनदे दातुम्भीयकुम्भान् ॥

इस इन्द्रको पङ्कर जलपुष्टि विधानपूर्वक करे । विसर्जन कर के जल-कलशाकी साभागवती स्त्रिया अथवा कन्याओं द्वारा ले आना चाहिए । कलशाकी सख्या ९ रहती है ।

जल लाकर भगवान्‌का अभिषेक करना चाहिए । अभिषेकके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर केदार मिथित जलधारा छोड़नी चाहिए ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ अहं नमो-हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोष कल्मषाय दि-प्रतेनामूतयं नम श्रीशान्तिनामाय शान्तिस्त्राय सर्वविघ्न प्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सचपरकृतशुद्धोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामरकामरविनाशनाय ॐ हा हूँ हूँ हूँ असि आजसा पवित्रतर-गन्धोदकेन जिनमभिषिञ्चामि । मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु पुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा ।

भिन्न, तदनन्तर स्वस्ति मङ्गल विधान करे। पश्चात् सकलीकरणकी क्रिया करनी चाहिए। यह सकलीकरणकी क्रिया स्नानोपरान्त जलयात्रा-
क पूज भी की जा सकती है। परन्तु उत्तम मार्ग यही है कि जलयात्राके
उपरान्त सकलीकरण क्रिया की जाय। इसमें पश्चात् मङ्गलाष्टक,
सम्पन्नाम आदि स्वस्ति विधान एवं रत्नत्रय व्रतोत्थापनकी पूजा करनी
चाहिए। पूजनके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर सकल छोड़ना
चाहिए। सकलमें अक्षत, मुपाडी, हस्दी, पीली सरसों और एक पैसा
रहना चाहिए।

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य श्रीमहादिमङ्गलो मते त्रैलोक्यमप्य
मध्यासीने मध्यलङ्के श्रीमद्नाट्यपक्षसंस्त्यमाने दिव्यम्वुक्षोप
हक्षितमम्बुद्वीपे महनीयमहामेरोदक्षिणभागे अनादिकालसिद्धभरत
नामधेयप्रविराजितपद्मस्तम्भमण्डितभरतक्षेत्रे सकलशलाकापुरणमम्यधवि
राजितायस्वर्ग्ये परमधमममाधरणविहारप्रदेशे^१ अस्मिन् विनेयपत्तनाभिरामे
भारतनगरे^२ अस्मिन् दिव्यमहाधौमालयप्रदेशे एतद्वसर्पिणाकालावमाने
प्रवृत्तमुत्तमगुणैर्मनूपमाभिव्यक्तमङ्गलोरम्यवहार आरूपमहामिपीर
हयमङ्गलमहापुरुषपरिवर्तितादितपरमोपशमपवक्त्रं धूपभसेतसिंहमेन
चारमेनादिगणधररवामिनिरूपितविशिष्टधर्मोपदेशे पञ्चमकाल प्रथमपादे
महतिमहावीरमयमाकर्ण्यध्वरोपदिष्टमद्मव्यतिकरे धीमौतमहामिप्रति
पादितमन्मागप्रवृत्तमाने श्रेणिमहामण्डलेइतरसमाधरितमन्मागादिदेशे

जलधाराके पश्चात् गन्धोदक छेकना मन्त्र—

मुक्तिश्रीवनिताकरोदगमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादक
नगरेन्द्रप्रदेशेन्द्रचक्रपञ्चीराज्याभिषेकोदकम् ।
सम्पन्नानचरित्रदर्शनलतासवृद्धिमपादक
कीर्तिश्रीवसिष्ठक तव चित्तस्नानस्य गन्धोदकम् ॥

१ इस स्थानपर अपने प्रदेशका नाम जोड़ना चाहिए।

२ इस स्थानपर अपने नगरका नाम जोड़ना चाहिए।

२०१३ मिते^१ विज्रमाद्धे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायां तिथौ गुरुवामरे प्रशान्तारकायोगकरणनक्षत्रहोरासुहृत्तलभयुक्त्रयाम् अष्टमहाप्रातिहार्यं शोभितधूमदहर्परमंश्परमसिधौ अह रत्नत्रयनामकव्रतं स्थापयामि ।
 ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं अमि आ उसा सर्वशान्तिर्भवतु, सर्वकल्याणं भवतु
 श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।

इसमें अनन्तर पुण्याहचारन, शान्ति, विसर्जन आदिको सम्पन्न करे ।

उत्थापनके लिए पूजन सामग्री, रत्नत्रय यज्ञ, तेरह शाख, मन्दिरके लिए तेरह पूजाके वर्तन, छत्र, चमर, झारी आदि मंगल द्रव्य, चौदोवा तथा नगदी रुपये दान देना चाहिए । उत्थापनके उपरान्त साधनों भाइयोंके तेरह घरोंमें फल भोजना चाहिए ।
 दशलक्षण व्रतोत्थापन की सामग्री यदि शाख और पूजनके बरतन तेरह-तेरह देनेकी शक्ति न हो तो कमसे कम तीन अक्षय देने चाहिए । इस व्रतका उत्थापन तान वर्षोंमें किया जाता है । पूजनमें चढ़ानेके लिए १३ चौदोरे रखतिन, इतनी ही सुपारियाँ, चार नारियल रहने चाहिए । ये नारियल प्रत्येक घरकी पूजामें चढ़ाने चाहिए । सुपारी, साधिया प्रत्येक अघमें लेना चाहिए । यह अर्घ्य मादनेके कोठेमें चढ़ेगा ।

इस व्रतके उत्थापनके लिए १०० कोठोंवाला मण्डल गोलाकार बनाना चाहिए । मटल लाल, नेत, हरे, पीले और नीले वर्णके चायलोंसे बनाना चाहिए । इसके पश्चात् रत्नत्रय व्रतोत्थापनके समान ही जलयात्रा करनी होती है । पूजनकी विधि रत्नत्रय व्रतके समान है । सरलीकरण अंग-यास आदि नियमों पूरवत् कर लेनी चाहिए । अनन्तर उत्थापनकी पूजा करनी चाहिए । इस व्रतके उत्थापनके आदिमें उतावा गया है—

भादी गमगृहे पूजा क्रियते सद्बुधोत्तमै ।

जिननामावलिं शुद्धा सरलीकरणादिकम् ॥

१ जिस दिन उत्थापन करना हो, उसके तिथ्यादि जोड़ना चाहिए ।

मन्मथप्रतिष्ठा च पठाने पण्डितोत्तमै ।
नमोनामाध्यान्विते पौरै कलागुणविराजितै ॥
नलकमलममूह वर्जुलाकरचक्रं

भयदातवज्रनाश सवमोक्षप्रथमम् ।

परमगुणनिधान सद्गुणोपप्रधान

विविधगुणमुपधर्त्तुं शुद्धपत्रे क्षियामि ॥

उत्थापनके अनन्तर प्रथममाति सूचक रत्नप्रणाले संकल्पकी यहाँ भी पत्कर रत्नप्रदे स्थानपर दशरथगुणप्रद आइ लना चाहिए । अथर्व प्राम, नगरादि और अपना गाम आदि भा जोड़ देने चाहिए ।

उत्र, चमर, शायी आदि मंगलद्रव्य, ज्यमाला, कलश, दश धान्य, उत्थापनकी नाममो मन्दिरके लिए दश धान, दशरथग यत्र, १०० चौदोहे रास्तिर, दश नारियल, १०० मुसाडीकी आवश्यकता होती है । इस उत्थापनमें दश पक्षमें पल चौटना आवश्यक है ।

इस प्रथके उत्थापनके लिए कुल २५९ कोठका मण्डल बनता है । प्रथम मण्डल दशानविशुद्धिका होता है, इसमें १८ कोठक होते हैं ।

द्वितीय मण्डल विनयसम्पन्नताका होता है, इसमें ५ कोठक होते हैं । तृतीय मण्डल शीलभाषनाका होता है, इसमें १० कोठक होते हैं । चौथा मण्डल आभीर्यज्ञानोपयोगका होता है, इसमें ४२ कोठक होते हैं । पौरवो संवेग नामका मण्डल है, इसमें १४ कोठक हैं । छठवाँ शक्ति समाज नामका मण्डल है, इसमें ४ कोठक होते हैं । सातवो शक्तिप्रय नामका मण्डल, है, इसमें २४ कोठक होते हैं । आठवाँ साधु समाधि नामका मण्डल है, इसमें ४ कोठक हैं । नवों वेपाश्र्व है, इसमें ४ कोठक हैं । दशवों अहम्भक्ति नामका मण्डल है, इसमें १२ कोठक होते हैं । ग्यारहवों आचार्यभक्ति नामका मण्डल है, इसमें १२ कोठक होते हैं ।

बारहवाँ गृहशुभभक्ति नामका है, इसमें २ कोष्ठक होते हैं। तेरहवाँ प्रवचन भक्ति नामका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं। चौदहवाँ आवश्यक परिहाण नामका है, इसमें ६ कोष्ठक हैं। पंद्रहवाँ माग प्रभावना है, जिसमें १० कोष्ठक होते हैं। सोलहवाँ ग्रन्थचनमालस्य नामका मण्डल है, इसमें ४ कोष्ठक होते हैं। इस प्रकार २५६ कोष्ठक का मादना रगीन बावलोंसे बना लेना चाहिए।

जलयात्रा, अभिषेक, मंगलाष्टक, सरलीकरण, अग-यास, स्वस्ति वाचन आदिके उपरान्त पाटशकारण प्रतोत्रापनकी पूजा करनी चाहिए। सकल्य मात्र पूर्ववत् ही पढ़ा जायगा, पर उसमें पोहोचकारण प्रतका नाम तथा तिथि नक्षत्रादि जोड़कर सकल्य छोड़ना चाहिए। पश्चात् पूर्ववत् पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करना चाहिए। उद्यापनके अन्तर १६ घरोंमें पर वितरित करना चाहिए।

पोहोचकरण यन्त्र, पूजन सामग्री, २५६ चौदीके स्वस्तिक, २५६ सुगन्धी, १६ शम्भू, १६ नारियल, बतन, छत्र, चमर आदि मंगलद्रव्य, उद्यापनकी सामग्री चंदोगा, दान करनेके लिए नगद रुपये आदि आवश्यक सामान हैं।

इस प्रतके उद्यापनके लिए प्रत्येक दिशामें तेरह तेरह चौशाल्य बनाकर कुल ५२ चौशाल्याका मण्डल बना लेना चाहिए। कपड़पर उने माण्डना

अष्टाद्विका को काममें कभी भी नहीं लाना चाहिए। बावलों द्वारा निमित्त मादना ही उत्तम होता है। मादना

यन जानेके उपरान्त, पूर्ववत् जलयात्रा और अभिषेक आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रतका उद्यापन आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको करना चाहिए। सरलीकरण अग-यास आदिके पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वक उद्यापन की पूजा करनी चाहिए। अन्तर रत्नत्रय प्रतोत्रापनमें बतलाये गये सकल्य मात्रको पढ़कर सकल्य करना चाहिए। पश्चात् पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

मन्दिरमें देनेके लिए आठ आठ उपकरण, आठ शाल, पूजा-सामग्री,
उद्यापनकी सामग्री च दोरा, पूजनमें चढ़ानेके लिए ५२ चंदीके स्वस्तिक,
५२ मुसाडी, चार नारियलकी आवश्यकता होती है।
मिदचक्र यंत्र भी बनवाना चाहिए।

इस उद्यापनके लिए ८१ कोटकोंका मण्डल बनाया जाता है। मण्डल
पर ही भगवान् पार्वनाथकी प्रतिमा विराजमान की जाती है। भूमिद्वारे
हविषार अतोद्यापन लिए कल लानेके पश्चात् सरलीकरण, अंग-यात्रा,
मंगलारक, स्वस्तिकविधान करनेके पश्चात् गन्धजुटीकी
पूजा करनी चाहिए। अन्तर उद्यापनकी पूजा, पश्चात् पूर्वोक्त सकल्प,
पुण्याहवाचा, छान्ति और विस्तर्जन करना चाहिए। यथाया गया है—

आर्द्रा गन्धजुटीपूजा तत् स्नयनमाचरोत् ।
पश्चात् कोटगता पूजा कक्षस्था विपुधोत्तमै ॥
पार्वनाथजिनेन्द्रस्य प्रतिमा परमां शुभाम् ।
अद्भुतानन्दिविधिना स्थापयेत् स्वस्तिकोपरि ॥
पश्चात् पूजा प्रवर्त्तय्या विधिवद्वा मुदा तया ।
उत्तमां सधनसामग्रीं मेलयित्वा त्रिगुदित ॥

नौ शाल, मन्दिरके लिए नौ बतन, उपकरण, चढ़ावा, पूजाके लिए
८१ गोदा या चंदीके स्वस्तिक, ८१ मुसाडी, ४ नारियल, पूजा सामग्री,
नौ धारकोंके घर नीं गौ वल रितरित करानेके लिए
उद्यापनकी सामग्री एकत्र करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर गौ
आवकोंको भोग कराना चाहिए।

गुद कोरा पड़ा लेकर उस धो लना चाहिए। पश्चात् धौगण्ड, दशर
आदि सुगन्धित यस्तुजोंका लेप उग घड़ेपर करना चाहिए। मुखन,
अनन्तवतोद्यापन चौदी या पञ्चरत्नकी पुदिषा उग घड़ेमें छोड़नी
चाहिए। घड़ेका दूध यस्तुसे आच्छादित कर उस
पुष्पमालाएँ पहना देना चाहिए। अन्तर घड़ेके उपर एक बड़ी चाली
प्रशाल करके रखना, उस चालीमें अनन्तका मण्डल १९६

लेना । एक दूसरी थालीमें श्रीपण्डमे अनन्त यत्र लिखकर अथवा स्वस्ति
लिखकर चौकीसी प्रतिमा विराजमान करना । गोंठ दिया हुआ अनन्त
पहली थालीमें ही रखा जाता है । अथवा चौकी पर ही चौदह मण्डलका
वृत्ताकार मोंडना बना लेना, प्रत्येक मण्डलमें चौदह चौदह कोठक बनाना ।
मण्डलके मध्यमें चौकीसी प्रतिमा विराजमान कर पूजन करना चाहिए ।
प्रत्येक कलशकी पूजामें नारियल चढ़ाना चाहिए तथा प्रत्येक कोठकपर
सुपाड़ी । जलपात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अग्न्यासके पश्चात् उग्रा
पनकी पूजा करनी चाहिए । पूजापरांत सकरप, पुण्याहवाचन, शान्ति
और प्रिसर्जन करना चाहिए ।

१४ प्रकारके उपकरण, १४ शाम्भ, पूजार्थे लिए १९६ सुपाड़ी,
१९६ गोटे या चाँदीके स्वस्तिक, १४ नारियल और पूजन सामग्री एकत्र
उद्यापनकी सामग्री करनी चाहिए । उद्यापनके पश्चात् १४ भावकोंको
भोजन करना चाहिए । अन्तप्रतका यत्र भी
नगराया जाता है ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए २५ कमलका मण्डल बनता है । जल
पुष्पाञ्जलि पात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् उद्यापनकी
पूजा की जाती है । उद्यापनके आरम्भमें विधि
प्रतोद्यापन बतलाते हुए कहा गया है—

ओ भव्या शृण्वतामस्य मामप्रवादि विधिं पुरा ।

जलादिकल्पपर्यन्तं सवद्रव्यं समुत्तमम् ॥

कसारतालभृद्भारघण्टातोरणमालिका ।

चन्द्रोपकरीपमालाधूपस्य दहनानि च ॥

मामण्डलादिकान्यत्र चैतेषां पञ्चकं गृहम् ।

स्वज्जम्भोदकादीनां पञ्चविंशतिकं पुनः ॥

अन्यानि च सुगन्तूनि स्वाद्यप्याद्यानि शुद्धितः ।

आनेयमिति सन्नयै सर्वं जिनमन्दिरं प्रति ॥

पद्मरत्नरूपं पूर्णं पद्मविभक्तिपद्मम् ।

मण्डल सुन्दरं कुर्वात् मध्य मेद सज्जिकम् ॥

भक्तो सम्पत्पुटोत्तरं जिन मधुर्यं तत्परम् ।

जिनादीन् सम्पूत सूरिपादाम्बु च पुष्पा जमात् ॥

अथात्—छत्र, चमर, शारी, शरण, पटा, धूपदान, चंदोरा, दोस्ट, मामण्डल, पाँच बत्ता, पाँच शाल, २५ नैवेद्य, २५ गुवाडी, पाँच नारि बल, पञ्चरत्नाकी पुटिया, २५ चाँदी या माटके स्वस्तिक आदि छाम्प्री एकत्र करके मण्डलके मध्य जिनप्रतिमा विराजमान करके उद्यापन पूजा सम्पन्न करनी चाहिए। पूजापके उपरान्त संकल्प, जप, पुष्पाहवाचन, शान्ति प्रियमा आदि क्रियार्थ करनी चाहिए। अनंतर कम से कम पाँच भावकोंको भोजन कराना, दान देना आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए।

इस प्रसंगे उद्यापनके लिए छौट मण्डलोंमें चौबारा चौबीस कोटक बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यम 'ओं ह्रीं', लिखाकर उसपर स्थापना रखनी चाहिए। मण्डलके चारों कोनोंपर "ओं ह्रीं भूत भविष्यवर्तमानकालानवतुष्टिनिशितार्थकरेभ्यो नमः" लिखना चाहिए। बल्यवाचा, अर्चना, एकलीक रखके पश्चात् मण्डलाटक, स्वस्तिविधान, आंतर उद्यापनकी ७२ पूजाएँ करनी चाहिए। पूजापके उपरान्त, पूर्वोक्त संकल्प, पुष्पाहवाचन, शान्ति प्रियर्जन आदि क्रियाओंके उपरान्त इस प्रसंगे सात स्तोत्रोंसे करनी चाहिए।

उद्यापनके लिए ७२ चाँदी या माटके स्वस्तिक, तीन नारियल, ७२ गुवाडी, उपकरण, बत्तन, कम से कम तीन शाल, पूजन छाम्प्री आदि एकत्र करनी चाहिए। उद्यापनके अनंतर २४ भावकोंको भोजन कराना, २४ भावकोंके घर बल भेजना चाहिए।

इस प्रसंगे उद्यापनके लिए सात कोष्ठोंका एक बल्यवाकार मण्डल बनाना चाहिए। अथवा एक करे घड़ेको स्वच्छ और सुगन्धित कर

मुकुटसप्तमीव्रत उसके उपर एक थाली रखनी चाहिए । इस थालीमें सात कोटे एक ही मण्डलमें बना देना चाहिए । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, जगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् चतुर्विंशतिविनपूजा, पश्चात् प्रत्येक चपके व्रतकी आदिताय स्वामी की पूजा करनी चाहिए । उद्यापनने समय जिनालयको सात-सात उपकरण, सात शास्त्र, च दोवा, माण्डल, रतन आदि देना तथा भावक और मुनियोंको आहार दान देना चाहिए । यह उद्यापन भावण सुदी अष्टमीको किया जाता है ।

इस व्रतके उद्यापनने लिए एक मण्डलाकार दस कोठरोंका मण्डल बनाया चाहिए । मण्डलके मध्यमें "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" लिखना चाहिए ।

अक्षयफल दशमी इस व्रतका उद्यापन भावण शुक्ला एकादशीको किया जाता है । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, जगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए । उद्यापनमें मंदिरको दस शास्त्र, दस रतन, च दोवा, माण्डल, छत्र, चमर आदि देना तथा भावकोंको भोजन करना, पाठशालाओं, औपचारिक एवं अथ उपयोगी सस्थाओंके लिए दान देना चाहिए । इस व्रतके उद्यापनमें दस भावकोंके घर दस दस आम या नारंगी ही वितरित की जाती है ।

यह व्रत बारह वषटक पाला किया जाता है, पश्चात् उद्यापन किया जाता है । उद्यापनने लिए बारह कोठरका मण्डलाकार मंडल बनाया जाता है । मध्यमें 'ओं ह्रीं असि आ उस्ताय नमः' लिखा जाता है । मंडलके चारों कोनोंपर नमोवार मंत्र लिख दिया जाता है । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, जगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा की जाती है । प्रत्येक कोठमें प्रथम पूजन किया जायगा । प्रत्येक कोठके पूजामें एक एक नारियल भी चढ़ाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है । उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निमाण और प्रतिष्ठा

मस्तोद्यापन द्वादशी आता है । मध्यमें 'ओं ह्रीं असि आ उस्ताय नमः' लिखा जाता है । मंडलके चारों कोनोंपर नमोवार मंत्र लिख दिया जाता है । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, जगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा की जाती है । प्रत्येक कोठमें प्रथम पूजन किया जायगा । प्रत्येक कोठके पूजामें एक एक नारियल भी चढ़ाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है । उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निमाण और प्रतिष्ठा

मस्तोद्यापन द्वादशी आता है । मध्यमें 'ओं ह्रीं असि आ उस्ताय नमः' लिखा जाता है । मंडलके चारों कोनोंपर नमोवार मंत्र लिख दिया जाता है । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, जगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा की जाती है । प्रत्येक कोठमें प्रथम पूजन किया जायगा । प्रत्येक कोठके पूजामें एक एक नारियल भी चढ़ाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है । उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निमाण और प्रतिष्ठा

करके निराजमान करना चाहिए। चार शास्त्र, चार उपकरण, पूजनके वसन, चन्दोवा, तोरण, घण्टा, छत्र, चमर आदि मंदिरको चढ़ाया चाहिए। चारों प्रकारका दान देना, रोगी दुस्त्रियोंकी सेवा करना एवं शिक्षाका प्रबंध करना चाहिए।

पाँच वष, पाँच भरीया करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्घाटन किया जाता है। उद्घाटनके लिए एक कोरा मिट्टीका घड़ा लेकर उसे जलसे धुद करनेके पश्चात् उसपर चन्दन और केशरका रोहिणी व्रतोद्घाटन लेप करना चाहिए। पश्चात् उसे एक द्रवत वस्त्रसे आच्छादित कर पुष्पमाला पहना देना चाहिए। अनन्तर उसके ऊपर एक थाली रखकर पूजा करनी चाहिए। थालाम ऋद्धि यन्त्र बनाया जाय। कुल रोहिणी सरवा व्रतके दिनोंमें ७२ प्रमाण होती है अतः इस व्रतके उद्घाटनमें त्रिकाल चतुर्विंशतिपूजन पृथक्-पृथक् करना होगा। पूजनकी प्रतिया पूर्ववत् है—जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर ७२ पूजाएँ होती हैं। प्रत्येक पूजाके अन्तमें चाँदी या गोमैका स्वस्तिक, नारियल या मुपाडी चढ़ाई जाती है। उद्घाटनमें कमसे कम ५ शास्त्र, पूजनके वसन, चन्दोवा सारी घण्टा आदि चढ़ाया जाता है। शक्ति हो तो ७२ भावकोंको भोजन कराया जाता है।

पाँच वष व्रत करनेके उपरान्त इसका उद्घाटन भाद्रपद शुक्ल पक्षी को किया जाता है। उद्घाटनके लिए एक घड़ा लेकर धुद कर, पुष्पमालाएँ उसे पहनाकर थालीमें सत्रह कोठोंका विनायक यन्त्र बनावे। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्घाटन पूजा करे। यह उद्घाटन पूजन प्रकाशित नहीं है, अतः इसमें पृथक्-पृथक् मंत्रसे परमेश्वरी पूजन करनेके पश्चात् विनायक यन्त्रकी सत्रह पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अथ के उपरान्त सत्रह, पुष्पाहवाचन आदि क्रियाएँ करें। सत्रह म मुपाडी, स्वस्तिक चढ़ावे। कलशमें पचरत्नकी पुटिया छोड़नी ।

मन्दिरके लिए पौन शास्त्र, पाँच बतन, छत्र, चमर, बैठन आदि दान करता चाहिए। उपासार्थे आठर कम। कम पौन भावकोंको भोजन कराता तथा पौन घरोंमें पौन पात्र वस्तु भजता आवश्यक है।

इस प्रकार उपासार्थ लिए पत्तारभटी मण्डल बनाया जाता है। प्रथम पर्ययमें १६ कोटर, द्वितीय गिदरपर्ययमें ८ कोटर, तृतीय आश्वय कोटिलपर्ययमी पर्ययमें ३६ काठर, चतुर्थ दशाध्यायमें २५ कोटर और पंचम साधुरण्यमें २८ कोटर बताये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ कोटर होते हैं। अग्राष्टा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, रत्नलिखितान्त उपरान्त पञ्चपरमेष्ठी पूजा, जो माघान्दी आचार्य द्वारा विरचित है, करनी चाहिए। प्रत्येक अरुण गुफाटी और रात्रिक चढ़ावा जाता है तथा प्रत्येक वलनकी पूजामें नारियल, पूजाके पत्तात् संकल्प, पुण्याह वाचनादि करने चाहिए। मन्दिरके लिए पौन शास्त्र, पाँच बतन, उपकरण, घण्टा, चढ़ावा आदिका दान कराता तथा २५ व्यक्तिोंको भोजन कराता, यदि शक्ति हो तो १४३ व्यक्तिोंको भोजन कराता तथा २५ घरोंमें पौन पाँच वस्तु भेंटता चाहिए।

■ वय सत्र प्रत करनेके उपरान्त इस प्रतका उपास भाद्रपद शुक्ला एतमीको होता है। परको गुद कर उसको पुष्प माला पहनाकर चन्द्रमण्डी प्रतीक उसके ऊपर एक बड़ा घाल, जिसमें पेशरथे विनायक यत्र बनाया गया हो, स्थापित करे। अभिषेक आदि क्रियाओंसे पश्चात् उपासन करे। उपासामें भूतका स्त्रीन चतुर्विंशति, बतमातकालीन चतुर्विंशति, मरिच्यकालीन चतुर्विंशति, विद्यमान विंशति तीर्थकर, पञ्चपरमेष्ठी और महावीरग्यामी इस प्रकार कुल छ पूजा की जाती हैं। गूण अपने पश्चात् संकल्प, पुण्याहवाचनादि करे। मन्दिरको छ शास्त्र, छ उपकरण, छ बतन प्रदान करे। चारों प्रकारका दान दे। कमसे कम छ भावकोंको भोजन कराये।

यह प्रत सात वर्ष करनेके उपरान्त भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको इस

व्रतका उगापन किया जाता है। पूर्ववत् मिट्टीने कलशके ऊपर थाल
रगकर उगापनकी पूजा होती है। थालमें सात
निर्दाप्यसमी
व्रतोद्यापन
दलका कमल बनाया जाता है। तथा प्रयेर दल
पर व्रमदा 'नों ह्रीं अ मि आ उ सा' लिखा जाता
है। पूर्ववत् सभी क्रियाओंके करनेने उपरान्त पंच परमेष्ठी और समुच्चय
चौबीसी पूजाके पश्चात् ऋषमनाथसे मुपादवनाथ तक सात पूजाएँ का
जाती हैं। उगापनमें सात शास्त्र, सात उपकरण, सात वतन मन्दिरको
दिये जाते हैं तथा चारोंका दान दिया जाता है।

सोलह वष व्रत करनेके पश्चात् भाद्रपद शुक्ला नवमीको इस व्रत
का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापनने लिए मिट्टीका कलश लेकर शुद्ध
करे, उस चन्दन और केशरमें स्निह करे, पश्चात्
निर्दाप्य अष्टमी
व्रतोद्यापन
पुष्पमाला पहनाकर उसपर त्रिनाथक व्रत बनाकर
थाल रने और उसी थालमें पूजा करे। अभिरक्षकी
क्रियाके पश्चात् सन्धीकरण, अगम्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, पंच-
परमेष्ठी पूजन और समुच्चयचौबीसी पूजनके पश्चात् चौबीसी पूजनमेंसे
आरम्भके सोलह तीर्थकरोंकी पूजा करनी चाहिए। पूण अपने अनन्तर
सकल्प, पुण्याहवाचन, ध्याति और विसर्जन करे। उगापनमें सोलह
उपकरण, सोलह शास्त्र, पूजनने वतन मन्दिरको भेंट करे। सोलह
आयकोंके यहाँ मिठाई फल भेने। कमसे कम सोलह आयकोंको घर
शुलाकर भोजन करावे।

इस व्रतका उगापन दस वष व्रतका पालन करनेने उपरान्त भाद्र
पद शुक्ला एकादशीको होता है। एक घंटा लेकर उसे पूर्ववत् शुद्ध और
सुगन्धदशमी
व्रतोद्यापन
सुगन्धित कर पुष्पमालाओंसे आच्छादित करे। उसके
ऊपर एक थालमें त्रिनाथक व्रत बनाकर विसर्जमान
करे। अभिषेक आदि क्रियाओंने पश्चात् पंचपरमेष्ठी,
चौबीसी, आदिनाथ, चन्द्रप्रभु, श्रीसलनाथ, त्रिमलनाथ, घमनाथ, दान्ति-
नाथ, पादवनाथ और महावीर स्वामीकी पूजा करे। सकल्प, पुण्याह

वाचन पूवकत् करे । उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण, पूजाके बर्तन आदि मंदिरको दान दे । साधर्मी भावकोंकी भोजन करावे । दस दस फल दस भावकोंके घर भेजे । शक्ति हो तो दस घरोंमें बर्तन बाँटे ।

इस व्रतमें उद्यापनके लिए बाँचर्म एक अष्टदल कमल बनाकर पश्चात् मण्डलाकार दो पत्तियोंमें तास कोष्ठक अर्थात् प्रत्येक पत्तिमें पट्टह

पट्टह कोष्ठक बाँधे । अष्टदल कमलमें ऊपर सिंहासन रखकर प्रतिमा विराजमान करे, पश्चात् जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्ति

विधान करनेके अनंतर उद्यापन पूजा करे । पूजा अथके पश्चात् चण्डल, पुण्याइवाचा, शान्ति और विसर्जन करे । उद्यापनके अनंतर जिनालयकी शास्त्र, बर्तन, उपकरण दान दे । तीस भावकोंकी भोजन करावे तथा तीस भावकोंके घर फल और मिठाई भेजे ।

प्रथम ६३ उपवास किये जाते हैं, अतः इसका मण्डल भी ६३ कोष्ठकोंका होता है । प्रथम मण्डल तीर्थेश्वर कहलाता है जिसके चौबीस

कोष्ठक होते हैं । द्वितीय मण्डल चक्रवर्तीका है, इसमें बारह कोष्ठक होते हैं । तीसरा मण्डल नारायणका है, इसमें ९ कोष्ठक होते हैं, चौथा मण्डल प्रतिनारायणका

है, इसमें भी नौ कोष्ठक होते हैं । पाँचवाँ मण्डल बलदेवका है, इसमें भी नौ कोष्ठक होते हैं । मण्डलमें मध्यम भगवान्की प्रतिमा विराजमान कर उद्यापन पूजन करना चाहिए । आरम्भमें अलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके अनंतर उद्यापनकी ६३ पूजाएँ करनी चाहिए । उद्यापनकी प्रत्येक पूजाके अन्तिम अधर्म स्वस्तिक, सुपारी नैवेद्य लेना चाहिए । उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण मंदिरको देना चाहिए । ६३ भावकोंकी भोजन कराया तथा ६३ भावकोंके यहाँ फल मिठाई भेजना और शक्तिके अनुसार ६३ घरोंमें बर्तन बाँटना चाहिए ।

घौदहवर्षतक व्रत पालन करनेके उपरान्त भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको इस व्रतका उद्यापन किया जाता है । उद्यापनके दिन एक घड़ा लेकर,

चतुर्दशी प्रतोद्यापन उसे शुद्ध करे। पश्चात् उसी घड़ापर विनायक-चित्र लिखकर एक चाली रत्ने। इस चालीमें उद्यापन पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमें चौदह उपकरण, चौदहशास्त्र, यत्न आदि मन्दिरको देना चाहिए। चौदह भावकोंको भोजन तथा चौदह घरोंमें फल भेजना चाहिए।

इस प्रतिका उद्यापन करनेके लिए ९ दण्डका कमल मण्डल बनाया जाता है। बीचमें 'ॐ ह्रीं' लिखा जाता है। जलयात्रा, अभिरक्त आदिके उपरांत उद्यापनका पूजा करनी चाहिए। इस पूजामें पंचपरमेष्ठीकी पृथक् पृथक् पाँच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमान विद्यति दीर्घेकर पूजन, आदिनाथ पूजन और महावीर रत्नामीना पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते हैं। उद्यापनमें मन्दिरके लिए नौ उपकरण, नौ शास्त्र, नौ यत्न दिये जाते हैं। चारों प्रकारका दान देना, नौ भावकोंको भोजन कराना, नौ घरोंमें फल भेजना भी इसकी विधिमें परिगणित है।

इस प्रतक उद्यापनके लिए आठ मण्डलका १४८ कोठोंका मण्डल बनाया जाता है। पहला मण्डल ज्ञानावरणायका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं। दूसरा दयनावरणायका होता है, इसमें ९ कोष्ठक होते हैं। तीसरा यदनायका है, इसमें २ कोष्ठक, चौथा मोदनीयका है, इसमें २८ कोष्ठक, पाँचवाँ आशुका है, इसमें ४ कोष्ठक, छठवाँ नामरुमका है इसमें ९३ कोष्ठक, सातवाँ गोत्रका है, इसमें दो कोष्ठक एवं आठवाँ अतरायका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं। उद्यापन पूजनके पहले जलयात्रा, अभिरक्त, सकलकरण आदि क्रियाएँ पूरवत् करनी चाहिए। पश्चात् उद्यापनके उपलक्ष्य मन्दिरको कम से कम ८ उपकरण ८ शास्त्र, ८ यत्न दे तथा साधमियोंको भोजन करावे। शक्तिक अनुसार चारों प्रकारका दान दे।

अवशेष समस्त प्रतीक उद्यापनके लिए उस प्रतके उपवास या घरोंके अनुसार माण्डना बना लेना चाहिए। जिन प्रतीकोंका माण्डना नहीं बन

अन्य व्रतोंके उद्या-
पनकी विधि

सकता हो, उन व्रतोंके उद्यापनके लिए सुगरकृत मिट्टीने कलशमें ऊपर चाल रखकर पूजा करनी चाहिए। पूजाके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकली करण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिप्रधानसमा उद्यापनोंमें होगा। पूजाके पृष्ठ अधरमें उपरान्त सनत्प, पुण्याहवाचन, शांति और दिसजन किया जायगा। उद्यापनकी पूजाके कायमें मुषाही, स्वस्तिक चढ़ाना चाहिए। मंदिरको उपकरण, रतन और शास्त्र देने चाहिए। किसी भी व्रतका उद्यापन व्रतकी समाप्तिके दिन किया जाता है। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसरपर कभी भी किसी भी व्रतका उद्यापन किया जा सकता है।

प्रथमानुयोग और व्रतविधान

प्रथमानुयोगने शास्त्रोंमें व्रतविधान और व्रतोंके फल प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित है। हरिश्चपुराणने ३४ वें सर्गमें हरतोमद्र, रत्नामली, सिंहनिष्क्रादित आदि व्रतोंका विस्तारपूर्वक वर्णन अंकित है। बताया गया है कि श्रेणिजने भगवान्क समरक्षणमें गौतम स्वामीसे प्रश्न कर व्रतोंके स्वरूप और उनसे फल प्राप्तकताओंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की है। पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिश्चपुराण, आराधनाकथाकोश व्रतत्रयाकोष, हरिवेण्णत्रयाकोश आदि ग्रंथोंमें व्रत पालन करनेवाले व्यक्तियों के चरित वर्णित हैं। इस प्रक्रममें प्रमुख व्रतोंकी कथाओंका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है। इन आख्यानोंके अध्ययनसे जनसाधारणकी प्रवृत्ति व्रतधारण करनेकी ओर होगी।

समस्त व्रतार्थ प्रधान रत्नत्रय व्रत है। त्रिचिपूर्वक इस व्रतने पालन करनेसे स्वर्गादिके सुखोंको भोगकर व्यक्ति निवाणपद प्राप्त करता है। इस व्रतने पालन करनेवाले राजा वैश्रवणकी कथा निम्न प्रकार है—

सुदर्शन मेरुकी दक्षिणदिशामें विदेहक्षेत्रके कच्छावती देशने मध्य वात शीतपुर नामके नगरमें वैश्रवण नामका राजा धर्म और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करता था। एक दिन वह नृपति वसन्तऋतुमें वनविहारके

लिए गया। यहाँ प्रकृति की सुन्दर छटा को देखकर इसके मनमें अनन्क प्रकार की भावना उत्पन्न होने लगी। इसी मानसिक दृढ़ते की वजह से उसकी दृष्टि पार्श्व की एक शिखा पर पड़ा। मुनिराज ने ऊपर पड़ी। वह हर्ष विमोह हो मुनिराज के पास गया और निनययुक्त हो उनके चरणों के निकट नमोऽस्तु कहकर बैठ गया। मुनिराज ने धर्मश्रद्धा की आशीर्वाद दिया, पश्चात् शिखा को सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया—‘राजन्, मिथ्यात्व के कारण ही यह प्राणी संसार में परिभ्रमण करता है। मिथ्यात्व से ही नवीन कर्मों का आरम्भ होता है तथा इसके कारण शांति और चारित्र्य भी विपरीत होते हैं। सम्पद्दर्शन ही आत्मा का गिञ्जो स्वभाव है, इसके प्राप्त दातृ ही यह प्राणी आत्मा के निज परलोक में रमण करता है। अतः रत्नप्रय की प्राप्ति के लिए सदा प्रयास करना चाहिए। रत्नप्रय सम्पद्दर्शन, सम्पद्गान और सम्पद् चारित्र्य के कारण करनेसे ही जीव मुक्त शान्ति प्राप्त करता है। रत्नप्रय धरण है, यही मोक्ष का मार्ग है। इस रत्नप्रय को जीवन में स्थापित करने के लिए रत्नप्रय मत्त का पालन करना चाहिए। मत्त विचार रूप अनुमान दाता है, इसके पालन करनेसे जीवन में रत्नप्रय का स्वरूप होता है।

मुनिराज के इस उपदेश को सुनकर शिखा वैभरणों पुन मुनिराज से कहा—‘प्रभो! मानव पशुपक्ष की सम्यक्ता किसे है? गृहस्थायण में रहकर व्यक्ति किस प्रकार धर्म का पालन कर सकता है? क्या उक्त रत्नप्रय मत्त को मुक्त जैसे भावक भी धारण कर सकते हैं? इस मत्त का धारण करने का फल क्या है?’

मुनिराज—‘राजन्! मानव पशुपक्ष की सम्यक्ता धर्मसाधन में है। जो व्यक्ति इस अमूल्य पशुपक्ष के उपरोक्त धर्मसाधन के लिए करता है, वह धर्म है। गृहस्थायण में रहकर भी व्यक्ति धर्म का पालन कर सकता है। यह आभय ही जीवन की वैभारिका श्रेष्ठ है। रत्नप्रय आत्मा का धर्म है अथवा यों कहना चाहिए कि आत्मा ही स्वयं रत्नप्रय स्वरूप है। इस रत्नप्रय धर्म को भावक भी धारण कर सकता है। विधिपूर्वक रत्नप्रय का पालन करनेसे स्वयं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

राजा वैश्रवणने मुनिराजसे रत्नत्रय व्रत ग्रहण किया। उसने १३ वर्षों तक यथाविधि इस व्रतका पालन किया। इससे पश्चात् उत्साहपूर्णक व्रतका उद्गापन कर दिया। रत्नत्रय व्रतके आचरणके कारण उस वृषति की आत्मा इतना पावन हो गयी कि उसे ससार नीरस दिखलायी पड़ने लगा। एक दिन उसे तृप्तानके कारण एक वृक्ष जटसे उखड़ा हुआ बिखलायी पड़ा। विशालकाय वृक्षका इस प्रकार पतन होते देख राजा सोचने लगा—‘इस ससारके सभी मोहक पदार्थ किन्ध्वंशशील हैं। यहाँ सभी पदार्थोंकी पयाय निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं। एक दिन मुझे भी मृत्युके मुलम जाना पड़गा।’

जत जस आत्मकल्याणका अन्तर आ गया है। वह द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करने लगा, जिससे उसकी आत्मा वैराग्यसे परिपूर्ण हो गयी। उसने राजपाट छोड़कर दिगम्बर-दाशा धारण की। रत्नत्रय व्रतके अभ्यासके कारण उसकी आत्मामें अपरिमित शक्तियाँ आविर्भूत हो चुकी थीं। अपनी आयुका अंतिम समय जान उसने समाधिमरण धारण किया, जिससे वह अपराजित नामक विमानमें अहमिन्द्र हुआ। पदचात् वहाँसे चयनर मिथिलापुरीमें महाराज कुम्भरायण वहाँ सुप्रभायती महारानीके गर्भसे मस्तिनाथ तीर्थनर हो उसने निवाणपद पाया।

दश लक्षणवत् अस्य व्रत प्रभावशाली है। इस व्रतके निष्काम पालन करनेसे लौकिक अम्युदयोंके साथ स्वयं मोक्षकी प्राप्ति होती है। महान् दशलक्षण व्रतकथा पापके उदयसे प्राप्त स्त्रीपयायका छेद भी इस व्रतके धारण करनेसे हो जाता है। बताया गया है कि प्राचीन कालमें घातकीलण्डके पृवन्दिह देशमें सीतोदा नदीके तटपर विशालाखा नामकी नगरी थी। इस नगरके राजा प्रियकरकी पुत्री मृगाक रेखा, इस वृषतिके मन्त्रीकी पुत्री कामसेना, इस नगरीके सेठ मल्लिभार की पुत्री मदावेगा और लक्ष्मभद्र पुरोहितकी पुत्री रोहिणी इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी। एक दिन वसन्त ऋतुमें ये चारों कन्याएँ अपने अभिभावकोंकी आज्ञा लेकर वनप्रीडाके लिए

निकली । वे चारों वनकी छोमा देखती देखती बहुत दूर निकल गयीं । वसन्तके कारण वनके प्रत्येक वृक्षमें नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नयी उमंग दिसलाई पड़ रही थी । वन सुपमा अपना सबन साध्राज्य स्थापित किये हुए थी । शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर उनमें चित्तको विश्रांति दे रहा था । वे चारों कन्याएँ आनन्दविभोर हो प्रकृतिके सौन्दर्यावलोकनमें मगन थीं । इसी बीच उनकी दृष्टि एक वृक्षके नीचे शिलातलपर बैठे हुए मुनिराजकी ओर गयी । उन कन्याओंने मनिमाधुपूवक उन योगिराजको नमस्कार किया और उनसे इस निम्न स्त्रीपाषण्डे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा ।

मुनिराज—‘बालिकाओं ! मनुष्य अपने आचरणके कारण ही उन्नत या अवनत होता है । कमजोर यह परतन्त्र आत्मा अहर्निश राग द्वेषमें संलग्न रहती है । जब तक आत्मा काम, मोह, लोभ, मोह, माया आदि विकारोंसे युक्त है, तबतक इसे सगरमें अनेक पयाव धारण करना पड़ती है । पयाव धारण करनेका कारण कम ही है । अतः समस्त वैभाविक पयावोंके त्यागका कारण आत्मानुभूतिकी प्राप्ति है । जब प्राणीको आत्मानुभूति हो जाती है, तब उसे यथार्थ सुखकी प्राप्ति हो जाती है । यह सुख कहीं बाहरसे नहीं आता है और न यह आत्माके अदण्ड स्वरूपसे भिन्न कोई पदार्थ ही है । अतः अपनी आत्माका निज स्वभाव प्राप्त करनेके लिए तीव्र मोहोदयकी हडाना चाहिए । इसके लिए उत्तम दशलक्षण व्रतका पालन करना आवश्यक है । यह व्रत समस्त पापोंको नाश करने वाला है तथा सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है ।

मुनिराजसे विधिपूवक व्रत ग्रहण कर वे चारों कन्याएँ नगरमें वापस लौट आईं और विधिपूर्वक व्रत पालन करनेमें लग्न हो गईं । विधिपूवक दस वर्ष पयः व्रतका पालनकर उन्होंने उग्रापन कर दिया । आयुके अन्तिम समय समाधिमरण धारण किया, जिससे वे चारों ही कन्याएँ महाशुक्र नामक दसवें स्वर्गमें अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक मन्दिरके देव हुए । वहाँसे श्रुत होकर वे देव उग्रजिनी नगरीके

राजा मूलभद्रके घर लक्ष्मीमती रानीके गर्भसे पृथुमार, देवराज, गुण
चन्द्र और पद्मकुमार नामक सुन्दर पुत्र हुए। समय पाकर इनने विवाह
नन्दन नगरके राजाकी कलावती, ब्राह्मी, इन्दुमात्री और पद्म नामकी
कन्याओंके साथ हुए। ये दम्पति बहुत समय तक आनन्दपूजन संसारके
सुख भोगने रहे। राजा मूलभद्रके विरक्त होकर दीक्षा धारण करनेके उप
रान्त चारों पुत्रोंने धर्म नीतिपूजक राज्यका संचालन किया। कुछ समय
पश्चात् चारों ही संसारसे विरक्त हो गये और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर
उग्रतपश्चरण किया, जिससे इन्हें वैशम्पायनकी प्राप्ति हुई। पश्चात् योग
निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

विहार प्रदेशमें राजगृही नामकी नगरी है। यहाँ प्राचीनकालमें राजा
हेमप्रभु अपनी रानी विजयावती सहित राज्य करते थे। इस राजाने यहाँ
महाशमा नामक ब्राह्मण नौकर था और इसकी स्त्री
का नाम प्रियवदा था। इस प्रियवदाके गर्भसे काल-
भैरवी नामकी अत्यन्त कुरूप कन्या उत्पन्न हुई,
जिससे देखकर सभी लोग घृणा करते थे।

चौदशशरण
मत रूपा

एक दिन मतितागर नामक चारणमुनि आकाशमागस गमना करते
हुए उस नगरमें आये। महाशमा भक्तिपूर्वक पद्मगाह्वर उद्दिग्धिपूर्वक
आहार दाता दिया। पश्चात् विनयपूर्वक अपनी कन्याके कुरूप और
कुलक्षणी होनेका कारण पूछा। मुनिराजने अनभिज्ञान द्वारा समस्त
वृत्तांत शतकर कहा—“यह कन्या पूर्वभ्रममें उज्जयिनी नगरीके राजा
महीपालकी विद्यालाक्षी नामकी पुत्री थी। एक दिन इसने अभिमानमें
आमर पत्रसे निवृत्त होकर जाते समय महातपस्वी शासूर्य नामक मुनि
राजके ऊपर धूल दिया। पश्चात् राजपुरोहित द्वारा धमकाये जाने पर इसे
पश्चात्ताप हुआ और इसने मुनिराजके पास जाकर नमोऽस्तु कर क्षमा

मुनिराज—‘वत्स ! घमका प्रभाव संसारमें अमिट होता है । जो व्यक्ति घमधारण करता है, उसने सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । मृत—तपस्चरण करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरमें सचित्त कम भस्म हो जाते हैं । अतः उसकी यह कथा पोटदा कारण भावना भावों और इस मृतका पालन करे तो इसका यह पाप भस्म हो जायगा तथा यह ज़ी लिंग छेद कर मोक्ष भी प्राप्त कर लेगी ।’

मुनिराज द्वारा बतलायी हुई विधिसे कुरुपाने इस मृतका पालन किया । सोलह वर्ष तक उस मृतका पालन करनेसे उपरान्त उसने उस मृतका उद्घाटन कर दिया । पञ्चात् समाधिभरण धारण कर प्राण त्याग किया, जिससे स्त्री पञ्चायका विनाशकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई । वहाँसे श्रुत होकर उस मृत द्वारा किये गये पुण्याजनके प्रभावसे उसने विदेह क्षेत्रमें सीमा-धर तीर्थंकरका पद प्राप्त किया । यह सोलहकारण मृत तीर्थंकर मृतकिका बन्ध करनेवाला है, विधिपूर्वक इस मृतका पालन करनेसे आत्मा अत्यन्त पवित्र हो जाती है ।

अष्टाद्विंश मृतके पालन करनेसे आज तक अगणित व्यक्तिोंने अपनी आत्माओं को पावन किया है । इस मृतका पालन कर मैतामुन्दरीके अष्टाद्विंश मृतकिया मृतोपाश्रित पुण्य द्वारा कोटिभट राजा भीपाल तथा उनके ७०० धीरोंका गलित कुष्ठ दूर हुआ । इस मृतके प्रभावसे अनन्तवीर्यने क्षत्रवर्तीका पद और जरासिन्धुने प्रतिवामुदेवका पद प्राप्त किया । मुलोचनाने मृत जनिता पुण्यके कारण संन्यासधरण धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया । इस मृतकी प्रसिद्ध कथा निम्न प्रकार है—

“अयोध्या नगरीमें हरिषेण नामका चक्रवर्ती सम्राट् अपनी ११ धर्म सेना नामक पट्टरानीके साथ यावपूर्वक शासन करता था । एक दिन सम्राट् अपनी छैमानवे हथार सन्निधौ सहित वनप्रदीक्षाके लिए गया । वहाँ उसने एक निरापद स्थानमें शिलापट्टपर आसीन अरिजय और अमित

मुनिराजोंके पास गया और तमोऽस्तु कर बोला—‘स्वामिन् ! मैं ऐसा कौन सा पुण्य किया है, जिससे यह उठी विभूति मुझे प्राप्त हुई है ?’

श्रीगुरु—राजन् ! इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदेव नामक सेठने तीन पुत्र थे—भीष्म, जयकीर्ति और जयवमा । भीष्म की शीशसे ही विचारशील और धार्मिक प्रवृत्ति का था । एक दिन इसी मुनिराजकी बदनाम कर तदीश्वर प्रत लिया । इसने इस प्रतका आचरण बड़ी सावधानीसे साध किया । आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे यह प्रथम स्वर्गमें महर्दिक देव हुआ और वहाँ अक्षय्यात वर्षों तक देवोचित सुख भोगकर तुम वहाँ चमकती हुई हो । अष्टाहिका प्रतके प्रभावसे तुमको नरनिधि, चौदह रत्न, छयानके हजार रानियाँ आदि विभूतिके साथ छ खण्डका राज्य प्राप्त हुआ है । तुम्हारे भाई जयकीर्ति और जयवमाने भी धर्मगुरुसे आश्रयके प्रत ग्रहण किये तथा उन दोनोंने भी अष्टाहिका प्रतका पालन किया जिसके प्रभावसे समाधिमरण धारण किया तथा स्वर्गमें महर्दिक देव हुए । पश्चात् वहाँसे धनकर हस्तिनापुरमें गिम्ह नामक उठकी स्त्री लक्ष्मवतीके गर्भसे अरिजय और अमितजय नामके पुत्र हुए । ये दोनों भाई हम हैं ।’ इस प्रकार प्रतका माहात्म्य सुन राजा प्रसन्न हुआ ।

यह प्रत समस्त मनोमामनाओंकी पूजा करनेवाला है । इसने पालन करनेसे तुम सार्वभौम नष्ट हो जाते हैं तथा अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती

है । सतान प्राप्त करनेवालोंको इस प्रतका धन और निधिके साथ पालन करना चाहिए, निश्चय

उनकी मनोकामना पूर्ण होगी । हम प्रतकी कथा निम्न प्रकार है—

प्राचीन कालमें वाराणसी नगरीके शासक महीपाल वृषति थे । इसके राज्यमें मतिशगर नामक सेठ अपनी गुणसुन्दरी नामकी स्त्रीके साथ सुखपूर्वक निवास करता था । सेठको सात पुत्र थे, सभी होनहार, योग्य और विद्वान् । एक दिन इस नगरीकी बाटिकाके बाहरी भागमें गुणसागर नामके मुनिराज पधारे । मुनिराजके आगमनका समाचार सुनकर नगरके नरनारी मुनिदर्शनके लिए गये । सेठानी गुणसुन्दरी भी वहाँ

मयी । घमोरयेत मुनेनेक परचात् उम्ने मुनिरात्रे करबद्ध प्रथमा की—
'प्रभो ! मुने केद मत्त दोदिह' ।

मुनिरात्र—'दले ! भावकी दृष्ट भजानी होकर अग ! मूल पुन
और उपर मुनेको निर्णय करना चाहिए । देखी ! मुने रमित्त करत
आरम्भ करो । यह मत्त सभी इच्छाओंको पूरा करतगला है तथा इच्छा
द्वारा आत्मकल्याण भी होता है' ।

मुनमुदरी मत्त प्ररण कर घर आए । उम्ने अपने परिवारक सभी
स्वर्तियोंको मुनिरात्रद्वारा प्ररण दिये गये मत्तकी बात करो । गमा शीत
रमित्तकी बात मुनकर ईसने कने और कने मत्तका निरादर किया । कुछ
समय पचात् पावक उदयने मत्तिभागर सेटकी सम्पत्ति धींग हो गयी ।
भरि भर उम्ने परमे दृष्टिहा देखीने आगन क्या किया । सेटने गाठी
पुन परदग गये कने और ध अवाधानगयीके सट निन्दसके पर बाहर
नैकी करने गये । सेट-गठानो बागकगीम रहकर हु ल भोगा गये ।
उनके गये भन्नाभाव रहनेसे किसी किसी दिन उन्हें निरादर रह जाना
पड़ता था । पुनेके विशेषक कारण सट सटानीको और बापिक पदता थी ।
एक दिन उम्ने नगरासे अवधिशानी मुनिका आगमा हुआ । उम्ने साथ
मुनमुदरी मुनि दगाके लिए गए और अपनी दृष्टिहाका कारण पूछा ।

मुनिरात्र—'देखी ! मुनेने लिये गये मत्तकी अवदन्ना की है, इगा
का यह परिणाम है । अब पुन पुन रविवारमत्तका करना आरम्भ करो,
मुनारा मत्त सब दूर है । आपका !' सट सेटानीने मुनिरात्रसे पुन मत्त
प्ररण कर लिया और दामोने विविधक मत्तका सम्पन्न करना आरम्भ
किया । मत्तके प्रभावसे उनका समस्त हु ल दृष्टिहा नष्ट हो गया तथा
उनके पुत्र भी उनके पास पास आये । कुछ समय पचात् मत्त मत्तिभागर
ने आधुना अन्त जान लन्दान मरण धारण किया, जिमके प्रभावसे उम्ने
उत्तम माणोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई । कुछ कालके पचात् उम्ने
विशेषपद प्राप्त किया ।

मुनस्वयं मत्त करोस ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जला होती है । शि दे

मित्राकी मिद्वि करती हो, जाती बारा हो, उ ह इस प्रतका पालन
 धृतस्वन्मत्त कथा अरुप करत चाहिए । इस मत्तके प्रभावसे धनकी
 प्राप्ति, यत्र मुल्की वृद्धि तथा शांतिमानकी प्राप्ति
 होती है । कथामें बताया गया है कि प्राचीनकालमें पटना नगरके राजा
 चन्द्रगिरी पट्टराजी चन्द्रप्रभाके भुतशालिनी नामकी सुन्दरी व मा गी ।
 इस कथाको जिनमति नामकी आविष्कार पास अप्ययताम भेजा गया ।
 कन्या मोक्ष ही दिनोंमें विग्रामें पारगत हो गयी । कथाने एक दिन यही-
 पर चौकीपर भुतस्वन्मत्त मण्डल बनाकर द्वादशाङ्ग गिराणीकी पूजा
 की, जिसे दलपर आविष्कार अत्यन्त प्रचलन हुयी तथा उधे पूर्ण रिदुपी
 समस्त राजाके यहाँ भेज दिया ।

एक दिन इस नगरके उग्रामें यद्मान नामक मुनि आये । मुनिके
 आगमनाका समाचार सुन कर राजा पुरमन-परिजनके साथ उनकी बदताके
 लिए गया । मुनिराजो धर्मोपदेश दिया, समीने यथाशक्ति मत्त ग्रहण किये ।
 पश्चात् राजाने कथाकी ओर देतकर पूछा—‘स्वामिन् ! यह कथा किस
 पुण्यसे इतनी सुन्दरी और रिदुपी हुयी है ? इसी पृथ जन्ममें किस
 प्रकारके मत्त धारण किये हैं ?’

मुनिराज—‘राजन् ! पृथ विदेहके पुण्डरीवती देहमें पुण्डरीकिणी
 नामकी मगरी है । यहाँ गुणमद नामका राजा और गुणवती नामकी
 रानी थी । एक दिन राजा रानी सहित सीमन्धर स्वामीकी बदतार
 लिए गया और वहाँ वन्दना कर मनुष्यके कोठेमें बैठकर धर्मोपदेश
 सुना । पश्चात् राजाने प्रश्न किया—‘प्रभो, भुतस्वन्मत्त प्रतका क्या
 स्वरूप और प्रभाव है ?’ भगवान्की दिव्यध्वनि द्वारा मत्तका स्वरूप
 और प्रभाव अवगत कर मत्त ग्रहण किया । मत्तके प्रभावसे ये
 राजा रानी स्वयम् इन्द्र और इन्द्राणी हुए । वहाँसे रानीका जीव चय कर
 तुम्हारे यहाँ भुतशालिनी नामकी कन्या हुआ है । इस प्रकार गुरुमुखसे
 मत्तका माहात्म्य सुनकर कन्याने पुन भुतस्वन्मत्त धारण किया । विषय
 और कथाओंको अत्यन्त मत्त कर आत्मसोपनमें संलग्न हो गयी । मत्तके

प्रभावने अन्तर्गमयमें समाधिपराध धारण कर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ अनुपम सुग्न भोगकर अपराविदेहमें कुमुदवती देवके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पहुरानी जितवन्नाक समस्त यह जावधर नामका तीसरा हुआ। साथ ही इसे चयवती और कामदय पद भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार भुक्तशालीनके जीवने धुतन्क चमत् के प्रभावसे निर्वाणपद प्राप्त किया।

पुष्पाञ्जलिमत नामका शोधनके साथ सत्कारिक रूप पदार्थोंकी उपस्थिति भी कारण है। इस मतके आरम्भनम दत्तश्रया गया है कि विदेहमें सीता गद्दीने दक्षिण तरफ मगधराती दक्षिण पुष्पाञ्जलिमत कथा रत्नचयपुर नामका नगर है। वहाँ राजा ब्रह्मसेन अपनी रानी जयावती सहित साज-सज्जा कर रहा था। अन्ततः न होनेके कारण रानी अत्यन्त उदास रहती थी। एक दिन जब राजा पत्नीसहित जिन मन्दिरमें दद्याक लिए गया हुआ था, तो इस दम्पति वहाँ शान्त शान्त मुनिराजके दद्या किये। अवसर पाकर राजानु मुनिराजसे पूछा—“प्रभो हमारी रानीकी पुन न होनेका क्या कारण है? क्या इस पुत्रका प्राप्ति होगी?” मुनिराजने कहा—“राजन्, आपक वहाँ दीप्त ही प्रभावशाली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा”।

राजा रानीसहित घर आया और आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। कुछ समय उपरांत राजाकी एक सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम रत्नशेखर रखा। रत्नशेखर बचपनसे ही शान्तशान्त और प्रतिभाशाली था। एक दिन जब वह बग्नचमें खड़ा कर रहा था, तब आकाशमागसे शते हुए मेघवाहन नामक त्रिशूषरने इसे देखा। रत्नशेखरके प्रति मेघवाहनके हृदयमें अतृप्त प्रेम उमड़ा और वह नीचे उतरा तथा इसका मित्र बन गया। रत्नशेखरने मेघवाहनसे सहयोगसे पाँच सौ विद्याएँ सीख ली तथा विमान रचनाका प्रकार भी ज्ञात कर लिया। अब उसने मेघवाहन आदि मित्रोंसे साथ-साथ द्वीपने समस्त जिताल्योंकी सन्तानके लिए प्रस्थान किया। वह विजयाध्वजतन सिद्धन्त चैत्यालयमें पूजा स्तवनकर बैठा ही था कि इसमें दक्षिणभेष्ठा अविपति रथापुर

नगरकी राजन्या मदनमनूषा भी सतियों सहित दर्दाके लिए आयी । उसकी जैसे ही रत्नशेखरपर दृष्टि पड़ी, वैसे ही उसने अपना हृदय रत्न शेखरको सौंप दिया । अब वह उदास रहने लगी, राजा रानीने उसकी उदासीका कारण शातकर स्वयंवर मण्डपका आयोजन किया । स्वयंवरमें रत्नशेखर भी सम्मिलित हुआ । कुमारीने वरमाला रत्नशेखरके गलेमें डाल दी, जिससे आय समस्त विद्याधर छट हुए । ये कहने लगे, “विद्याधर क या विद्याधरोंको छोड़कर भूमिगोचरीने साथ विवाह नहीं कर सकती है । जब विवाद अधिक बढ़ गया तो रत्नशेखरका विद्याधरोंके साथ युद्ध होने लगा । उसने अपने पराक्रम द्वारा सभी विरोधी विद्याधरोंको परास्त कर दिया । इसीसमय उसे चन्द्ररत्नकी भी प्राप्ति हुई । अब उसने पदलुण्ड पृथ्वीकी पक्षमें कर लिया और चन्द्रवर्तीके पदसे शोभित हो गया ।

एक दिन चक्रवर्ती रत्नशेखर माता पिता सहित मुदयन मेरुकी बन्दना के लिए गया हुआ था । वहाँ उसने भाग्योदयसे दो चारण मुनियोंके दशन किये और अपने भवांतर मुनिराजसे पूछ तथा वह भी प्राप्ति की कि मदनमनूषा और मेरुगहवाका मुक्षार क्यों अधिक प्रेम है ?

मुनिराज—‘सम्राट् ! भरत धर्म मृणालपुर नामका नगर है । इस नगरका शासन राजा जितारि अपनी रानी वनकावतीके साथ करता था । इस नगरमें धृतगीर्ति नामका ब्राह्मण अपना स्त्री वधुमतीके साथ रहता था । इस त्रिप्रदेवने प्रमावती नामकी पुत्री थी । इस पुत्रीने जैनगुरु से शिक्षा प्राप्त की थी, अतः इसका सम्मग्नन निरन्तर उल्लङ्घन होता जा रहा था ।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वनग्रीवाके लिए गया । वहाँ उसकी स्त्रीको सौंपने काट लिया, जिससे उसका प्राणांत हो गया । पत्नीके वियोगसे त्रिप्रदेव बचना त्रिदल हो गया, उसकी अवस्था उमत्ता जैसी हो गई । कुमारी प्रभातने पिताको बहुत समझाया । संसारका स्वरूप बतलाया तथा कमगतिनी विचित्रता समझाकर उसे शांत किया । पश्चात् उसे दिग्गन्ध दीजा दिलायी । धृतगीर्तिने उग्र

तत्परचरण कर कुछ कदियों प्राप्त कर भी तथा ओक तत्र मात्र सिद्धकर
कर भ्रष्ट हो गया तथा, विद्याके प्रभावसे तगर बनाकर गृहस्थी सहित रहने
लगा। अब प्रभावतीको यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने पिताके
पास आई और उसे समझाया—“पिताजी, आपने वरिय दिगम्बर दीक्षा
धारण की है। यह आत्माका कल्याण करोगाली है। आप इस प्रसंगमें
बैठकर अपने धर्मको कल्पित न करें।” पुत्रकी बातोंका प्रभाव भुत
कीतिरर कुछ नहीं हुआ, पर प्रभावतीकी बातोंसे चिढ़ गया, अतः उसी
विद्यावृत्तिसे उसे एक नीरव वनमें छोड़ दिया। प्रभावती नमस्कार मात्र
करती हुई वनमें बैठी थी कि वहाँ वनदेवी प्रत्युत दूर और बोली—
'बेटी! तुम्हारी हृदय, छालवत और भट्टमतिनी मुक्त विरलित कर
दिया है। मैं तुम्हें अधिक प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, कर।
मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको पूरा करना चाहती हूँ। प्रभावतीने
बैलायवायाकी इच्छा प्रकट की। देवीने अपने प्रभावसे उसे बैलायपर
पहुँचा दिया। प्रभावती वहाँ भाद्रपद शुभा पञ्चमीके दिन पहुँची, इस
दिन देव भी वहाँ भगवान्की पूजा करनेके लिए आये हुए थे। यहाँपर
प्रभावतीने पञ्चावतीद्वीक निर्दयानुसार पुष्पाञ्जलि मत धारण किया और
उसका विधिवत् वाहन करना आरम्भ कर दिया। उसने वहीं रहकर
पाँच वर्ष तक यह मत पाला तथा इसके बन्धात् उद्यापन कर दिया।
उद्यापनके उपरान्त पञ्चावती द्वाते इसे गृणालपुर पहुँचा दिया। वहाँ
बाहर रंगी स्वयंप्रभु गुरुसे आशिकाके मत ग्रहण कर लिये और उस
का पालन करने लगी। इसकी तरफ्फाकी प्रशंसा सार्वदा हो लगी। पिता
भुतकीतिओ प्रभावतीकी प्रशंसा लय नहीं दूर। अतः उसी उसकी
तरफ्फामें विप्र उपासित करनेके लिए विचारें भेजीं, पर प्रभावती उा
विद्याओंसे तनिक भी विचलित नहीं हुई। अतमें समाधिभरण धारणकर
अधुत स्वर्गमें दत्त हुई। उसका नाम पञ्चाम रखा गया।

एक दिन पञ्चाम देवी विचार किया कि हमारे पुत्र अब महा विद्या
मिषात्वमें बैठ गया है। इसका उद्धार करना आवश्यक है। अतः वह

श्रुतकीर्तिके पास गया तथा उसे खूब समझाया। श्रुतकीर्तिके समस्त प्रपञ्च छोड़ दिये और वह जिनोन तपश्चरणमें सलग्न हो गया। आयुके अन्तिम समयमें समाधिभरण धारण किया जिससे प्रभावसे वह स्वर्गमें प्रभामदेव हुआ। वही पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तुम रत्नशेखर हुए हो और तुम्हारी स्वर्गकी देवी वह मदनमंजुषा हुई है। मेघनाद तुम्हारे पूर्वजनके पिता श्रुतकीर्तिके जीव है। पुष्पाञ्जलि व्रतकी इस महिमाको सुनकर चन्द्रवर्तन इस व्रतमें ग्रहण कर लिया। कुछ समय तक राख्य करनेके उपरान्त उसे विरक्ति हो गई और दिग्गम्बर दोषा धारणकर उग्र तपश्चरण किया। कंबलशाक लक्ष्मीकी प्राप्ति की। तत्पश्चात् योगनिरोध कर अग्नितिया कर्मोंको तात्पर्य कर मोक्ष प्राप्त किया।

रोहिणी व्रतका समाजमें अधिक प्रचार है। इस व्रतमें पालन करासे धन, ऐश्वर्य, पुत्र, विवाही प्राप्ति एवं अमीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति होता है। रोहिणी व्रत-कथा आग्नयानम बताया गया है कि हस्तिनापुरका राज कुमार अंगोर अपनी प्रिया रोहिणीके शान्त स्वभावके कारण अत्यधिक चिन्तित था। एक दिन उसने मुनिराजके दर्शनकर उनसे अपनी प्रियाने शांत रहनेका कारण पूछा।

मुनिराज—“कुमार, प्राचीनकालमें इसी नगरमें एक धनमित्र नामका व्यक्ति रहता था। इसने दुग्धा नामकी कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुग्ध निकलती थी, जिससे मातापिता अत्यन्त चिन्तित रहते थे कि इसका विवाह किस प्रकार होगा। किसी प्रकार उसका विवाह श्रीपेण नामक व्यसना व्यक्तिके साथ सम्पन्न हो गया। श्रीपेण भी अपनी पत्नीको एक ही महीनेमें त्यागकर चला गया, जिससे दुग्ध घासो मशान् कष्ट रहने लगा। एक दिन अमृतसेन नामके मुनि उस नगरमें आये। धनमित्र अपनी कन्या दुग्ध घासहित उनकी बचनाने लिए गया। अवसर पाकर उसने दुग्धघासके भवान्तर उनसे पूछे।”

मुनिराज—“यस्य। सोरठ देशमें गिरनारपर्वतके निकट एक नगर है। उसमें भूपाल नामका राजा अपनी भाया सि उमती सहित निवास करता है।

एक दिन वसन्त ऋतुमें राजारानी सहित वनघड़ीडाको गया। मागमें मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा—तुम लौट जाओ, मुनिराजने लिए आहार तैयार करो। रानी राजाने आदेशानुसार लौट सी आई, पर मुनिराजको वन विहारमें बाधक समझकर उसने कहूँ लौकैका आहार तैयार किया। मुनि राज चप्पाने लिए आये। रानीने पटगाहकर उह कहूँ लौकैका आहार करा दिया, जिससे मुनिराजका शरीरमें अगार वेदना हुई और उनका प्राणांत हो गया। रानीने दुष्टस्वरी बात राजाको अगस्त हुई, अतः उसने उसे घरसे निकाल दिया। रानीके शरीरमें उसी अमम गलित कुष्ठ उत्पन्न हो गया, जिससे सकल शिक्छ पुत्रक उसने प्राण त्याग किया, जिसने प्रभावसे यह नरक गई। वहाँसे च्युत होकर गायका जन्म धारण किया और अब यह तुम्हारे यहाँ दुग घा हुआ है।”

वनमित्र—“ह्यमिन्! इतक पापके प्रायश्चित्तके लिए कोई मतविधान वतमानेकी कृपा करें, जिससे इसका जीवन सुखी हो सके।”

मुनिराज—“वत्स! सम्यग्दर्शन सहित प्रतिमास रादिषा नवग्रहके दिन उपवास करे। इस दिनको चैत्राश्वमेध धमध्यान, पूजन आदिसे साथ व्यतीत करे। ५ वर्ष और ५ मास तक मत करनेसे उपरान्त उद्घापन कर दे।”

दुग घाने मुनिराज द्वारा प्रतिपादित विधिके अनुसार उक्त मतका पालन किया, जिसके प्रभावसे यह प्रथम स्वर्गमें देखी हुई। वहाँसे च्युत होकर यह तुम्हारी भाया बनी है। तुम भी पढ़ते भील थे। तुमने एक मुनिराजको घर उपसंग दिया था, जिस पापके कारण तुम एतन् नरक गये। वहाँसे निकलकर अनेक दुःखानियोंमें भ्रमण करनेसे पश्चात् एक धर्मात्मे घर जन्म लिया। तुम्हारा शरीर वहाँ अत्यन्त वृषित और दुग-घित था। तुम्हारे पास भी कोई नहीं आता था। तुमने मुनिराजसे रोहिणी मत ग्रहण किया। मतके प्रभावसे तुम स्वर्गमें देखे हुए। वहाँसे च्युत होकर विदेहमें अककीर्ति चकती हुई। वहाँ दीक्षा धारण कर तपस्या की, जिससे देवेन्द्र पद प्राप्त किया। स्वर्गसे च्युत होकर तुम अशोक नामके राजा हुए हो। राजा अशोकने कालान्तरमें दीक्षा धारणकर तपश्चरण

किया, जिससे उसे निवाणपदकी प्राप्ति हुई। रोहिणीने भी समाधिमरण धारण कर स्त्री-वयायका छेद कर स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया।

लब्धिविधान व्रतका पालन करके समस्त संचित पाप भस्म हो जाता है। आत्मामें शानकी उत्पत्ति हो जाती है। प्रतलाया गया है कि

लब्धिविधान व्रत
कथा

बनारस नगरीके राजा विश्वतेनकी रानीका नाम विशालनयना था। इसकी दो सवियाँ थीं—चमरी और रंगी। एक दिन राजाने अपनी सभामें एक अभिनयका आयोजन कराया। अभिनय बहुत ही सुन्दर हुआ। रानी अभिनेताओंकी कुशलतापर मुग्ध हो गई और उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया। रानी एक दिन रातमें अपनी दोनों सवियोंके साथ घरसे निकल पड़ी और भ्रष्ट होकर वेश्या काम करने लगी। इन तीनों ने एक दिन मुनिराजकी तपस्यामें विघ्न उत्पन्न किया, उन्हें नाना प्रकारके उपसर्ग दिये। इसी पापके उदयसे उन तीनोंकी बहुत कालतक अनेक क्रयोनियोंमें भ्रमण करना पड़ा। पश्चात् उज्जयिनी नगरीके पास पलास नामके ग्राममें एक शूद्रने घर तीनों पुत्रियों हुई, जो अत्यन्त कुरुपा थीं। इनके माता पिता जन्मते ही मरणको प्राप्त हो गये थे, इनके कुत्सित व्यवहारके कारण ग्रामवासियों ने इन तीनोंको ग्रामसे निकाल दिया था। परन्तु तीनों ही भटकती हुई पाटलिपुत्रके उत्थानमें पहुँची। वहाँ मुनिराजने दर्शन कर तीनोंने अपने जन्मको धन्य समझा। उनने उपदेशामृतसे प्रभावित होकर तीनोंने लब्धिविधान व्रत ग्रहण किया और उसका बहुत ही धृढ़ा और भक्तिसे साथ पालन करने लगा। व्रताचरणके कारण उनकी परिणति निर्मल होने लगी, परिणामोंमें कोमलता आ गई। उ होन आयु के अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे व्रतके प्रभावसे वे धौंचधौं स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे चवकर विशालनयनाका जीव तो मगध देशके वाटवननगरमें काश्यपोनाथ साहिल्य ब्राह्मणकी साहिल्या स्त्रीक गौतम नामका पुत्र हुआ। यही गौतम भगवान् महावीरके समप्रसारणका प्रथम गणधर हुआ, जिसने निवाणपद पाया। चमरी और रंगीके जीव देवपयाय

ले चक्कर मनुष्य हुए । तबसे चन्वारक कारण इनकी आत्मा में निमग्नता या, अतः निमित्त पाकर ये जित्त हुए तथा दिग्भ्रमर ही त धारण कर तब चरण करने लगे । उत्तरात्तर उभय तपश्चरण धारण करनेके कारण इन्होंने कैवल्यज्ञान प्राप्त किया । पद गतु यार्गना नियेध कर अनातिमा कर्मोंका नाश किया और मोक्ष प्राप्त किया ।

इस प्रकथा पर अनेक भक्तजीवोंका प्राप्त हुआ है । बताया गया है कि प्राचीनकालमें विजयाद्वीकी उत्तराश्विनीम शिवमन्दिर नामका नगर था । यहाँके राजाका नाम शिवेश्वर और रानीका सुगन्धदामी प्रकथा नाम मगोरमा था । यह अपने धन धौवनका अत्यन्त गव था, जिससे रानी मनोरम्माने सुगुप्त नामके मुनिके ऊपर जो कि नगरमें परिचयाके लिए ला रहे थे, पानकी पाक पक ही, जिससे मुनिराज अत्यन्त होनक कारण बिना हा आधार किये धनको छोट गये ।

मुनिके उपसग देनेके कारण रानी भरतर गर्भी हुई, पुत्र पुत्री, पृथ्वी पयारीको धारण करनेके उपरान्त मगधदेशके वनसतिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी विजयलाला मगधमें दुग्धा नामकी कन्या हुई । कन्याने शरीरमें अत्यन्त दुग्ध व निकलता था, जिससे इसने निषट कोट नहीं सह सकता था ।

एक दिन उस नगरमें सागरसेन नामके मुनि पधारे । मुनिके दर्शनके लिए सागर नगर उमड़ चला । राजा भी पदनाके लिए गया और उसन अवसर पाकर मुनिराजसे पूछा—‘प्रभो ! मेरी इस कन्याकी यह अवस्था किस कारणसे हुई है ?’ मुनिराजने दुग्ध धाकी पृथ्वीवालीका निरूपण कर बताया कि मुनिराजका अपमान करनेका यह पर प्राप्त हुआ है । पुत्र राजान कहा—‘दशमिन् ! इस पापमें सुटकाग कंस होगा ?’

मुनिराज—‘राज ! मायदेशा सदित धावकके मत धारण करने एवं दुग्धधदामी प्रकथा पालन करोसे यह अगुप्त कर्म नष्ट हो जायगा । दुग्ध धाने मुनिराजका आदेश स्वीकार कर सुगन्धदामी प्रकथा ग्रहण कर लिया । विधिपूर्वक प्रकथा पालन करनेसे निदान रोंकेनेके कारण यह स्वयम्

अप्सरा हुई। पश्चात् वहाँसे चयनर मगधदेशके पृथ्वीतिलक नगरके राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई। यह कन्या अत्यन्त सुन्दरी और सुगन्धित गरीरवाली थी। इसका विवाह कौशाम्बी-नरेश अरिदमनने पुत्र पुरुषोत्तमने साथ सम्पन्न हुआ। कुछ दिनोंके उपरान्त मदनावतीने ससारसे विरक्त होकर आर्यिमाके व्रत धारण किये। उग्र तपश्चरणसे प्रभावसे उसने स्त्रीपयायका छेद किया और सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे ज्युक्त होकर वह समुधरा नगरीमें गवर्कैनु राजाके यहाँ कामरैनु नामका पुत्र हुई और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

यह व्रत स्वगापयग देनेवाला है। इस व्रतसे पालन करनेसे धन-धायत्री प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि अपर त्रिदेह क्षेत्रमें गांधिल नामका देश है, इसमें पाटलीपुर नामके नगरमें नाग दत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी। निधन होनेके कारण नागदत्त और सुमतिकी लकड़ी ढोनेका काय करना पड़ता था। एक दिन सुमति जगलसे लकड़ी लेनेके लिए गयी हुई थी। यह प्यासकी वेदनासे प्रसन्न होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठ गया। उसने दम्बा कि बहुतसे व्यक्ति पिहितभ्रम नामके वेश्याकी बदनाम किए जा रहे हैं। वह भा अपनी वेदना भूलकर सब लोगोंके साथ भगवान्की बदनाम किए सब दी। समवशरणमें पहुँचकर उसने भक्तभावपूर्वक भगवान्की बदनाम की और एकामचित्तसे उपदेश सुनने लगी। अक्सर पाकर उसने अपने दरिद्री होनेका कारण पूछा। भगवान्ने उससे भवार्तर्कना बर्णन किया तथा मुनिनिन्दाने कारण ही इस प्रकारकी दरिद्रता प्राप्त होनेकी बात कही। पश्चात् उक्त महापापसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए जिनगुणसम्पत्ति व्रत पालन करनेकी बात कही। उसने भद्रा और भक्तिसहित उक्त व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे ओक भव धारणकर वह इस्तिनापुरमें धैरान्त नृपति हुई, जिसने भगवान् आदिनाथको आशर दिया, पश्चात्

दिगम्बरी शैला धारणकर विषमद प्राप्त किया ।

इतिनापुरक राजा विजयगन्धो मनीका नाम विष्वावती या ।
उपदे दो पुत्रियें या । पुत्र गेयरी और विधिजगरी । इन दोनों बहनों
मुकुण्डसमी प्रत्यक्ष परस्पर अलग राह या, एक-दोना दूसरी रह
ही नही गवली भी । राजा ने दागों व वाभीका
विवाह अयोध्याक राजपुत्र हिलकमणिदे नाम कर दिया । एक दिन
राजा विषमदेनने पारण करिपुत्री मुनिपौत्र पुत्र—'दागः' 'गो
व राभेंद पारसपरिक दमका करा कारण है ।' मुनिपुत्र बहन
को—'हम उमरक गठ पादलकी कथा स्निग्धकीका सत्यभाष
मार्गकी कथा दम्भीक नाम या । दागोन मुनिगन्धो उपपन्नसे
मुकुण्डसमी प्रत्यक्ष धारण दिया । एक दिन बहनों इन दोनों
कन्याभोंका मपन काट दिया । कन्याभार मपका पान कराने
कारण वे स्वर्गमें गेलीं हुई । बर्गमें बहनेर हृदय वहा कन्याई हुए
हैं । इनका स्नेह मया-तरु चला आ रहा है । इन प्रकार मया तरुका
कथा गुनकर इन क वाभेंद भाषक्य हादर प्रत्यक्ष विधि तथा मुकुण्ड
समी प्रत्यक्ष दिया । विधिपुत्रक प्रत्यक्ष पालन किया । कानुन अग्नि
समाधिभरण धारण किया, जिसने अग्निपुत्रक रक्षक मपने देन हुए ।
अब बहोंने बहनेर भोगद प्राप्त करेगी ।

विभीषणीक प्रत्यक्ष पालन इतिनापुरक राजा विजयगन्धो राजी
विजयगन्धरीने किया या, जिसक प्रत्यक्ष गान्धि ७२कर ६५२ प्राप्त
किया और वहीच अगुत होकर अगुत पवार नाम
कर विजयगन्धो या ।

हम मपका गुनसात दमकी गमपुरा उमरक मपका प्रत्यक्ष पुत्र
परदलकी गी रोम मीने धारण किया या, जिसक प्रत्यक्ष वर भीपर
ज्येष्ठत्रिनवरमन कथा पुत्रकी पुत्री कुम्भी हुए । मुनिगन्धो उपपन्न
हम मपमें उमरी रोगपवार मप धारण किया ।
प्रति दिन अभियेक करके मपकादक हाकर अपनी वृषपायकी मपुके

शरीरको लगाकर उसका कुष्ठरोग दूर किया। मत्तने प्रभावसे यह स्त्रीलिंग छेदकर स्वयम् दत्त हुए और मवात्तरमें मोक्षपद प्राप्त करेगी।

इस प्रतिक अनुष्ठानसे पुत्रप्राप्ति होती है। राजगृही नगरीक मेघनाद राजाकी रानी पृथ्वीदेवी पुत्रके अभाजमें उदास रहती थी। एक दिन उगते शुभकर तामक मुनिराजने दान जिये और उनसे पुत्र प्राप्तिका उपाय पूछा। मुनिराजने कहा—‘भवात्तरमें मुनिदागम अत्राय करके कारण पुत्रप्राप्तिमें अत्राय हो रहा है। अतः इस पापके शासनके लिए अथर्व दशमी प्रतिक पालन करो। उन दोनोंने मुनिसे आदेशानुसार विधिपूर्वक प्रतिक अनुष्ठान किया। पश्चात् उक्तका उपादन कर दिया। प्रतिक प्रभावसे रानीको सात पुत्र और पाँच कन्याओंकी प्राप्ति हुई। राजाने आधुके अंतमें समाधिभरण धारण किया, जिससे स्वयम्की प्राप्ति हुई। पश्चात् मोक्षपद प्राप्त किया।

इस प्रतिक पालन करनेका फल मालव प्रातिक पद्मावतीपुर नगरके राजा मरुज्झाकी रानी विजयम्बलाक गभस उत्पन्न शोच्यती नामकी कन्याको प्राप्त हुआ है। इसने मुनिनि दा की थी तथा मुनिने उपदेश दिया था, इस पापके कारण अनेक कुयोनिषोंमें परिभ्रमण करनेसे उपरान्त यह उक्त राजाकी रानी, कुम्हटी और कुरुपा कन्या हुई था। मुनिराज द्वारा अथर्वदशमी प्रतिक धारण करनेके प्रभावसे स्वयम्पद प्राप्तिके योग्य हुई।

इस प्रतिक पालन सोरठ देशके तिल्लपुर नामक नगरके भद्रशाह नामक यापारीकी पुत्री मिशालान किया था। यह कन्या सुंदरी थी, पर मुखके ऊपर दंतकुष्ठका दाग था, जो सिद्ध चक्र की आराधना करनेसे आधा हो गया था। भद्रशाह ने अपनी इस पुत्रीका मिशाल विधान करनेवाले वैद्यसे साथ ही कर दिया था। एक दिन देशाटन करते समय भीलोंने वैद्यराजको मारकर उसका सत्र घन लूट लिया। मिशाला किसी प्रकार

वच कर दु गी होती हुई एक नगरमें गयी । वहाँ मुनिराजके दानकर उनका उपदेश धरण किया और उनसे आकाशपञ्चमी व्रत ग्रहण किया । इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे विशालान अनेक पयाप व्यतीत करनेके उपरांत निगणपद प्राप्त किया ।

इस व्रतका सम्बन्ध पालन करनेके कारण गोपाल नामका बाला नमोद्वार पैंतीसी चम्पानगरीमें वृषभदत्त सेठके यहाँ गुदशन नामका ब्रह्माभ्यास पुत्र हुआ और उसने विरक्त होकर दिगम्बरा दीक्षा धारण की । तथा तपश्चरण द्वारा कमनाश कर निवाण पद प्राप्त किया ।

इस व्रतका पालन उज्जयिनी नगरीके राजा हयमाने किया था, जिसके प्रभावसे तीसरे भयमें रिदरक्षेत्रकी बारासी चौलीसी व्रत विजयापुरी नगरीमें घनश्रय राजाक चन्द्रभाउ नामका तीर्थहर पुत्र हुआ और पञ्चकस्याणक प्राप्तकर निवाणलभ लिया ।

इस व्रतका पालन दुर्गाधा नामकी मातृण कन्याने किया था, जिसके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमें देव हुए थी और वहाँसे चयकर मधुरामें भीधर राजाके यहाँ उसका जीव पञ्चरथ नामका पुत्र मुक्ताबलिमत भास्वान उत्पन्न हुआ । इसने वामुपन्य स्वामीके सम वशरणमें दीक्षा ग्रहण की और उनका गणधरपद प्राप्त किया । पीछे तपस्वरण द्वारा कमनाश कर मोक्षपद प्राप्त किया ।

कौशाम्बी नगरीमें कलराज नामका सेठ था और उसकी पत्नीका नाम पद्मभी था । पूय अशुभ कर्मोदयसे सेठके घर दरिद्रताका निवास था । इसने सालह पुत्र और बारह कन्याएँ थीं । दरिद्रताके कारण यह परिवार अत्यन्त दु गी था । एकदिन एक चारण ऋद्धिधारी मुनि पधारे । सेठने मुनिसे अपनी दरिद्रताके निनाशका उपाय पूछा । मुनिराजने मेघमालाव्रत करनेका उपदेश दिया । व्रतका पालन करनेसे उस दम्पतिके घर दु गत नष्ट हो गये । वे स्वर्गमें महर्दिक देव हुए और वहाँसे चयकर मनुष्य होकर कर्म नाशकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

पाटलिपुत्र नगरमें पृथ्वीपाल राजा रहता था, इसकी रानीका नाम मदनावती था। इसा नगरमें सेठ अहदास भी अपनी पत्नी लक्ष्मीमतीके साथ रहते थे। इदीके पड़ोसमें सेठ धापति भी रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम नन्दनी था। नन्दनीके सुपारीनामका एकलौता पुत्र था, जिसकी साँपके काटनेसे मृत्यु हो गयी। नन्दनीके घरमें पुत्रशोकके कारण बहुत दिनातक शोकग्रस्त होता रहा। लक्ष्मीमतीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, अतः वह भ्रमरगान सुनती हुई उसके यहाँ गई। नन्दनीको लक्ष्मीका यह बताव पुरा लगा और उसने बदला लेनेकी रात साची। एकदिन अपनी दासी द्वारा एक साँप घड़ेमें बन्दकर लक्ष्मीमतीके पास द्वार बहलाकर भेजा। लक्ष्मीमतीने उसे घड़ेमेंसे खोल गलेमें पहन लिया। उसने गलेमें यह सच्चा हार दिखालाई पड़ता था। एक दिन रानी मदनावतीने लक्ष्मीमतीके गलेमें उस तरहके हारको देखकर घर भाई और राजासे कहा—महाराज मुझे लक्ष्मीमती सेठानी जैसा हार चाहिए। राजा अगले दिन सेठ अहदासको बुलाकर वैसा ही हार बनवानेको कहा। सेठने उसी हारको ले जाकर राजाका भेंट किया, किन्तु यहाँ विचित्र दृश्य था। सेठके हाथका हार राजाके हाथमें जाते ही सप बन गया, इससे राजाको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, और इसने मुनिराजसे इसका रहस्य पूछा। मुनिराजने निर्दोष सप्तमी मतका प्रभाव बतलाया। राजा और सेठ अहदासने इस मतको धारण किया, जिसके प्रभावसे वे देव हुए।

उज्जयिनीमें जिनदस सेठके पुत्र इश्वरचन्द्र तथा उसकी पत्नी चन्दाने इस मतका पालन किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गमुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस मतका पालन आज तक सहस्रों नर-नारियोंने किया है। प्रथमा नुयोगम अयोध्यानगरीके निकटवर्ती पद्मखण्ड नामक ग्राममें सोमशमा ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री सोमने किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्णादिक सुख भोगकर सोमशमाने मोक्षपद

अनन्तचन्द्रशीघ्रत

प्राप्त किया तथा सोमा भविष्यमें निद्राण लाभ करेगी ।

जिनरात्रिव्रतका पालन भगवान् आदिनाथके पोते मारीचके जीवने सिद्धकी पर्यायमें चारणमुनि अमृतकीर्त्तिक उपदेशसे किया था, जिसके प्रभावसे अनेक पर्यायोंमें मुख्य भोगकर अतमें जिनरात्रिव्रत आलम्बन कुण्डप्रामर्श राजा सिद्धाचने यहाँ अंतिम लीये कर भगवान् महावीरका अ ॥ हुआ और पञ्चकस्याणक जैसे महाभ्युदय को प्राप्तकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

इस प्रतप्ता पालन कुदजागल्देशमें गगानदीके तटपर्वी राजनगर नामक ग्राममें धनपाल सेठने पुत्र धनभद्र और जिनभक्त सेठकी पुत्री जिनमतीने किया था, जिसके प्रभावसे लौकिक उत्तमोत्तम मुख्य भोग अवनाशी पद प्राप्त किया । यह प्रत सभी प्रकारके धैमर्षोंको देनेवाला है । इसके द्वारा सभी प्रकारकी मनोकामनाओंको पूरा किया जा सकता है । सत्तान प्राप्ति और धनप्राप्तिके लिए इस प्रतकी उपयोगिता अधिक बतलायी गयी है ।

इस प्रतप्ता पालन लक्ष्मीमता ब्राह्मणीके जीवने किया, जिसके प्रभाव से स्वगादि मुख्य भोगकर कुण्डलपुर नगरमें राजा भीष्मके यहाँ दक्षिमणी नामकी पुत्री हुई । यह सौराष्ट्रदेशके शारावती नगरीके राजा भीष्मचन्द्रकी पटरानी हुई और अतमें अपने पुत्र प्रभुम्नकुमारके साथ दीक्षा लेकर उत्तम सुखको प्राप्त किया ।

इस प्रतका पालन श्रेष्ठिपुत्री धनश्रीने किया था, जिसके कारण उसने स्वर्गके अनुपम सुखोंको प्राप्त किया ।

प्राचीनकालकी बात है कि भगवद्देशने सुप्रतिष्ठ नगरके एक बपीचैमें शगरसेन नामके मुनिके पास भासना लोछुयो एक स्थान रहता था ।

मुनिराजने उसे धर्मोपदेश देकर रात्रि भोजनका त्याग कराया और प्रत दिया । उस स्थानने उसका अपने जीवन पर्यन्त भावपूर्ण पालन किया, जिसके प्रभावसे मृत्युके उपरान्त उसी ग्राममें सेठ यहाँ प्रीतिकर नामका पुत्र हुआ

और दिगम्बरी दी जा धारण कर निगण पद प्राप्त किया ।

यह प्रत भगवान् ऋषभदेवने पुत्र बाहुबलि स्वामीने किया था, जिसके कारण दीक्षा लेकर निगणपद प्राप्त किया । भगवान् आदिनाथकी पुत्री ब्राह्मी और मुन्दरीने भी इस प्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे श्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुए और पुन पुरुष पथाय धारण कर दीक्षासे निगणपद प्राप्त किया ।

नि शङ्खभट्टमीप्रत यह प्रत दक्षिण देशके मुपारा नगरमें छेठ नदकी पुत्री लक्ष्मीमतीने ग्रहण किया था, जिसके प्रभावसे श्रीलिंग छेदकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

मौन प्रतका पालन कौशलदेशके कूट नामक ग्राममें कुणकीरि कन्या मुगमप्राने किया था, जिसके प्रभावसे वह कौशलदेशमें यमुनाके तटवर्ती कोशाम्बी नगरीके राजा हरिवाहनके यहाँ कौशल नामका पुत्र हुआ और सखारसे निरक्त होकर जिन दीक्षा ग्रहण की । दोनों पितापुत्र विहार करते हुए किसी वनमें पहुँचे और उनने भट्टारी मतितागरक बीवने, जो सिंह हुआ था, पृथ्वीवक बैरन कारण उन दोनोंका शरीर विदारण कर दिया । दोनों योगिराज ध्यानमें लीन रहे, अतः कर्मोंका नाशकर अन्त कृतकेवली होकर मोक्ष गये ।

इसका पालन मालवदेशके चिंच नामक ग्राममें एक नागगौडकी पुत्री चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रभावसे नदीमें शत्रु द्वारा बहाये हुए अपने पुत्रको पुन प्राप्त किया और उसने चारित्रमती आर्यिकासे दीक्षा लेकर तपश्चरण किया, जिससे स्वर्गमें देव हुए, पश्चात् जिनदीक्षा ग्रहण कर कर्मनाश किया ।

गर्दपचमी प्रत इस प्रतका पालन चारित्रमतीने किया था, जिसके प्रसादसे पिताकी मूछा दूर की थी और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त किया ।

धनुदशीप्रताख्याम मुखानी नामक सेठानीने विधिपूर्वक चतुर्दशीका प्रत धारण किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि मुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

इस प्रकार प्रथमानुयोगमें मतोंका पल प्राप्त करनेवालोंके आरपान वर्णित हैं। इस आख्यानोत्ते एक महत्तरूपण निम्न यह निकलता है कि नारियोंने जितने अधिक मतोंका पालन किया है, पुरुषोंने नहीं। मत पालन करनेवालोंमें सम्भ्रांत परिवारके अतिरिक्त दरिद्र दीन परिवारोंकी नारियाँ भी हैं। मनुष्योंकी सो बात ही क्या, पशु पक्षियोंने भी मत धारण किये हैं। मतोंसे आत्मा पवित्र हो जाती है। विषय कृत्य अम विचार शान्त होते हैं, जिमसे अपने ऊपर विचार करनेका अवसर प्राप्त होता है। अतः समस्त नर नारियोंको मतप्राप्तिके लिए प्रयास करना चाहिए। हरिवंशपुराण और पद्मपुराणमें वर्णित है कि उग्र तपस्चरण त्रतोरगावके द्वारा ही प्राप्त होता है। कमनिलरका साधन मत है।

ग्रन्थकर्त्ता

इस ग्रन्थका रचयिता कौन है, यह अनिर्णीत है। ग्रन्थके ऊपर सिद्धन्दी आचार्यका नाम लिखा है। दिग्भर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थमें सिद्धन्दीनी एक कृति मततिथिनिर्णयका उल्लेख किया है। पर यह प्रामुख्य कृति सिद्धन्दीकी नहीं है, उनके ग्रन्थके आधारपर निर्भी महारक महानुभावने इसका संकलन किया है। ग्रन्थके आरम्भमें कहा गया है—

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन वाङ्मया ।
हरिणेनेन देवादिमेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥
प्राज्ञ तप्येदिवाग्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।
विधानं च मतानां यी प्राप्त प्रोक्त समुत्तमम् ॥
श्रुतमागारसूरीशभाषणमाभ्रदेवक ।
छत्रसनातित्यकीर्त्तिसङ्गदिमुकीर्त्तिभिः ॥

अथात्—पद्मन्दी, पद्मदेव, हरिपण, देवर्जन, आदिसेन, श्रुतसागर, भावशमा, अभ्रदेव, छत्रसा, आदित्यकीर्त्ति और सरलकीर्त्तिने प्रयोग अवलीकन कर प्रस्तुत रचना संकलित की गयी है। रचयिताने पूज्यपादने शिष्य, सिद्धन्दी, काष्ठासत्रके आचार्य, मूलसत्रके आचार्य, कणामृत पुराणके रचयिता केशवनेन आदिके मतोंकी भी आलोचना की है। इससे स्पष्ट है कि किसी महारकने प्रिय सन्तरी १८ शतीमें किया

मूलसत्र सरम्भता गच्छ,

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

सङ्गलाचरण

श्रीमन्त धर्षमानेश भावती मौतर्प गुहम् ।
नत्वा वक्ष्ये तिथीनां वै निर्णय वननिर्णयम् ॥१॥

अर्थ—श्रीमन्त—भक्तवत्सलपुत्रस्य भक्तगोपी भौत मन्त्र-
आदि विभूति रूप बाहिरग धामे गुह्यगणेश महार्णवस्य, द्वि-
वाणीको—सरन्वतो रूप दिग्गजविको एव गुह्यगणेश महार्णवस्य नमः
स्कार कर निश्चयसे वननिर्णय भौत विधिनिर्णय कस्तु है।

प्रस्तावना

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पयदेवत साधना ।
हरिपेणेन देवादिमेनेन शोकपुष्टयम् ॥२॥
ग्राह्य तच्चेदिद्यान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।
विधानं च त्रयानां वै ग्राह्य शक्त मुमुक्षुषम् ॥३॥

अर्थ—श्री पद्मनन्दिमुनि, भक्त पद्मपुत्र, इतिहास एव देवमेनये
जो चतुर्गुण प्रकल्पित—यथा समय निज विधि-
पाहन, विधेय मन्त्रका जाप और साधनायामुक्त वनम वन रुद्ध गये
है, उन्हें ग्रहण करना चाहिये। कस्तु ईश्वर महार्णवस्य समान रूप
आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित वताका इतिहास कहिये। सर्व के लिए
जो विधान—विधि, नियत विधि, कथक, अनुष्ठान करने के लिए

श्रुतसागरसूरीशभाष्यशर्माश्रदेवकः ।

छत्रसेनादित्यकीर्तिसकलादिसुकीर्त्तिभिः ॥४॥

अर्थ—श्रुतसागर आचार्य, भावशर्मा, अश्रदेव, छत्रसेन, आदित्य-कीर्त्ति, सखलकीर्त्ति आदि आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रतनियिनिर्णयको कहता हूँ ।

क्रमतोऽहं प्रवक्ष्ये वै तिथिव्रतसुनिर्णयौ ।

मतं ग्राह्यं साम्प्रतः कुलाद्रिघटिकाप्रभम् ॥५॥

अर्थ—क्रमसे मैं तिथिनिर्णय और व्रतनिययको कहता हूँ । इस समय व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथि का मान ग्रहण करना चाहिए ।

चित्रेचन—प्राचीन भारतमें हिमाद्रि और कुलाद्रि को मत व्रत तिथियोंके निगयके लिए प्रचलित थे । हिमाद्रि मत का भावर उत्तर भारतमें था और कुलाद्रि मत का दक्षिण भारतमें । हिमाद्रि मतमें वैदिक आचार्य तथा कृतिष्व इतिताम्बराचार्य परिगणित हैं । हिमाद्रि मतमें साधारणतः व्रततिथि का मान दस घटी प्रमाण स्वीकार किया गया है । हिमाद्रिमत केवल व्रतका निगय ही नहीं करता है, यदि अनेक सामाजिक, पारिवारिक व्यवस्थाओं का प्रतिपादन भी करता है । हिमाद्रिमतके उद्धरण देवीपुराण, विष्णुपुराण, शिवसंस्कृत, भविष्य पर्व निगयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मिलते हैं । इन उद्धरणोंको देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें उत्तरभारतमें इसका बड़ा प्रचार था । पारिवारिक और सामाजिक जीवनकी अर्थव्यवस्था, दण्डव्यवस्था, जीवनोन्नति के लिए विधेय अनुष्ठान आदिका निगय उक्त मतके आधारपर ही प्रायः उत्तर भारतमें किया जाता था । ऋषिपुत्रकी साहिताके कुछ उद्धरण भी इस मतमें समाविष्ट हैं । हेमचन्द्राचार्य द्वारा प्ररूपित नियम भी हिमाद्रि मतमें गिनाये गये हैं । गर्ग, बृहद् गण और पाराशरके वचन भी हिमाद्रिमतमें शामिल हैं ।

वृत्तान्द्रिमत दक्षिण भारतमें प्रचलित था । इस मतकी द्रविड मंत्रा भी पायी जाती है । दिगम्बर जैनधर्मोद्दी मन्त्रा भी इस मतमें की जाती थी, किन्तु प्रधानरूपमें केरलधर्म ही इसमें शामिल था । इस मतमें वही तिथि माउके लिए प्रयुक्त मानी जाती थी, जो सूर्योदय कालमें उ पनी हो । यों तो इस मतमें भी यह साम्य उपलब्ध नहीं प्रचलित थी, निम्नमें इन तिथिसे भिन्न भिन्न घटिकाएँ परिगणित की गयी हैं ।

उद्योगेय शास्त्रमें वर, अवन, कजु, माग, वर और दिवस ये छ कालके भेद किये गये हैं । वरके माघ, मार, चार्द्र, माघ और वार्द्र हराय ये पाँच भेद हैं । हेमाद्रिमतमें मार, चार्द्र और काटकाय ये तीन वरके भेद माने गये हैं । माघ वरमें ३९० दिन, मार वरमें ३९९ दिन, चार्द्र वरमें ३५४ ३/४ दिन तथा अधिक मास महिन चार्द्रवरमें ३८३ दिन २१ ३/४ सुहराँ भर नशात्र वरमें ३२० ३/४ दिन होते हैं । काटकाय वरका मासमें ६० ५० ३१२४ बरोंसे हुआ है । यह माघसे लेकर माघ माघतक माना जाता है । हमारी गणना बृहस्पतिरा राशिमें की जाती है, बृहस्पति एक राशिपर त्रिने दिन रहता है, उतने दिनका बृहस्पति वर होता है । गणना करवपर माघः यह १३ महीनोंका भव है । व्यवहारमें चार्द्रवर ही प्रधान किया जाता है । इसका भारतमें चैत्र पुष्य प्रतिपदा होता है । अथारके मन्त्रधर्ममें उद्योगेय शास्त्रमें बताया है कि तीन मार कजुभारका एक भवन होता है

सूर्य आश्विनमण्डलमें त्रिम वषम जते हुए देया जाता है वही भूकर्म भयवा भवनमण्डल है । यह पञ्चाकार है परन्तु वित्तु गोल नहीं, कहीं-कहीं कुछ पत्र भी है । इसके उत्तर दक्षिण कुछ दूरतक फैला हुआ एक पत्र है जो राशिचक्र कहलाता है । राशिचक्र और भवनमण्डल दोनों ज्ञान भी मात्र ३९० अंशोंमें विभक्त हैं क्योंकि एक घण्टामें चार समकोण होते हैं और प्रत्येक समकोणमें ९० अंश माने

१ समरेणु सवय कमदी चार्द्र सवत्सरं सदा ।

नायं यम्मादलस्यो मृत्तिलाम्य कीर्तिता ॥—आश्विने, नि० सि०

जाते हैं। इस प्रकार तीन सौ साठ ३६० अक्षरों १२ राशियोंमें विभक्त करनेपर प्रत्येक राशिका ३० अक्षर प्रमाण आता है। इस विभक्त राशियों के नाम ये हैं—मेघ, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

राशिचक्रका करिपत निरक्षरुत्त विषुवरेखा कहलाता है। इस रेखाके उत्तर ऋषिण सेइस २३ अक्ष अष्टादश २८ कलाके अन्तरपर दो बिन्दुओं की कल्पना का जाती है। इनमें एक बिन्दु उत्तरायणान्त—उत्तर जानेकी अन्तिम सीमा, और दूसरा बिन्दु दक्षिणायनान्त—सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। इन दोनों बिन्दुओंके मध्य जो एक करिपत रेखा है उसीका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तरायण और जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाता है उसे दक्षिणायन कहते हैं। श्वेतवारमें कर्क राशिके सूर्यसे लेकर धनु राशिके सूर्य पथन्त दक्षिणायन और मकरसे लेकर मिथुन पथन्त सूर्यका उत्तरायण होता है। कुत्र कार्योंमें अयनशुद्धि ब्राह्म समझी जाता है। साहस्रिक कार्य प्राय उत्तरायणमें ही सम्पन्न होते हैं।

दो महीनेकी एक ऋतु होती है। सौर और चान्द्र ये दो ऋतुओंके भेद हैं। चैत्र महीनेसे आरम्भ की जानेवाली गणना चान्द्रऋतु गणना होती है अर्थात् चैत्र वैशाखमें वसन्तऋतु, ज्येष्ठ आषाढ़में ग्रीष्मऋतु, श्रावण भाद्रपदमें वर्षाऋतु, आश्विन कार्तिकमें शरदऋतु, अग्रहण पौषमें हेमन्तऋतु और माघ फाल्गुनमें शिशिरऋतु होती है। सौर ऋतुकी गणना मेघ राशिके सूर्यसे की जाती है अर्थात् मेघ वृष राशिके सूर्यमें वसन्तऋतु, मिथुन-कर्क राशिके सूर्यमें ग्रीष्मऋतु, सिंह कन्या राशिके सूर्यमें वर्षा-ऋतु, तुला वृश्चिक राशिके सूर्यमें शरदऋतु, धनु मकर राशिके सूर्यमें हेमन्तऋतु और कुम्भ मीन राशिके सूर्यमें शिशिरऋतु होती है। विवाह, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य सौर माससे हिमावसे ही किये जाते हैं।^१

१ श्रीतश्मातत्रिया सवा कुयाश्चाद्रमसनुपु।

तदभावे तु सौरपुंष्विति ज्योतिर्विदा मतम् ॥—निणयसिंधु ५०२

सामाजिकता चार प्रकारकी होती है—ग्रासन, सौर, चाद्र और नक्षत्र । तीस दिनका ग्रासनमास होता है । सूर्यकी एक संक्रान्ति लेकर भगती संक्रान्तिपर्यन्त गौरमास माना जाता है । कृष्णपक्षकी प्रतिपदाने लेकर पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्रमास माना जाता है । अधिनी नक्षत्रम लेकर रेवती पर्यन्त माक्षत्रमास माना गया है, यह प्राय २०½ दिनका होता है । व्यवहारमें गुभागुमके लिए चान्द्र और गौरमास ही ग्रहण किये जाते हैं । यह भाष्यबोद्धा मत है कि विवाह और नाम गौर मास, क्षमि पंचदिकम ग्रासनमास, गोवर्तारिक कायम चान्द्रमास प्राश माने गए हैं । अधिमास और क्षयमास सभी गुन कायोंमें स्वाग्य हैं । इमादिके मतमें कोई भी गुमबायें इन दोनों मासोंमें नहीं करना चाहिए किन्तु कुगादिमनम अधिदमम और क्षयमासकी अन्तिम तिथिओं स्वाग्य है । मत्तभाग इन दोनों महानाका प्राश बनाया गया है ।

एगके दो भेद हैं—गुरुपक्ष और कृष्णपक्ष । प्राय सभी सांगणिक कायोंमें गुरुपक्ष ही ग्रहण किया जाता है । कृष्णपक्षमें पञ्चमी तिथिके पञ्चान् पञ्चकाव्याणकप्रतिष्ठा, बेदी प्रतिष्ठा त्रैय शुभ कृष्ण नहीं होते हैं ।

प्रतिरशदि तिथियोंने नाम प्रमिद हैं । अमावस्या तिथिने भट ग्रहोंमेंसे पहले ग्रहका नाम मिनावाली, मध्यके पाँच ग्रहोंका नाम दूर्ग और गानवें तथा भटवें ग्रहका नाम बृह है । किहीं-किहीं भाषायोंका मत है कि तीनपदी रात्रि गय रहने समपग रात्रिके समा सितक मिनीवाली, प्रतिपदाने बिदु अमावास्याका नाम बृह, चतुर्दशात बिदु अमावास्या दश कहलाती है । सूर्यमण्डल समसूत्रने अपनी कथाके

१ गौरमासो विवाहादो यागादो जावो स्मृत ।

आदिठ पितृकायें च चाद्रा मास प्रम्यने ॥

विनाहस्तनशु गौर माने प्रशस्यने ।

पार्वण राटराभादे चात्रमिष्ट तथादिके ॥

आयुदायिमागभ प्राशश्चित्तविश तथा ।

मावतीन पञ्चव्या सपगा चाप्सुसगना ॥

—तिथिनिर्णय १०८

ममीपम स्थित परन्तु शरधत्तसे पृथक् स्थित चन्द्रमण्डल जय हो तो मिनीगाली, सूर्यमण्डलम जाधे चन्द्रमाका प्रवेश हो हो -श और जय सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल ममसुग्रीमें हा तो कुहू होती है । प्रतिपदा मयुक्त अमावास्या भी कुहू मानी जाती है । दिनक्षय या दिनवृद्धि होने पर समस्त अमावास्या द्वा सप्तक मानी जाती है । प्रतिपदा सिद्धि देने वाली, द्वितीया कार्य साधन करनेवाली, तृतीया आरोग्य देनेवाली, चतुर्थी हानिकारक, पञ्चमी शुभप्रद, षष्ठी अशुभ, सप्तमी शुभ, अष्टमी व्याधिनाशक, नवमी मृत्युदायक, दशमी द्रव्यप्रद, एकादशी शुभ, द्वादशी और त्रयोदशी वरदानप्रद, चतुर्दशी उग्र, पूर्णिमा पुष्टिप्रद एव अमावास्या अशुभ है ।

व्यवहारके लिये द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियाँ सभी कार्योंमें प्रशस्त बतायी गयी हैं । प्रतांने लिये भिन्न भिन्न आचार्योंने तिथिषाका भिन्न भिन्न प्रमाण बताया है ।

तिथिके सम्बन्धमे केशवसेन और महासेनका मत

केपाञ्चित् धर्मघटिकाग्रम सम्मतमस्ति च ।

तेपाञ्चिद्विंशतिघटिकाग्रम सम्मतमस्ति च ॥ ६ ॥

तेपाञ्चित् केशवसेनादीना मते कर्णाभृतपुराणादिषु धर्मघटिकाग्रम मतम् । केचिदाहु — सेनादीना पाष्ठापारीणा मते विंशतिघटीमतम् । तेपा ग्रन्थेषु सारसग्रहादिषु तन्मत तद्वयं दशग्रम विंशतिघटीग्रम न मूलसंघटतसूर्य समाद्रियन्ते । अतस्तद्वय निर्मलसम बहुभि कुलाद्रिमतमाहृतमित्यत अनयस्तिष्ठनपारपर्यात् तदुपदेशः शुद्धसुविधाभ्याश्च सर्वजनसुप्रसिद्धत्वात् रसघटीमतं श्रेष्ठमन्यतकल्पनोपेत मतं सेनानन्दिदेवा उपेक्षन्ते ऽनाद्रियन्तेऽत कुन्दकुन्दाद्युपदेशात् रसघटिका ग्राह्या कार्या इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अर्थ—विमीके मत (केशवसेनके मत) से दसघटी तिथि होनेपर मा—सूर्योदयमें सेकर दसघटीतक अर्थात् चार घण्टेतक तिथिरे रहने पर दिनभरके लिए वही तिथि मानी जाती है । दूसरे अचार्योंके मतमें बीसघटी अर्थात् सूर्योदयमें आठ घटातक रहनेपर ही तिथि दिनभरके लिए मानी गयी है ।

अचार्य केशवसेनके मतमें सूर्यास्त कालमें दसघटी रहनेपर ही तिथि प्राप्त मान ली जाती है । सनमण और काष्ठकारीणोंके मतमें बीसघटी रहनेपर ही तिथि पूरी मानी जाती है । इन दोनों मतोंके मिलाकर—दसघटी और बीसघटी वाले मतोंका मूलसंघके आचार्य प्रमाण नहीं मानते हैं । भन इन दोनों मतोंके समान निम्न बहुधाके द्वारा मान्य कुलद्रिमत माना गया है । इस मतके द्वारा समर्थित निर्दिष्ट परम्परास प्राप्त तथा इन निर्दिष्ट परम्पराके उपदेश आचार्योंके ग्रन्थोंसे एवं सभी मनुष्योंमें प्रसिद्ध होयके छ-घटी प्रमाण तिथिका प्रमाण माना गया है । अन्य जो तिथिका मान कहा गया है, वह करणनामात्र है, समीचीन नहीं है । इसकी भेन और मदिगणके आचार्य उपेक्षा अर्थात् अनावर करते हैं । भण्य कुलकुन्दादि आचार्योंके उपदेशमें सभी मतोंकी अपेक्षा छ घटी प्रमाण तिथिका मान प्राप्त है ।

विवेचन—जिन प्रकार तारीख सदा २४ घण्टेतक रहती है, उस प्रकार तिथि सदा २४ घण्टेतक नहीं रहती । तिथिमें घृदि और दाम होता रहता है । कभी कभी एक तिथि दो दिनतक जाती है, जिसे तिथिका घृदि कहते हैं । कभी एक तिथि सात हो जाता है, जिसे अथम वा क्षयतिथि कहते हैं । अधिकतम अधिक एक तिथि २९ घटा ५४ मिनटकी हो सकती है अर्थात् पहले दिन जो तिथि सूर्योदयसे आरम्भ होती है, वह अगले दिन सूर्योदयके २ घटा ५४ मिनटतक रह सकती है । एक तिथिका घट्यक्रम या दण्डात्मक मान ६० घंटी १५ पल होता है । प्राय ६० घटी प्रमाण एकादश ही तिथि आता है । प्रतिदिन हीनाधिक प्रमाण तिथि होती रहती है । अब प्रस यह उल्ला है कि जब ६० घटी

प्रमाणतिथि न हो तो व्रतादिके लिए कौमी तिथि ग्रहण करनी चाहिए। यदाकि पाँच घटीके हिसाबसे तिथि वृद्धि और ७ घटीके हिसाबसे तिथिपक्ष होत है।

उदाहरण—ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी मंगलवार ५ घटी ३० पल है। निम्न स्थानिको पञ्चमीका व्रत करना है, क्या वह मंगलवारको पञ्चमीका व्रत करेगा। यदि मंगलवारको व्रत करता है तो उस दिन ५ घटी ३० पल अर्थात् सूर्यादयके २ घण्टा १२ मिनटके पश्चात् पछी तिथि आ जाती है। व्रत उसे पञ्चमीका करना है पछीका नहीं, फिर वह किस प्रकार व्रत करे। आचार्यने विभिन्न मत मतान्तरका रण्डन करते हुए कहा है कि जिस दिन सूर्योदयकाल ६ घण्टा १५ मिनट तिथि हो उस दिन उम तिथि सम्बन्धी व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु उमका पहले दिन व्रत करना चाहिए। जैम ऊपरके उदाहरणमें पञ्चमीका व्रत मंगलवारको १ घटी सोमवारको ही करना पड़ेगा। क्योंकि मंगलवारको पञ्चमी ६ घटीसे कम है, यदि इस दिन पञ्चमी ६ घटी १० पल होती तो यह व्रत इसी दिन किया जाता। तिथियोंका मान—घटी, पल = चैत्र पञ्चागमें लिखा रहता है।

व्रतके सिवा अन्य कार्योंके लिए व्रतमान तिथि ही ग्रहण की जाती है। अर्थात् निम्न कार्यका जो काल है, उस कालमें व्याप्त तिथि जन हो, सभी उसको करना चाहिए। उदाहरणार्थ या कहा जा सकता है कि किसी स्थितिमें ज्येष्ठशुक्ल पञ्चमीमें विचारम्भ सरस्वार सम्पन्न करना है। ज्येष्ठ पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है तथा सोमवारको ज्येष्ठसुदी चतुर्थी १० घटी १५ पल है। विचारम्भके लिए मंगलवारकी अपेक्षा सोमवार श्रेष्ठ होता है, सोमवारको चतुर्थी ६ घटीसे ऊपर है, अतः व्रतभी रहिये इस दिन चतुर्थी ही कहलायेगी, पर या १० घटी १५ पलसे उपरान्त पञ्चमी मानी जायगी। १० घटी १५ पलके ४ घण्टा ६ मिनट हुए। सूर्यादय इस दिन ५ बजकर २० मिनटपर होता है, अतः ५ बजकर २६ मिनटके पश्चात् सोमवारको विचारम्भ किया जा सकता है।

यात्राके लिए भी यही बात है। यदि किसीने पश्चिम दिशाम जाना है तो वह सोमवारको पञ्चमी तिथिमें ९ घण्टाकर २६ मिनटके उपरान्त जायगा तथा पूर्वमें जानेवाला मंगलवारको पञ्चमी तिथिके रहते हुए प्रातःकाल ७ घण्टाकर ३२ मिनटतक यात्रारम्भ करेगा।

दान, अध्ययन, शान्ति वैष्टिक कार्य, आदिके लिए सूर्योदय कालकी तिथि ही प्राज्ञ मानो गयी है*। तिथियांकी नन्दा, भद्रा, जया, रिता और पूर्वा सप्तके कलायी गयी है। प्रतिपदा, पृथी और एकादशीकी नन्दा, द्वितीया, मत्समी और द्वादशाकी भद्रा सप्ता, तृतीया, भद्रमा और त्रयोदशीकी जया चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिता सप्ता एवं पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्याका पूर्वा सप्ता है। नन्दा सप्तक तिथियाँ मंगलवारको, रिता सप्तक तिथियाँ शनिवारको एवं पूर्वा सप्तक तिथियाँ गुरुवृत्तिवारको पड़े तो सिद्धा कहलाती हैं। सिद्धा तिथियामें किया गया व्यापार, अध्ययन, देन-लेन अथवा किसी भी प्रकारका नवीन कार्य सिद्ध होता है। नन्दा संशक तिथियामें विप्रविद्या, उन्मत्त, गृहनिर्माण, तान्त्रिक कार्य (अग्नी, दूरी, तत्त्वज्ञ आदि देनेके कार्य), धृति सम्बन्धी कार्य एवं गौत, मुख्य प्रभृति कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न होते हैं। भद्रा संशक तिथियामें विवाह, आभूषणनिर्माण, गौरीकी सवारी, एवं वैष्टिक कार्य, जयासप्तक तिथियोंमें सप्तम, नैविकाका भर्ती करना, युद्ध क्षेत्रमें जाना एवं स्त्र और तीक्ष्ण वस्तुओंका सवय करना, रिता सप्तक तिथियोंमें शस्त्रप्रयोग, विषप्रयोग, निन्द्य कार्य, पापार्थ आदि कार्य एवं पूर्वा सप्तक तिथियोंमें माहुरिक कार्य,

* या तिथि समनुप्राप्य उदयं याति भास्वर ।

या तिथि सकला ज्ञेया दानाध्ययनक्रमसु ॥ —ज्योतिष ० पृ० ५

२ नन्दा भद्रा जया रिता पूर्वा चति विरन्विता ।

दाना मध्योत्तमा शुक्ला कृष्णा तु व्यत्ययात्तिथि ॥ आरंभ नि० पृ० ४

शुक्ला—दिनपूर्वदिदीपिका गाथा ८ घण्टाटीका भाग १

ज्योतिषद्राव ५० ५४

विवाह, यात्रा, यन्त्रोपस्थापना आदि कार्य करना अच्छा होता है। भस्म, यस्याकी मंगलिक कार्य नहीं किये जाते हैं। इस तिथिमें प्रतिष्ठा, जपारम्भ, दान और पौष्टिक कार्य भी करनेका निषेध किया गया है।

चतुर्थी, पष्टी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियोंकी पक्षरक्ष भक्ष है। इनमें उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना अनुभयता है। यदि इन तिथियोंमें कार्य करनी आवश्यकता हो तो इनके प्रारम्भकी पाँच घटिकाँ अर्थात् दो घण्टे अवश्य त्याग्य हैं। अभिप्राय यह है कि उपयुक्त तिथियोंमें सूर्योदयके दो घण्टे बाद कार्य करना चाहिए।

रविवारकी द्वादशी, सोमवारकी पञ्चादशी, मंगलवारकी षष्ठमी, बुधवारकी तृतीया, वृहस्पतिवारकी पष्टी, शुक्रवारकी अष्टमी और शनिवारकी नवमी तिथिमें होनेपर दग्धयोग कहलाता है। इस योगमें कार्य करनेसे नानाप्रकारके विपन्न आते हैं। अभिप्राय यह है कि चार और तिथियोंके संयोगसे कुछ शुभ और अशुभ योग बनते हैं। यदि रविवारकी द्वादशी तिथि हो तो दग्धयोग कहलाता है, इसमें शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आगेवाली तिथिवाकी भी समझना चाहिए।

रविवारकी चतुर्थी, सोमवारकी पष्टी, मंगलवारकी सप्तमी, बुधवारकी द्वितीया, वृहस्पतिवारकी अष्टमी, शुक्रवारकी नवमी और शनिवारकी सप्तमी तिथि विषमयोग सञ्चक होती हैं। अर्थात् उपयुक्त तिथियाँ रवि आदि चारोंके साथ मिलनेसे विषम हो जाता है, इन विषम योगोंमें भी कोई शुभ कार्य आरम्भ नहीं करना चाहिए। नामके समान ही यह योग पल देता है।

रविवारकी द्वादशी, सोमवारकी पष्टी, मंगलवारकी सप्तमी, बुधवारकी अष्टमी, वृहस्पतिवारकी नवमी, शुक्रवारकी दशमी और शनिवारकी पञ्चादशी तिथि हुताशनयोग सञ्चक होती हैं। इन तिथियोंमें भी रवि आदि चारोंके संयोग होनेपर शुभ कार्य करना त्याग्य है।

दग्ध विष हुताशन योग बोधक चक्र

रवि	सो	म	बुध	बृह	शुक्र	शनि	योग
१२	११	५	३	६	८	९	दग्धयोग
४	६	७	२	८	९	७	विषयोग
१२	१	७	८	९	१०	११	हुताशनयोग

चैत्रमें दोनों पक्षोंकी अष्टमी, नवमी, वैशाखमें दोनों पक्षोंकी द्वादशी ज्येष्ठमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, गुरुपक्षकी त्रयोदशी, भाद्रपदमें गुरुपक्षकी सप्तमी, कृष्णपक्षकी पष्टी, आषाढमें द्वितीया, तृतीया, भाद्र पदम प्रतिपदा, द्वितीया, आश्विनमें दशमी, एकादशी, कार्तिकमें कृष्ण पक्षकी पंचमा, गुरुपक्षकी चतुर्दशी मागशीर्षम सप्तमा, अष्टमी, पौषमें चतुर्थी, पंचमी, माघमें कृष्णपक्षका पंचमी और गुरुपक्षकी पष्टी एवं फाल्गुनमें गुरुपक्षकी तृतीया मास शुन्य समझें। इन तिथियोंमें मासलिक कार्य आरम्भ करनेसे बल और धनकी हानि होता है। ज्योतिष शास्त्रम उपयुक्त तिथियाँ निराल बनायी गयी हैं। इनमें विचारमन, गृहारम्भ, वेदीप्रतिष्ठा, पंचकट्याणन, निनाहवारम्भ, उपनयन आदि कार्य नहीं करने चाहिये।

मेघ और वक्र राशिके सूर्यमें 'गृही, मीन और धनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, कन्या और मिथुनके सूर्यमें अष्टमी, सिंह

- १ पक्षों वक्रांशे मेघे चापे मीन द्वितीयकाम् ।
- चतुर्थी वृषमे कुम्भे दशमी सिंहर्षाधिके ॥
- सुम्नेष्टमी च कन्याया द्वादशी मकरे तुले ।
- दहत्यर्को यतस्तस्माद्बर्जनीया इमा सदा ॥

—वसुनन्दिप्रतिष्ठा पाठ प्र० प० अ० १५-१६

और वृश्चिकके सूर्यम दशमी, मकर और तुलाके सूर्यम द्वादशी तिथि दग्धा मकर बतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यम द्वितीया, मेष और कुम्भके सूर्यम चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यम पष्टी, मिथुन और कन्याके सूर्यम अष्टमी, सिंह और वृश्चिकके सूर्यम दशमी एव तुला और मकरके सूर्यम द्वादशी तिथि सूर्य दग्धा सप्तक होती है।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमाम द्वितीया, मेष और मिथुनके चन्द्रमाम चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमाम पष्टी, मकर और मीनके चन्द्रमाम अष्टमी, मेष और कर्कके चन्द्रमाम दशमी एव वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमाम द्वादशी तिथि चन्द्र दग्धा कहलाती हैं। इन तिथियाम उप नयन, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि कार्य करना धर्मित है।

सूर्यदग्धा तिथि-यन्त्र

धनु और मीनके सूर्यम २	मिथुन और कन्याके सूर्यम ८
मेष और कुम्भके सूर्यम ४	सिंह और वृश्चिकके सूर्यम १०
मेष और कर्कके सूर्यम ६	तुला और मकरके सूर्यम १२

चन्द्रदग्धा तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके चन्द्रमाम २	मकर और मीनके चन्द्रमाम ८
मेष और मिथुनके चन्द्रमाम ४	वृष और कर्कके चन्द्रमाम १०
तुला और सिंहके चन्द्रमाम ६	वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमाम १२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर अशुभ तिथियोंका त्याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ-कार्यमें समयशुद्धि का विचार करना परमावश्यक है। प्रतारम्भके लिए तिथिका प्रमाण २७ घंटी सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया है।

तिथि प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनियत रसघटीप्रमम् ।

अथ श्रीपद्मदेवादिसूरिभिर्ज्ञानधारिभिः ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार व्रत तिथिसे प्रमाणके लिए माना मत-मतान्तरों का अदलोकन कर ज्ञानवान् आपद्मदेव आदि महर्षियोंने रस घटी—छ घटी प्रमाण-तिथिके मतको ही प्रमाण माना है । अथान् जैन मान्यतामें उद्धा तिथि मानने लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु छ घटी प्रमाण तिथि होने पर ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है ।

पद्मदेवके मतका उपसंहार

तदेव पद्मदेवाचार्योक्त रसघटीमत व्रतविधाने ग्राह्यम् ।
धर्मप्रमाण मत न ग्राह्यमिति ॥

अर्थ—व्रत विधानके लिए छ घटी प्रमाण ही पद्मदेव आचार्यके मत से ग्रहण करना चाहिए । इस घटी प्रमाण व्रततिथिको नहीं मानना चाहिए । श्रीकृष्णकृष्णदाचार्य तथा मूलसंघके अन्य आचार्योंका मत भी छ घटी प्रमाण तिथि ग्रहण करनेका है ।

प्रश्न

त्रिविधातिथिमपायाते क्रियते हि व्रत कथम् ।

पप्रच्छेति गुरु शिष्यो विनयाग्रनतमन्तकः ॥८॥

अर्थ—एक ही दिन कई तिथियोंसे आ-जानेपर व्रत कर करना चाहिए अथान् कभी-कभी एक ही दिन तीन तिथियाँ रह सकती हैं, एसी अवस्थामें व्रत कर करना चाहिये ? इस प्रकारका प्रश्न विनम्र एवं नतमस्तक होकर शिष्याने गुरुसे पूछा ।

त्रिवेचन—मध्यम मान तिथिका यद्यपि ६० घटी है, परन्तु स्पष्ट मान तिथिका सदा अन्ता-व्यन्ता रहता है । कोई भी तिथि ६० घटी प्रमाण

और बुधिरके सूर्यम दशमी, मकर और तुलाके सूर्यम द्वादशी तिथि दग्धा सज्जक वतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यम द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यम पक्षा, मिथुन और कन्याके सूर्यमें अष्टमी, सिंह और बुधिरके सूर्यमें दशमी एव तुला और मकरके सूर्यम द्वादशी तिथि सूर्य दग्धा सज्जक होती है।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमामें द्विताया, मेष और मिथुनके चन्द्रमामें चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमामें पष्ठी, मकर और मीनके चन्द्रमामें अष्टमी, वृष और कर्कके चन्द्रमामें दशमी एव बुधिर और कन्याके चन्द्रमामें द्वादशी तिथि चन्द्र दग्धा कहलाती हैं। इन तिथियोंमें उप नयन, प्रतिष्ठा, शृद्धारम्भ आदि कार्य करना वर्जित है।

सूर्यदग्धा तिथि-यन्त्र

धनु और मीनके सूर्यमें २	मिथुन और कन्याके सूर्यमें ८
वृष और कुम्भके सूर्यमें ४	सिंह और बुधिरके सूर्यमें १०
मेघ और कर्कके सूर्यमें ६	तुला और मकरके सूर्यमें १२

चन्द्रदग्धा तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके चन्द्रमामें २	मकर और मीनके चन्द्रमामें ८
मेघ और मिथुनके चन्द्रमामें ४	वृष और कर्कके चन्द्रमामें १०
तुला और सिंहके चन्द्रमामें ६	बुधिर और कन्याके चन्द्रमामें १२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर शुभ तिथियोंका याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ कार्यमें समयशुद्धि का विचार करना परमावश्यक है। प्रतारम्भके लिए तिथिना प्रमाण छ घटी सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया गया है।

तिथि प्रमाणके लिए पञ्चदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनियत रसपरीक्षा ।

अथ श्रीपञ्चदेवादिसूत्रिमित्तान्धातिथिः ॥

नृपोंदय
का शय-
या विद
य वेध—

अर्थ—इस प्रकार प्रातिथिके प्रमाणके लिए जो मत
हा भयलोकन कर मानवान् श्रीपञ्चदेव आदि मतमाले
परी प्रमाण-तिथिके मानको हा प्रमाण माना है ।
उद्घातिथि प्रमाणके लिए प्राप्ता नहीं है, किन्तु क
पर हा प्रमाणके लिए प्राप्ता माननी नहीं है ।

मान

पञ्चदेवके मतका अपसारा

[॥९॥

तदेव पञ्चदेवाचार्याक्त रमयः

धर्मप्रमाण मन न ग्राह्यमिति ॥

यही तिथि
नादि क रं उनी
रमें गुप्ते स्पष्ट

अर्थ—प्रातिथिकके लिए उ

त प्रहण करना चाहिये । इस
चाहिये । श्रीकृष्णद्वैपायन तथा
प्राति प्रमाण-तिथि प्रहण करनेका

मैं मता प्रपक्षिण
मैं तिथिके होनेपर
हा प्रमाण उद्घा
। पर गुप्ताचल
प्रमाण माननेसे ही
न पक गया था ।
२ ।

वि

पञ्चदेवति गुरु

अर्थ—एक हा दिन

चाहिये अथवा कमी-कमी
गमी अवस्थाम प्रान्त वय करना
तत्प्राप्त होकर निर्व्याप्ति

॥ ६—गुदा भीर
थान् दिनमानमें
ता गुदा तिथि
योंका सम्बन्ध
गुदा तिथिका
हा रहे

विशेष—मत्तम

मान तिथिका गदा

प्राथम्य ही आती है। कभी कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठ सुदी द्वितीया प्रातः काल १ घटी १५ पल है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पल पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस दिन ५ बजकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ बजकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्था तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयीं। जिस व्यक्ति को तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्वत् तिथियोंमें कैसे व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करना है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतना फल नहीं मिलेगा तथा इससे पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नहीं मिलती है, अतः जिस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत तिथिके निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथिवाके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शकास्पर स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु 'यत्किं पशोपेक्षमें पड़ जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतका फल तभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टाटकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार असमयका धर्माकृति के लिए उपयोगी होनेसे बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार असमयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्म शुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निजरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निजरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियोंका वन्ध भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधाया लक्षण किमिति चेदाह, सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्त्ता-
नायात्, क्षयाभागाच्च विद्धा सा वेधा श्रेया। सूर्योदयकालं प्रति-
न्या तिव्या वेधत्यात्।

एकाधवार ही आती है। कभी कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठसुदी द्वितीया प्रातः काल १ घटी १५ पर है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पर पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्यादय ५ बजकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस दिन ५ बजकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ बजकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्थी तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयीं। जिस व्यक्ति को तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्वत् तिथियोंमें कैसा व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करना है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतका फल नहीं मिलेगा तथा इसके पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नष्टा मिलती है, अतः किस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत तिथिने निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथियोंके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शकास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु "यदि पक्षोपदेशमें पड़ जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतना फल सभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टाटकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार अममयकी धर्पा कृपि के लिए उपयोगी होनेके बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार अममयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्म शुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निजरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निजरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियाँ का धन्ध भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधाया लक्षण किमिति चेदाह : सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्ताभावात्, क्षयामावाद्य विद्धा सा वेधा ज्ञेया। सूर्योदयकालवर्तिन्या तिथ्या वेधत्वात्।

अर्थ—वेधा तिथिका दृष्टान्त क्या है ? अर्थात् कहने हैं कि मूर्खोंद्वय समयमें जो तिथि तीन मुहूर्त—उषर्गमें कम होने अथवा उसका क्षय-अभाव होनेके कारण अथ तिथिके साथ सम्बद्ध रहती है वेधा या विद तिथि कहलाती है । मूर्खोंद्वयकालमें रहनेवाली तिथिके साथ बंध—सम्बन्ध करनेके कारण वेधातिथि कहलाती है ।

मतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान

सोदय दिवस ग्राह्य कुलाद्रिघटिकाप्रथमम् ।

त्रये पटोपमागत्य गुरु प्राह तिरिति स्फुटम् ॥९॥

अर्थ—उषर्ग प्रमाण तिथिके होनेपर दिनभरके लिए वही तिथि मान ली जाती है, अतः मतग्रहण, उपनयन, प्रतिष्ठा आदि कार्य उसी तिथिमें करने चाहिये । इस प्रकार पूर्वाह्न प्रथमके उत्तरमें सुटने स्पष्ट कहा है ।

विवेचन—ग्राह्यमान भारतमें तिथिभारके लिए दो मत प्रचलित थे—हिमाद्रि और कुलाद्रि । हिमाद्रि मत उदयकालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था, पर कुलाद्रि मत उषर्ग प्रमाण उदय कालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था । पर कुलाचल होनेके कारण उषर्ग प्रमाण उदयकालमें तिथिका प्रमाण माननेसे ही इस मतका नाम कुलाद्रि मत या कुलाद्रिघटिका मत पड़ गया था । कुछ लोग हिमाद्रि मतका प्रमाण दमघटी भी मानते थे ।

ज्योतिषशास्त्रमें तिथिषो दो प्रकारकी बतायी गयी है—शुद्धा और विद्धा । 'दिने तिथ्यन्तरसम्बन्धरहिता शुद्धा' अर्थात् दिनमानमें एक ही तिथि हो, किन्ती अथ तिथिका सम्बन्ध न हो तो शुद्धा तिथि होता है । 'तत्सम्बन्धरहिता विद्धा' एक ही दिनमें दो तिथियोंका सम्बन्ध हो तो विद्धा तिथि कहलाती है । भारम्ममिदि ग्रन्थमें विद्धा तिथिका विश्लेषण करने हुए कहा गया है—“जो तिथि तीन पारोंमें पतमान रहे

यह वृद्धि तिथि कहलाती है, मतान्तरसे इसका नाम भी विद्धा तिथि है। जब एक ही दिनमें तीन तिथियाँ या दो तिथियाँ वर्तमान रहें, वहाँ पर भी विद्धा तिथि मानी जाती है। जब एक दिनमें तीन तिथियाँ वर्तमान रहती हैं तो मध्यवाली तिथिका क्षय माना जाता है तथा जब एक दिनमें दो तिथियाँ रहती हैं तो उत्तरवाली तिथिका क्षय माना जाता है। उदाहरण—जैसे रविवारकी रातमें तीन घटी रात शेष रहनेपर पञ्चमी आरम्भ हुई, सोमवारको साठ घटी पञ्चमी है तथा मंगलको प्रातःकालमें तीन घटी पञ्चमी है, पश्चात् पष्ठी तिथि आरम्भ होती है। यहाँ पञ्चमी तिथि रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों दिनोंमें व्याप्त है अतः वृद्धितिथि मानो जायगी। यह वृद्धितिथि प्रतिष्ठा, गृहा-रम्भ, उपनयन आदि समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

तीन तिथियोंकी स्थिति एक ही दिन इस प्रकार रहती है कि शुक्रवारको प्रातःकाल अष्टमी १ घटी १५ पल है, नवमी ५२ घटी ४० पल है और दशमी ६ घटी ५ पल है तथा शनिवारको दशमी ४२ घटी २० पल है। इस प्रकारकी स्थितिमें शुक्रवारको अष्टमी, नवमी और

१ श्रीनवारान् स्पृशती त्याज्या त्रिदिनस्पृशिनी तिथि ।

धारे तिथिनयस्पर्शित्यवम मध्यमा च या ॥

यत्र तिथेऽष्टमिस्तत्रैव तिथिवारनय स्पृशतीति सा त्रिदिनस्पृशिनी । तस्या-
पन्थुरिति नाम द्वयप्रकाशप्रये । यत्र तु तिथिपातस्तत्रैको धारस्तिष्ठ
स्तिथी स्पृशति । तासु या मध्यमा तिथि साऽवममित्युच्यते । एते द्वे
अपि त्याज्ये ।

—आरम्भसिद्धि पृ० ६

२ या एकस्मिन् चासरे द्वयन्ता द्वयोस्तिथ्यो यत्र समाप्ति तत्रोत्तरा
क्षयतिथि । यथा गुरुवासरे घटिकाद्वय तृतीया तदुत्तर चतुर्था पद-
पञ्चाशद्घटिकापर्यन्त, एवमुत्तरा चतुर्थी क्षयतिथि । एवं क्षयतिथिनष्टा,
स्योदये वाररथाप्राप्ते । पलम्—वृत्तं यमगल तत्र त्रिगुसृगवमे
तिथौ । मन्मीभवति तत्सर्वे अप्रमणौ यथेधनम् ॥

—ज्योतिष्य-द्वार्क पृ० ५०

दशमी ताना तिथियाँ रहें। इन हीनोंमेंसे नवमी तिथि क्षयतिथि मानी जायगी। अतः नवमीको प्रत्येक शुभ कार्यमें करनेका निषेध रहेगा।

जैनाचार्योंने प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, प्रतोपनयन प्रभृति मौगलिक कामोंके लिए तिथि वृद्धि और तिथिभंग दोनाको स्वागत्य बताया है। प्रातःकालमें लगभग ६ घंटी प्रमाण तिथि नहीं हो, कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

विष्णुधर्मपुराण, नारदसंहिता, बशिष्ठसंहिता, मुहूर्तचंद्रिका, मुहूर्त माधवीय आदि वैदिक ज्योतिषमें ग्रन्थोंमें भी धर्मदृष्टिके लिए तीन मुहूर्त अर्थात् छ घंटी प्रमाण तिथिका विधान किया गया है। विद्वत्तिथि होने पर किसी किसी आचार्यने तीन मुहूर्त प्रमाण तिथिको भी अग्रहण बताया है।

समस्त शुभ कार्योंमें व्यतीपात योग, भद्रा, वैधति नामका योग, अमावास्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमान, कुलिक योग, अक्षयाम, महापात, विक्रम और वज्रके तीन-तीन दण्ड, परिष योगका पूर्वाह्न, शूलयोगके पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्डके छ छ दण्ड एवं व्यापात योगके नौ दण्ड समस्त शुभ कार्योंमें त्याग्य हैं।

प्रत्येक शुभकार्यके लिए पञ्चाङ्गवृद्धि देखनी जानी है—तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण। इन पाँचके शुद्ध होनेपर ही कोई भी शुभ कार्य करना श्रेष्ठ होता है। या तो भिन्न भिन्न कार्योंके लिए भिन्न भिन्न तिथियाँ प्राप्ता की गयी हैं, परन्तु समस्त शुभ कार्योंमें प्रायः १।४।९।११।१४।२० तिथियाँ त्याग्य मानी गयी हैं। प्राक्क तिथिमान भी क्षय और वृद्धि तिथियोंका निषेध किया गया है।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, ध्रुवण, धनिष्ठा, शनभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २० नक्षत्र हैं। धनिष्ठासे रेवतीतक पाँच नक्षत्रोंमें पञ्चक माना जाता है। इन पाँचों

नक्षत्रोंमें शुभ काष्ठका सम्ग्रह करना, खटिया बनाना एवं झोंपड़ी छवाना निषिद्ध है। अश्विनी, रेवती, मूल, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन पाँच नक्षत्रोंमें ज मे बालकको मृत्युदोष माना जाता है। कोढ़ मोड़ मघा नक्षत्रको भी मूलम परिगणित करते हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी भूष एवं स्थिर सप्तक हैं। इनमें मकान बनाना, बगीचा लगाना, जिनालय बनाना, शान्ति और पौष्टिक कार्य करना शुभ होता है। स्वाति, पुनर्वसु, ध्रुव, धनिष्ठा और शतभिषा मक्षत्र चर या चल सप्तक हैं। इनमें मशीन चलाना, सवारी करना, यात्रा करना शुभ है। पूषाफाल्गुनी, पूषाषाढ़ा, पूषाभाद्रपद, भरणी और मघा उग्र अथवा क्रूर सप्तक हैं। इनमें प्रत्येक शुभ कार्य त्याज्य है। विशाखा और वृश्चिक मिश्र सप्तक हैं, इनमें सामान्य कार्य करना अज्ञ होता है। हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित क्षिप्र अथवा लघु सप्तक हैं। इनमें दुकान खोलना, छलितकलाएँ साखना या छलितकलाओंका निर्माण करना, मुकद्दमा दायर करना, विचारम्भ करना, शास्त्र लिखना उत्तम होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्र सप्तक हैं। इनमें गायन वादन करना, वस्त्र धारण करना, यात्रा करना, स्त्रीका करना, आभूषण बनवाना आदि शुभ हैं। मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुण सप्तक हैं। इनका प्रत्येक शुभ कार्यमें त्याग करना आवश्यक है।

विष्कम्भ, प्रीति, आनुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुक्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, घरीयान्, परिध, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, बह्म, ऐन्द्र और वैधृति ये २७ योग होते हैं। इन योगोंमें वधृति और व्यतीपात योग समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं, परिध योगका आधा भाग वर्ज्य है। विष्कम्भ और वज्रयोगकी तीन तीन घटिकाएँ, शूलयोगकी पाँच घटिकाएँ एवं गण्ड और अतिगण्डकी छ छ घटिकाएँ शुभ कार्योंमें वर्ज्य हैं।

यव, बालव, कौलव, तैमिल, गर, पण्डित, विष्टि, शकुनी, चतुष्पद,

नाम और किंगुपन से ११ करण होते हैं। बड़ करणमें शान्ति और पौष्टिक कार्य; बाल्यमें गृह निर्माण, गृह प्रवेश, निधि स्वयं, दान पुण्यके कार्य; कौटुम्बमें पारिवारिक कार्य, मैत्री, विवाह आदि; तिलिन्म नेकरी, मन्त्र, रागाने मिलना, राजकार्य आदि; गरमें कृषि कार्य; बगिय में व्यापार, ग्रन्थ लिख्य आदि कार्य; विष्टिमें उग्र कार्य; जातुनीमें मन्त्र तन्त्र सिद्धि, औषधनिर्माण आदि; चतुषदमें पशु पक्षिदना-वेधना, पूर पाठ करना आदि; नाममें मित्र कार्य एवं किंगुपनमें विप्र लोचना, मन्त्र, गाना आदि कार्य करना खेद माने गये हैं। विष्टि—भद्रा समस्त शुभ कार्योंमें स्थाप्य है।

वारोंमें रविवार, मंगलवार और सनितार भूत मान गये हैं। इनमें शुभ कार्य करना प्रायः स्थाप्य है। मंगलवारमें रविवार ग्रहण भी किया गया है, किन्तु मंगलवार और सनितारको मरणा स्थाप्य बनाया है। बुध, गुरु और शुक्रवार समस्त शुभ कार्योंमें प्राक्त माने गये हैं। सोम वारको मध्यम बनाया है। रागवाभिषेक, मन्त्रकरी, मन्त्रसिद्धि, औषध निर्माण, विद्यारम्भ, स्वप्न, भस्मकार-निर्माण, निरूप्य निर्माण, पुण्यकृत्य, जन्मव, वाम निर्माण, मूर्तिक-ध्वन आदि कार्य रविवारको करनेमें; कृषि, व्यापार, गान, चौड़ी मातीका व्यापार, प्रतिष्ठा आदि कार्य सोम वारको करनेमें; श्रमकार्य, ज्ञान सोचना, औषधोत्पन्न कराना, मूर्तिक-ध्वन

१ १ शिद्धिमाप्ति कृते च विन्यासि शिवरिवादिषु तन्त्रमिदं ।

१ पुनरामन्त्रं विन्यासो विन्यासो कदाचन ।

पुनरे पुनरेऽप्यारम्भद्वयोर्मद्वैरादया चतुर्थी परार्थ ।

पुनरेऽप्यारम्भे स्थान् कृतेष्वदशम्या पूर्वे भागे गणमाशुतिष्यो ॥

भावार्थ—भद्रामें कोई भी काम भिन्न नहीं होता है। पुन पुनराम जन्म और पौनमासने पुनराममें तथा एकादशी और चतुर्थी परार्थ भी एव पुनरामकी कृतीया और दशमीने परार्थमें और सप्तमी तथा चतुर्दशीके पुनराममें भद्रा होती है।

—गुप्तम-केवल पृ० ८५

आदि काम सफल हो करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काव्य-निर्माण, काव्य-सर्क कला आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि कार्य सुघर हो करनेसे, दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पु सवन, जातकर्म, विवाह, स्नानपान, सूतिका स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि साङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे, विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूड़ाकरण, दाग्नन, विवाह, प्रतोपनयन, पौनस्य सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एवं गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते हैं।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्त्तको ही ग्रहण करना चाहिए। सामान्यसे उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए ग्राह्य पताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए। शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है।

व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदय शुभदिनमसदृष्टिपूर्वा नरा*
तेषा कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेवेति च ॥

धर्माधर्मविचारहेतुरहिता* कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्

तिर्यक्शुभ्रमगाश्रिता जिनपतेर्वाह्य गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं। ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथि को ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेमें तारु और तिर्यग्न गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

यिचेनन—विधिपूर्वक व्रत करनेमें समस्त पाप-भ्रन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासं भांशकी प्राप्ति होता है। पैना पाषोने प्रउकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमम कम ॥ घनी जाता है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिका ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घनी या हममे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उणादरणाथ यों कहना चाहिये कि 'क' ध्यनिको अनुर्दशीका व्रत करना है, अनुदशी शनिवारको एक घटी दस पल है। जैनापाषोंके मतानुसार अनुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन अनुदशी उदयकालमें छ घनीमें म्यून है, अतः पुनवारको ही व्रत करना होगा। अतः—वैदिक आचार्योंके मतानुसार अनुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा, क्योंकि उदयकालमें अनुर्दशी शनिवारको है। इनका वचन है कि उदय कालीन तिथि ही दिनभरके लिए प्राप्त मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयपुष्टि है। समयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्भवदृष्टि आषक अपन सम्बन्धित गुणकी विपुष्टिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान पान, आचार विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। आरम्भ और परिग्रहका उनसे सम्बन्धके लिए त्याग करता है। भगवान्की पूजा करना हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती आवश्यक नियम और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्क रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

आदि काम मंगलको करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काय-निर्माण, काव्य-सर्क कला आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुशती लदना आदि कार्य शुभको करनेसे, दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोद्घयन, पु सवन, जातकर्म, विवाह, स्नानपान, सूक्तिकान्छान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि सांस्कृतिक कार्य शुभवारको करनेसे, विद्यारम्भ, कर्णवेध, घृष्टाकरण, वारदान, विवाह, व्रतोपनयन, पौडश सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एवं गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर काय शनिवारको करनेसे सफल होते हैं।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्तको ही ग्रहण करना चाहिए। सामान्यसे उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, पाग, परण और वारमिथिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए प्राप्ता बताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिए। शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है।

व्रतके लिए छ. घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदयं शुभदिनमसदृष्टिपूर्वा नराः
तेषां कार्यमनेकधा त्रतविधिर्मार्गमेवेति च ॥

धर्माधर्मत्रिचारहेतुरहिता कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्

तिर्यक्शुभ्रमनाश्रिता जिनपतेर्नाह्यं गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं। ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर अल्पत्तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यक्ष और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं। अभिप्राय यह है कि उदयकालान्तिथि का ही प्रमाण मानकर व्रत करना भाग्यमयिन्द्र है। भाग्यमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और निवर्त्य गतिमें भ्रमण करना पड़ता है।

विशेष—विधिपूर्वक व्रत करनेसे ममत्त्व पाप-मन्त्राप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासंभ्रमकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्योंने व्रतकी तिथि का प्रमाण सूर्योदय कालमें कमम व्रत ॥ घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथि का ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यों कहना चाहिये कि 'क' व्यक्ति का चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घण्टा कम चल है। जैनाचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छ घटीम न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा। भर्तृहरि—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा; क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदयकालीन तिथि ही दिनभरके लिए मान्य मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग सम्यग्बुद्धि है। अममयका व्रत कदापि नहीं हो सकता है। सम्यग्बुद्धि आवक अपने सम्पादित गुणकी विगुणिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। अरम्भ और परिग्रहका उत्तम समयके लिए स्थान करता है। भगवान्की पूजा करना हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिपदकी प्राप्ति करनेकी करता है। व्रत आवश्यक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निमल और कर्मकलशमें रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बढ़े-बढ़े

आदि काम मंगलको करनेसे, अक्षरारम्भ, शिलान्यास, व्रणवेध, काव्य-निर्माण, काव्य-तक रत्ना आदिका अध्ययन, व्यायाम करना, कुस्ती लड़ना आदि कार्य शुभको करनेसे, दीक्षारम्भ, विचाररम्भ, औषध निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पु सवन, जातकर्म, विवाह, स्नान, सूतिका स्नान, भूम्युपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे, विचाररम्भ, व्रणवेध, वृद्धाकरण, वाराह, विवाह, व्रतोपनयन, षोडश सस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एवं गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य ब्रह्म कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते हैं ।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित मुहूर्तको ही ग्रहण करना चाहिये । सामान्यमें उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, योग, वरण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए प्राप्ता बताये गये हैं, उन्हींमें उस कार्यको करना चाहिये । शुभ समयपर किया गया कार्य उपादा फल देता है ।

व्रतके लिए छ घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदय शुभदिनमसदृष्टिपूर्वा नरा'
तेषा कार्यमनेकधा व्रतविधिर्मार्गमेवेति च ॥

धर्माधर्मविचारहेतुरहिताः कुर्वन्ति मिथ्यानिश्चम

तिर्यक्शुभ्रमाश्रिता जिनपतेर्गाह्यं गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं । ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर असत् तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होने है। अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथि को ही प्रमाण मानकर व्रत करना भगवद्विरुद्ध है। आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और निर्यस्त गतिमें अग्रण करना पड़ता है।

विशेष—विधिपूर्वक व्रत करनेमें समस्त पाप-मन्त्र-प दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनाचार्यों ने व्रतकी तिथि का प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छ घटी माना है, हमने कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। भगवत् धर्मवालों ने व्रत के लिए उदय तिथि को ही ग्रहण किया है। यदि उदयकालमें एक घटी या इसमें भी कम तिथि हो तो व्रत के लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है। उदाहरणार्थ यह कहना चाहिये कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी कम पड़ गई है। जैनाचार्यों के मतानुसार चतुर्दशीका व्रत गनिवारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी उदयकालमें छ घटीमें भ्रूण है, अतः शुक्रवारका ही व्रत करना होगा। भर्तृहरि—यदि क आचार्यों के मतानुसार चतुर्दशीका व्रत गनिवारका ही करना होगा, क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है। इनका कथन है कि उदय कालीन तिथि ही दिनभरके लिए प्राज्ञ मानी जाती है।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक भगवत्समनुद्धि है। भगवत्सम व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है। सम्पत्ति आधक अपने सम्पत्तिशून्य गुणकी विपुलिके लिए व्रत करता है, वह व्रत के दिनोंमें अपने रहस्य-महान्, स्थान-पान, भोजन-विषयको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है। भगवत्सम और परिग्रहका उतने मन्त्रके लिए त्याग करता है। भगवत्समकी पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करना है, अपनी आत्मा में पवित्रताकी भावना भरता है। सारांश यह है कि वह अपनी भावना मुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है। व्रती आधक नियम और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निमल और कर्मकलत्र रहित करता है। व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

सहायक होते हैं। इस व्रततिथिनिर्णयमें आचार्यने व्रतोंके लिए तिथियाका निश्चय किया है। जैनाचार्यमें व्रत उपवासके लिए तिथियोंका विधान किया गया है। आचार्यने यहाँ कितने प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत करना चाहिए, इसका विस्तारमें निरूपण किया है। योग्य समयमें व्रत करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है।

तिथिहासे प्रश्नार्त्तं य किं विधानम् ? सकला तिथि का ? कथं व्रतनिर्णय इति चेत्सदाह—

अर्थ—तिथिके हासमें व्रत करनेका क्या नियम है ? कथं व्रत करना चाहिए। सकला—सम्पूर्ण तिथि क्या है। उसमें किस प्रकारका व्रत व्यवस्थित किया गया है ? इस प्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर आचार्य कहते हैं—

तिथिहासमें व्रत करनेका विधान

त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्त ममेति च ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया उपनामादिकर्मणि ॥११॥

मरहट् व्याख्या—यस्या तिथो त्रिमुहूर्त्तत्रये वर्तमानेषु पद-
स्पर्श उदेति सा तिथिः दिनत्रिकालेषु स्तनत्रयाष्टाद्विदशला-
क्षणिकरत्नायलीकनकाजलीद्विषावत्येकाजलीमुक्तावलीषोडशफा-
रणादिषु सकला ज्ञेया । चकारात् सा तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्ता-
दिनागतदिनसेऽपि वर्तमाना तिथ्युदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिना गतदि-
नसेऽपि वर्तमाना तिथिः त्रिमुहूर्त्तादिना सा अस्तगता तिथिर्ज्ञेया ।
सद्व्रत गतदिवसेऽपि स्यात् अस्मिन्मनसा त्रिमुहूर्त्ताधिकत्वा-
दिति हेतोः । चान्द्रात् तृतीयोऽर्थोऽपि ग्राह्यः त्रिमुहूर्त्तेषु सत्सु

१ नभितसङ्गलदेव्यापतापायहारम्,

जिनपद्ममुद्दिष्टं जगत्पाथोदिताम् ।

पुनस्तु सकललोकाश्चादमायेन सारम्,

व्रतमिदमिति पूज्य देवनाथस्य पूज्यम् ॥—व्रतोग्रापनसंग्रह पृ० २२

यस्यामर अस्मिन्नेति सा तिथिर्जिनरात्रिर्गगनपञ्चमीचन्दनपट्टया
दिषु नैशिकप्रतेषु सकला ग्राह्या; इति नात्पर्यायः ।

अर्थ—दैवतिक प्रतो म—रत्नत्रय, अष्टाद्विंश, दशलक्षण, रत्न
वली, ण्कायला, द्विरावली, कनकावली, मुक्तावली, षोडशकारण अदिमें
सूर्योदयके समय तीन मुहूर्त अथवा छ घटीसे लेकर छ मुहूर्त अथवा
बारहपणे पर्यन्त उक्त प्रतोमें प्रतिपादित तिथियोंके होनेपर प्रत किये जाते हैं।
रात्रिप्रतोमें—जिनरात्रि, आकाशपञ्चमी, चरनपट्टी, नक्षत्रमाला आदिमें
अमकालीन तिथि ली गयी है अथात् त्रिस दिन सानमुहूर्त—छ घटी तिथि
सूर्यके अम समयमें रहे, उक्त दिन वह तिथि नैशिक प्रतोमें ग्रहण की गयी
है। अभिप्राय यह है कि दैवतिक प्रतोमें उदयकालमें छ घटी तिथिका
और नैशिक प्रतोमें अमकालमें छ घटी तिथिका रहना आवश्यक है।

विशेष—प्राचकके प्रत मूलतः दो प्रकारके होते हैं—नित्य प्रत
और नैमित्तिक प्रत। पाँच अणुप्रत, तीन गुणप्रत और चार शिक्षाप्रत इन
बारह प्रतोंका निग्य पालन किया जाता है, अतः ये नित्य प्रत बड़े जाते
हैं। नैमित्तिक प्रतोंका पालन किसी विशेष अवसरपर ही किया जाता है,
इनके लिए तिथि और समय निश्चित है तथा नैमित्तिक प्रतोंके कालमें
आजक अपने मूळ गुण और उन्नतगुणोंको विस्तृत करता है, उत्तरोत्तर
अपनी अलमाका विकास करता जाता है। नैमित्तिक प्रतोंकी संख्या १०८ है,
इन १०८ प्रतोंमें कुछ गुणरत्न प्रत होनेके कारण व्यवहारमें ८० प्रत लिये
जाते हैं। वस्तुमानमें प्रमुख दम-पट्टा प्रतोंका हा प्रचर देखा जाता है।

नैमित्तिक प्रतोंके प्रधान दो भेद हैं—दैवतिक और नैशिक। जिन
प्रतोंकी सम्मति त्रिपाठों त्रिभुज की जाती है, वे दैवसिद्ध प्रत एवं त्रिभुज
क्रियाओं रातम सम्बन्ध की जाती है, वे नैशिकप्रत कहलाते हैं। दोनों ही
प्रकारके प्रतोंमें प्रोषधोपवास, महाचय एवं धर्मध्यानना करना आवश्यक
माना गया है। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनका प्रतकी उपयोगिता
और आवश्यकताके अनुसार रत्न या दिनमें करना आवश्यक है।

रत्नावलीप्रतमें ण्क वयम ७२ उपवास किये जाते हैं। यह प्रत

श्रावण कृष्ण द्वितीयामे आरम्भ किया जाता है । इसमें प्रत्येक मासमें छ उपवास करनेका विधान है । व्रत करनेवाला प्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन ण्णदान करता है और श्रावण कृष्ण द्वितीयाका उपवास करता है । उपवासके दिन पूजा, स्नाप्याय और जाप करता हुआ ब्रह्मचर्यमें रहता है । श्रावणकृष्ण तृतीयाके दिन दोनों समय शुद्ध भोजन करता है, पुन चतुर्थीके दिन ण्णदान करता है तथा पञ्चमीको प्रोषधोपवास करता है । सप्तमीको ण्णदान करता हुआ अष्टमीको उपवास करता है । इस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमीको करता है । शुक्लपक्षमें द्वितीयाको ण्णदान कर तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको ण्णदान, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको ण्णदान, सप्तमीको ण्णदान और अष्टमीको उपवास करना है । इस प्रकार शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करता है । श्रावणमास वर्षका प्रथम मास माना जाता है, अतः व्रतका आरम्भ श्रावण माससे होता है । व्रत करनेवाला श्रावण में कुल छ उपवास करता है । इसी प्रकार प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी तथा शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करने चाहिये । प्रत्येक महीनेमें छ उपवास करते हुए वर्षास्तनक कुल ७२ उपवास किये जाते हैं । रत्नावलीव्रत एक वर्षतक ही किया जाता है । द्वितीय वर्ष भाद्रपद मासमें उद्यापन करना चाहिये । यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दो वर्ष व्रत करना चाहिये ।

एकादशीव्रत भी श्रावण मासमें आरम्भ किया जाता है । श्रावण कृष्ण चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना तथा श्रावण शुक्ल पक्षमें प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना, इस प्रकार श्रावण मासमें कुल सात उपवास करना । भाद्रपद आदि मासोंमें भी कृष्णपक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक मासमें करने चाहिये । वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं । एक वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिये ।

द्विवापरीयाम दो दिन लगतार उपवास करना पड़ता है। इस मन्त्रे निम्न भा दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। ध्यातृ हस्त
पक्षमें चतुर्थी-नवमी, अक्षय्य नवमी और अशुक्ल अमावस्या तथा अक्षय्य
पक्षमें प्रतिपदा द्वितीया, चतुर्थी-पञ्चमी, अष्टमी-नवमी और अशुक्ल-पूर्णिमा
इस प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिये। आश्विन आदिमासोंमें भी
कुल विधियोंमें ॥ प्रत्येक वर्षमें कुल ८४ उपवास
किये जाते हैं। आदेश उपवास दो दिनोंका होता है।

इस वैदिक मन्त्र के निम्न सूत्रोंद्वय कालमें कसम कसम उपपत्तिविधि
का रहना आवश्यक है। जैसे द्वितीया अमावस्याग्रह करना है, इस मन्त्र
का प्रयोग उपवास आरम्भ कृत्य द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनि
पक्षको द्वितीया विधि उपवास करने हा तो यह मन्त्र सुकल रखा किया
जायगा। इसी प्रकार अन्य वर्षों के मासवर्षोंमें भी समझना चाहिये।

आश्विनमासमें आश्विन अक्षय्य अक्षय्य पक्षमेंको किया जाता है।
चतुर्थीको नवग्रह कर पञ्चमीका मन्त्र लगाना चाहिये। रात अमावस्या
मध्यरात्रि कराने हुए, सवेर करने हुए, सायं अमावस्या करने हुए
किया जाय। रातका अमावस्या किया जा सकता है। सुषे मध्यमें
रातको पञ्चमन लगकर भोजन करना चाहिये। इस मन्त्र के दिन रात
अमावस्या और अक्षय्य हुए किया जाता है।

आश्विन अक्षय्य पक्षको अक्षय्यपक्षीय किया जाता है। इस दिन
प्रोक्ताप्रोक्ता करने हुए रात अमावस्या करना पड़ता है। अक्षय्यपक्षीय मन्त्रों
रातको किया जाय करनी पड़ता है। लक्ष्मी हाकर पञ्च परमईका भोजन
करने हुए रात किया जाता इस मन्त्रों किया है। रात्रिकी कियाओंकी
विनोदना हाइके कारण से मन्त्र वैदिक कहलाते हैं।

१. या निधि मनुष्याय वादनी पश्चिनीरति ।

या विधिनिर्दिष्टे प्रोक्ता विनुद्वैत या मन्त्रे ॥

या प्राप्यामनुद्वैत या ध्यातृ मन्त्रविनुद्वैत ॥

पञ्चमन्त्रे उक्तं मन्त्रं वा विनुद्वैत ॥ —निर्वाणपु ५० १२

धावन कृत्वा द्वितीयां अरुण किरा जग है । इसी प्रकार मागों से उपवास करने से विराम है । इस करनेवाला प्रथम धावन कृत्वा द्वितीयां से दिन गणना करता है और धावन कृत्वा द्वितीयां का उपवास करता है । उपवास के दिन पूरा, पञ्चमी और जय कृत्वा प्रत्यक्षीय रहता है । धावन कृत्वा तृतीयां के दिन दार्जी मगध गुरु भोजन करता है, पुनः चतुर्थी के दिन गणना करता है तब पञ्चमी को प्रत्यक्षीय करता है । गणना का गणना करता है तब अष्टमी को उपवास करता है । इस प्रकार कृत्वा अष्टमी गौतम उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी को करता है । गुरुवार में द्वितीया को गणना कर तृतीया को उपवास चतुर्थी को गणना, पञ्चमी को उपवास, पृथ्वी का गणना, गणना को गणना और अष्टमी ॥ उपवास करता है । इस प्रकार गुरुवार में तृतीया, पञ्चमी और अष्टमी को उपवास करता है । धावनमाग वर्ष का प्रथम माग माना जाता है, भक्त माग का अरुण धावन माग होता है । इस करनेवाला धावन में कृत्वा उपवास करता है । इसी प्रकार प्रत्येक माग में कृत्वा प्रथम द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी तथा गुरुवार में तृतीया, पञ्चमी और अष्टमी को उपवास करने से दिन । प्रत्येक माग में से उपवास करने हुए वर्षागात्र कृत्वा उपवास किये जाते हैं । रक्षावर्षा में एक सप्ताह ही किया जाता है । द्वितीया वर्ष भाद्रपद माग में उद्यापन करना चाहिए । यदि उद्यापन ही नहीं हो सके तो दो वर्ष प्रत्यक्ष करना चाहिए ।

पञ्चावलीमाग भी धावन माग में अरुण किया जाता है । धावन कृत्वा चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करना तथा धावन गुरुवार में प्रत्यक्षीय, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी का उपवास करना । इस प्रकार धावन माग में कुल सात उपवास करना । भाद्रपद यदि मागों में भी कृत्वा प्रथम चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा गुरुवार की प्रत्यक्षीय, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक माग में करने चाहिए । वर्ष में कुल ८४ उपवास किये जाते हैं । एक वर्ष में करने के उपरांत उद्यापन करना चाहिए ।

द्वितीयदिन दो दिन एक बार उपवास करना पड़ता है। इस बातके लिए भी दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। प्रायण कृष्ण पक्षमें चतुर्थी-नवमी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी अमावास्या तथा शुक्ल पक्षमें प्रतिपदा द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमा इन प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिये। भाद्रपद आदिमासोंमें भी इन तिथियोंमें ही मन करना चाहिये। एक वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवास दो दिनोंका होता है।

इन वैयक्तिक लोगोंके लिए नृपौर्य्य कालमें कर्मम कर्म छापनीतिधि का रहना आवश्यक है। जैसे किमीको रक्षावलीग्रह करना है, इस बात का प्रथम उपवास आश्विन कृष्ण द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनिवारको द्वितीया तिथि छापनीम भकर हो तो यह मन शुक्रवारको किया जायगा। इसी प्रकार अन्य बड़े लोगोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

आकाशगर्भीग्रह भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीको किया जाता है। चतुर्थीको वृक्षाग्न कर पञ्चमीको मन रखना चाहिये। रात नमोकार मन्त्रका जप करते हुए, शोभन करने हुए, सायं स्नानादि करने हुए विनम्र चाहिये। रातको जगकर बिना आवश्यक है। सुप्त स्थितिमें रातको पञ्चमन लगाकर ध्यान करना चाहिये। इस बातके दिन रात आकाशकी ओर देखन हुए विनम्र जाता है।

भाद्रपद कृष्ण षष्ठीको चन्द्रमण्डलीग्रह किया जाता है। इस दिन शोषधापवाग करने हुए रात जगरण करना पड़ता है। चन्द्रमण्डली ग्रहमें रातको विनम्र किया करने पड़ती है। यह होकर पञ्च परमहंसा ध्यान करने हुए रात विनम्र इस समयमें विधान है। रात्रिकी विषाधोंकी विशेषता होनेके कारण ये बात वैयक्तिक कहलाने हैं।

* यां तिथि समनुप्राप्य चात्यस्तं धर्माधीनति ।

या तिथिमाहिने प्राक्का विमुहूर्तेन या भवत् ॥

यां प्राप्यास्तमुदेत्यहं न येन स्यात्विमुहूर्तगा ।

पन्धुरनेषु सरेषु सम्पूजो तां विदुषुधा ॥ —निर्णयविधिः पृष्ठ १२

पर्यन्त मन करते रहना चाहिये । जैसे अष्टमि का मन अष्टमीय आरम्भ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है, इन आठ दिनोंके मध्यमें दशमी तिथि का अभाव है, अतः यहाँ आठ दिनोंके चरने मन ही दिन मन करना पड़ेगा । ऐसी अवस्था में मध्यमें तिथिके क्षय होनेपर अष्टमीय ही आरम्भ किया जायगा । इसी प्रकार द्वात्रिंशदशमि के दिनोंमें भी यदि तिथि का अभाव है तो पञ्चमीके चरने अनुधीय ही मन आरम्भ करने चाहिये । क्योंकि चतुर्थी पर्यन्त आरम्भ आश्विन शुक्ल पञ्चमीके चरकर आश्विन शुक्ल चतुर्थी तक माना जाता है । यह द्वात्रिंशदशमि इन दिनों तक किया जाता है, यदि इसमें किसी तिथि की क्षति होनेसे दिन संख्या कम हो तो वह मन अनुधीय ही कर लिया जायगा । हाँ, जिन्हें पञ्चमी, अष्टमी, चतुर्थी आदिका मन करना होगा, उन्हें तो इन तिथियोंके अन्तर ही करना होगा ।

इस नियम—तिथि का अभाव होनेपर एक दिन पहलेसे मन करना चाहिये—में हमी विनोदना है कि यह सर्वत्र लागू नहीं होता । नियत अवधिवाले वैयमिक आरंभिक प्रयोगों में ही लागू होता है । मासिक प्रत्यक्ष मेघमण्डल और वायुकारण आदिमें नहीं लागता है । जैसे बौद्ध कारणप्रत्यक्ष प्रतिपदामे आरम्भ होकर मासिक उपवास और चन्द्र पारणार्थ, इस प्रकार हस्तगत दिन तक करनेके उपरान्त प्रतिपदका समाप्त होता है । इस प्रत्यक्ष तीनों प्रतिपदार्थ पक्षी हैं—पहली आश्विन कृष्णपक्ष की, द्वितीय आश्विन शुक्लपक्ष की और तृतीय आश्विन कृष्णपक्ष की । यदि पहली प्रतिपदा—आश्विन कृष्णपक्ष की प्रतिपदासे लेकर तीसरी प्रतिपदा—आश्विन कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तक किसी तिथि की क्षति होनासे दिन संख्या कम हो तो भी प्रतिपदाय आरम्भ कर तीसरी प्रतिपदा अर्थात् आश्विन कृष्णपक्ष की प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विन मास की कृष्ण प्रतिपदा तक मन करना चाहिये । यहाँ तीनों प्रतिपदाओंके ग्रहण करनेका विधान किया गया है । मासिक प्रयोगोंमें दूसरे महीनेके दिन ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं । आश्विनमे आरम्भ होनेवाला मन

आवणमे भरम्भ नहीं किया जा सकता है । जेगा करनेम मन हानि है, और मन करनेवालेको कम नहीं मिलता ।

नियोजन—पर्व प्रतोंके अतिरिक्त नियत अवधिवाले भी प्रत होते हैं । पर्व प्रतोंके लिए आचार्यने निविदा प्रमाण छ घड़ी निर्धारित किया है, निय दिन छ घड़ी प्रमाण प्रत तिथि होगी, उगी दिन मन किया जायगा । नियत अवधिवाले प्रतोंके लिए यह नियम करना है कि प्रतकी निश्चित अवधिके भीतर यदि कोई तिथि नष्ट—क्षय हो जाय तो कब प्रत करना चाहिये । क्योंकि तिथि क्षय हो जानसे नियत अवधिमें एक दिन घट जायगा, पूरे दिन प्रत नहीं किया जा सकेगा । जेसी अवस्थामें मन करनेके लिए क्या व्यवस्था करनी होगी ? आचार्यन हमके लिए नियम बताया है कि नियत अवधिवाले द्वालाक्षणीक प्रत और अष्टादिक प्रतों के लिए बीचमें किमा तिथिका क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे मन करना चाहिये, निमने मन दिनोंकी संख्या कम न हो सके ।

ज्योतिषशास्त्रमें प्रताके लिए तिथियोंका प्रमाण निश्चित किया गया है । यद्यपि प्रतोंके लिए तिथियोंका प्रतिपादन करना आचारशास्त्रका विषय है, परन्तु उन तिथियोंका समय निधारित करना ज्योतिषशास्त्रका विषय है । प्राचीनकालमें प्रधान रूपसे ज्योतिषशास्त्रका उपयोग तिथि और समय निगणके लिए ही किया जाता था । हम शास्त्रका उत्तरोत्तर विद्याम भी कर्त्तव्य कर्मोंके समय निधारणके लिए ही हुआ है । उद्य प्रभसुरि, वसुनन्दि आचार्य और रत्नोत्तरमूरिने शुभाशुभ समयका निधारण करते हुए बताया है कि प्रताके लिए प्रतिपादित तिथिवाको यथार्थरूपसे प्रतने समयोंमें ही ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा भगमयमें किये गये प्रतोंका कम विपरीत होता है । जो आवश्यक नैमित्तिक प्रतोंका पालन करना है, वह अपने कमोरी निजरा भगमयमें ही कर लेता है । समस्त भारम्भ और परिग्रह छोड़नमें भगमय गृहस्थको अपनी समाधि मिद्ध करनेके लिए नियत नैमित्तिक प्रताका पालन अवश्य करना चाहिये ।

अष्टादिका और द्वालाक्षणी प्रतके लिए जो नियम बताया गया है

करना चाहिये । उदाहरण—किर्मीको अनुदर्शिका प्रकाशन करना है, इस दिन रविवारको अनुदर्शिका २३ घंटे ४० पल है और दिनमान ३२ घंटे ३० पल है । क्या रविवारको अनुदर्शिका प्रकाशन किया जा सकता है ? दिनमान ३२।३० में पाँचका भाग दिया— $32।30 \div 5 = 6।12$ इसको तीनमें गुणा किया— $6।12 \times 3 = 19।12$ गुणफल हुआ । मध्याह्नकाल का प्रमाण गणितकी दृष्टिसे १९।१२ घण्टादि हुआ । तिथिका प्रमाण २३।४० घण्टादि है । यहाँ मध्याह्न कालके प्रमाणसे तिथिका प्रमाण अधिक है अर्थात् तिथि मध्याह्न कालके पश्चात् भी रहती है, अतः प्रकाशनके लिए इसे ग्रहण करना चाहिये । अर्थात् अनुदर्शिका प्रकाशन रविवारको किया जा सकता है । क्योंकि रविवारको मध्याह्नमें अनुदर्शिका तिथि रहती है ।

दूसरा उदाहरण—मंगलवारको अष्टमी ७ घंटे १० पल है, दिनमान ३२।३० पल है । प्रकाशन करनेवालेको क्या इस अष्टमीको प्रकाशन करना चाहिये ? पूर्वातः गणितके नियमानुसार $32।30 \div 5 = 6।12$ इसको तीनमें गुणा किया तो— $6।12 \times 3 = 19।12$ घण्टादि गुणफल आया, यही गणितगत मध्याह्नकालका प्रमाण हुआ । तिथिका प्रमाण ७ घंटे १० पल है, यह मध्याह्नकालके प्रमाणसे भिन्न है, अतः मध्याह्नकालमें मंगलवारका अष्टमी तिथि प्रकाशनके लिए ग्रहण नहीं की जायगी, क्योंकि मध्याह्नकालमें इसका अभाव है । अतः अष्टमीका प्रकाशन सोमवारको करना होगा ।

प्रकाशन करनेके तिथि प्रमाणस और प्रोषधोपवासके तिथि प्रमाणमें बड़ा भारी अन्तर आता है । प्रोषधोपवासके लिए मंगलवारको अष्टमी तिथि ७।३० होनेके कारण प्राप्त है । क्योंकि छ घंटेसे अधिक प्रमाण है, अतः उपवास करनेवाला मंगलका व्रत करे और प्रकाशन करनेवाला सोमवारको व्रत करे, यह आगमकी दृष्टिसे अनुचित-सा प्रतीत होता है । जैनाचार्योंन इस विवादको बड़े सुन्दर ढंगसे सुलझाया है । मूलमघरे अचार्योंने प्रकाशन और उपवास दोनोंके लिए ही कुलादि—छ घंटे

प्रमाण तिथि ही प्राप्ता बनायी है। आचार्य मिहन्दिना मत है कि णका शानके लिए विवादस्थ तिथिका विचार न कर छ घटी प्रमाण तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए। मिहन्दिने णकाशानकी तिथिका विचार रूपमें विचार किया है, उन्होंने अनेक उदाहरण और प्रति उदाहरणोंके द्वारा मध्याह्नप्रायिनी तिथिका गणन करने हुए छ घटी प्रमाणका ही निर्णय किया है। अगण्य णकाशानके लिए वर्षतिथियोंमें छ घटी प्रमाण तिथियों को ही ग्रहण करना चाहिए।

'तिथिर्यथोपचाने स्यादेवमनेऽपि ना तथा' इस प्रकारका आदेश हमसंगर गृहिने भी दिया है। जैनाचार्योंने णकाशानकी तिथिके सम्बन्धमें बहुत कुछ उदाहरण किया है। गणितम् भी कई प्रकारसे मान पन किया है। प्राकृत ज्योतिषके तिथि विचार प्रकरणमें विचार-विनिमय करते हुए बताया है कि पूर्वोदयकालमें तिथिके अरुह होने पर मध्याह्नमें उत्तर तिथि रहती। परन्तु णकाशानके लिए हमघटी प्रमाण होनेपर पूर्व तिथि ग्रहण की जा सकती है। यदि पूर्व तिथि हमघटी^१ प्रमाणमें अरुह है तो उत्तर तिथि लेनी चाहिए। यद्यपि उत्तर तिथि मध्याह्नमें प्यात है, पर इत्यादि^२ घटिका प्रमाणमें अरुह होनेके कारण उत्तरतिथि ही मत तिथि है। अगण्य मधोपमें उपवास तिथि और वक्राशान तिथि दोनों एक ही प्रमाण ग्रहण की गयी है। यद्यपि जैनैतर ज्योतिषम् वक्राशान-तिथि को मत तिथिमें भिन्न माना है, तथा गणित द्वारा अनेक प्रकारसे उत्तरका मान निकाला गया है, परन्तु जैनाचार्योंन इस विवादको वहीं समाप्त कर दिया है। इन्होंने उपवास तिथिका ही प्रतितिथि बनाया है। णका शानकी पारणा मध्याह्नमें एक बजेके उपरान्त करनेका विधान किया गया है। यद्यपि काश्यामय और मूलसधम पारणाके सम्बन्धमें थोका सा मतभेद है, फिर भी दोपहरके बाद पारणा करनेका उद्यत विधान है।

१ छ घटी प्रमाण।

२ छ घटी प्रमाण—यद्दुलाचल होमे।

षोडशकारण और मेघमाला व्रतका विशेष विचार

नहि व्रतहानि, कथं पूर्वं प्रति पष्ठोपजासकार्यो भवति एका पारणा भवति न तु भावनोपजासहानिर्भवति प्रतिपदिनमारभ्य तदन्तं म्रियते व्रतं एतद्वचनं त्रिप्रतिपत्कथितम्, मासिकेषु च यचनात् । तथा ध्रुतसागरसफलकीर्तिकृतिदामोदराभ्रदेवादिष्वथायचनाच्चेति । नतु पूर्णिमा ग्राह्या भवति । अत्र केषाञ्चिद् बलात्कारिणा मतं षोडशकारणनियमे तिथिहानौ वापि अधिके च मूल आदिदिनं न ग्राह्यं षोडशदिनसाधिकत्वाच्चेति विशेषः । एतावानपि विशेषश्च प्रतिपदमाचारभ्य आश्रित्य प्रतिपत्पर्यन्तं तिथिक्षयाभावेन वृत्ते पष्टयेन चैकत्रिंशद्दिने पाक्षिकेऽप्येव समाप्तिः । सप्तदशोपजासेन पूर्णाभिषेकेन स्यादेव स्तोपघातो महाभिषेकं कुर्यात् । यदा तु तिथिहानिस्तदा पष्टकारणमारभ्य प्रतिपद्येव पूर्णाभिषेकः, नापरदिने तद्योक्तं षोडशकारणवारिदमालारनत्रयादीनां पूर्णाभिषेके प्रतिपत्तिथिरपि नापरा ग्राह्येति यचनात् अपरा द्वितीया न ग्राह्येति ।

अर्थ—षोडशकारण व्रतके दिनोंमें एक तिथिकी हानि होने पर भी एक दिन पहलेसे व्रत नहीं किया जाता है । इससे व्रतहानिकी आशंका भी उत्पन्न नहीं होती है । तिथिकी हानि होनेपर दो उपवास लगातार पड़ जाते हैं, बीचवाली मारणा नहीं होती है । एक दिन पहले व्रत न करनेसे भावना—षोडशकारण भावनाओंमेंसे किसी एक भावनासी तथा उपवाससी हानि नहीं होती है, क्योंकि प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा पयन्त ही व्रत करनेका विधान है, इसमें तीन प्रतिपदाओंका होना आवश्यक है, क्योंकि इस व्रतको मासिक व्रत कहा गया है । अतः इसमें तिथिकी अपेक्षा मासकी अवधिका विचार करना अधिक आवश्यक है । अतः सागर, सङ्गन्तीति, कृतिदामोदर और उग्रदेव आदि आचार्योंके वचनाके अनुसार तिथि हानि होनेपर भी पूर्णमासी व्रतके लिये कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए ।

यहाँपर कोई बलाकारगणके आचार्य कहते हैं कि सोलहकारण व्रतके दिनोंमें तिथि हानि होनेपर अथवा तिथि वृद्धि होनेपर आदि दिवस भाटपद कृष्णा प्रतिपदाको व्रतके लिए नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सोलह दिनस अधिक या कम उपवासके दिन हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बलाकारगणके कुछ आचार्य सोलह कारण व्रतके दिनोंमें तिथि क्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्णिमा या द्वितीयास व्रतारम्भ करनेकी सलाह देते हैं। परन्तु हमनी विशेषता है कि तिथि हानि या तिथि-वृद्धि न होनेपर प्रतिपदास व्रत आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदातक इकतास दिन पश्चात् यह व्रत किया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति तीन पक्षमें ही करनी चाहिए। जब तिथिकी हानि नहीं हो तो सोलह उपवास और अभिवर पूर्ण करनेके पश्चात् सप्तहवै उपवास अर्थात् तृतीयाके दिन महाभिवर करे। परन्तु जब तिथि हानि हो तो प्रतिपदाके दिन ही पूर्ण अभिवर करना चाहिए, अन्य दिन नहीं। कुछ आचार्योंका मत है कि चोदशकारण, मेघमाला, रत्नप्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिवरके लिए प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। इन व्रतका पूर्ण अभिवर प्रतिपदाको ही होना चाहिए, द्वितीयाको नहीं। तात्पर्य यह है कि चोदशकारण व्रतमें तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर प्रतिपदा तिथि ही महाभिवरके लिए प्राज्ञ है। इस व्रतका आरम्भ भी प्रतिपदासे करना चाहिए और समाप्ति भी प्रतिपदाको, उपवास करनेके पश्चात् द्वितीयाको पारणा करनेपर।

विवेचन—सोलहकारण व्रतके दिनोंके निर्णयके लिए दो मत हैं—शुक्लमास, सकलकीर्ति आदि आचार्योंका प्रथम मत तथा बलाकार गणके आचार्योंका दूसरा मत। प्रथम मतके प्रतिपादक आचार्योंने तिथि हानि या तिथि वृद्धि होनेपर प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा तक ही व्रत करनेका विधान किया है। दिन सन्धा प्रतिपदास आरम्भ की गयी है, यदि आश्विन कृष्ण प्रतिपदा तक कोई तिथि बढ़ जाय तो एक दिन या दो दिन अधिक व्रत किया जा सकेगा, तिथिघाते षट् अनेपर एक या

दो दिन कम भी व्रत किया जाता है। यह बात नहीं है कि एक तिथिके घट जाने पर प्रतिपदाके स्थानमें पूर्णिमामें ही व्रत कर लिया जाय। व्रतरम्भके लिए नियम बताया है कि प्रथम उपवासके दिन प्रतिपदा तिथिका होना आवश्यक है, तथा व्रतकी समाप्ति भी प्रतिपदाके दिन ही होती है।

पौर्णमासीकरण व्रतकी मासिक व्रतामें गणना की गयी है, अतः इसमें एक या दो दिन पहले आरम्भ करनेकी बात नहीं उठती है। जो लोग यह भावना करने हैं कि तिथिके घट जाने पर उपवास और भावनामें हाथि आयेगी, उनकी यह धाँका निमूल है। क्योंकि यह व्रत मासिक बताया गया है, अतः प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रतिपदामें ही इसकी समाप्ति हो जाती है। तिथिके अथ होनेपर दो दिनतक लगातार उपवास पड़ सकता है तथा दो दिनोंके स्थानमें एक ही दिन भावना की जायगा।

बलात्कारगणके आचार्य तिथिगृद्धि और तिथिहानि दोनोंको महारव देते हैं, उनका कहना है कि नियत अवधिसंज्ञक सोलहकारण व्रत होनेके कारण इसकी दिन-भङ्गा इकतीस ही होनी चाहिए। यदि कभी तिथि हानि हो तो एक दिन पहले और तिथिगृद्धि हो तो एक दिन पश्चात् अर्थात् पूर्णमासी और द्वितीयासे व्रतारम्भ करना चाहिए। इन आचार्यों की दृष्टिमें प्रतिपदाका महारव नहीं है। इनका कथन है कि यदि प्रतिपदाको महारव देते हैं तो उपवास-संख्या हीनाधिक हो जाती है। तिथि हानि होनेपर सोलह उपवासके स्थानमें पन्द्रह उपवास करने पड़ेंगे तथा तिथिगृद्धि होनेपर सोलहके बदले सत्रह उपवास करने पड़ेंगे। अतः उपवास संख्याको स्थिर रखनेके लिए एक दिन आगे या पीछे व्रत करना आवश्यक है। इन आचार्योंने व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको ही मानी है तथा इसी दिन सोलहवें अभिषेक पूर्ण करने पर जोर दिया है। कुछ आचार्य प्रतिपदाके उपवासके अनन्तर द्वितीयाका पारणा तथा तृतीयाको पुनः उपवास कर महाभिषेक करनेका विधान बताते हैं। बलात्कारगणके आचार्य इस विषय पर सभी एक मत हैं कि व्रतकी समाप्ति प्रतिपदा

को होना चाहिए । व्रतारम्भ करनेके दिनके सम्बन्धमें विवाद है, कुछ पूर्णिमासे व्रतारम्भ करनेको कहते हैं, कुछ प्रतिपदामे और कुछ द्वितीयामे ।

उपयुक्त दोनों ही मतोंका समीकरण एवं समन्वय करनेपर प्रतीत होता है कि ब्रह्मस्मरण, मनन, पुष्पाटन और काणूरगणके आचार्यों ने प्रधान रूपसे सोलहवारण व्रतम निषिद्ध्य और तिथिदृष्टिको महत्त्व नहीं दिया है । अतएव हम व्रतको सदा भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनकृष्ण प्रतिपदाको समाप्त करना चाहिए । इसके प्रारम्भ और समाप्ति दोनोंमें ही प्रतिपदाका रहना आवश्यक माना है । प्रथम अभिषेक भी प्रतिपदाको प्रथम उपवासपूर्वक किया जाता है, पारणाके दिन अभिषेक नहीं किया जाता । अन्तिम सोलहवें उपवासके दिन सोलहवाँ अभिषेक किया जाता है । सत्रहवाँ अभिषेक कर द्वितीयाको पारणा करनेका विधान है ।

मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ और विधि

मेघमाला व्रतके पूरे अभिषेकके लिए भा प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी । यह व्रत भी ३१ दिनतक किया जाता है । इसका प्रारम्भ भी भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदासे होता है और व्रतकी समाप्ति भी आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको बतायी गयी है । मेघमाला व्रतमें सात उपवास और चौबीस व्रतकाशन किये जाते हैं । प्रथम उपवास भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदाको, द्वितीय भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको, तृतीय भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीको, चतुर्थ भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदाको, पञ्चम भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको, षष्ठ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको और सप्तम आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको करनेका विधान है । शेष दिनोंमें चौबीस व्रतकाशन करने चाहिए । पाँच व्रतक पालन करनेके उपरान्त इस व्रतका उच्चापन किया जाता है । जितने उपवास बताये गये हैं उतने ही अभिषेक किये जाते हैं तथा उपवासके दिन रात जागरण पूर्वक बितायी जाती है और अभिषेक भी उपवास की तिथिको ही किया जाता है । इस व्रतमें ३४ दिनतक ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन तथा समय धारण किया जाता है। समय और ब्रह्मधर्म धारण धारण शुद्धा चतुदशीसे आरम्भ होता है तथा आश्विन कृष्णा द्वितीयातक पालन किया जाता है। इस व्रतकी सफरताके लिए संयमका आवश्यक माना गया है।

मेघपक्ष आकाशम जाच्छेद्य हो तो पञ्चमोत्र पाठ करना चाहिए। इस व्रतका नाम मेघमाला इमीलिए पना है कि इसमें सात उपवास उन्हीं दिनाम करनेका विधान है, जिन निम्नो ज्योतिषकी दृष्टिमें वर्षा योग आरम्भ होता है अथवा घृष्टि होने या मेघाके आच्छादित होमेसे उक्त व्रतके सात हा दिन मेघमाला या वर्षायोग मशक है। अथर्वौन इस मेघमाला व्रतका विशेष फल बताया है।

जैनाचार्योंने मेघमाला व्रतका आरम्भ भी तिथिक्षय या तिथि-घृष्टिके होनेपर भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदामे माना है तथा इसकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाका होती है। इसमें तीन प्रतिपदाओंका विशेष महत्व है, तथा इन तीनोंका प्रमाण भी मोक्ष दिवस—सूर्योदय कालमें छ घटी प्रमाण तिथिका होना, कोही बताया है। सोलहकारण व्रतके समान तिथिक्षय या तिथिघृष्टिका प्रभाव इसपर नहीं पड़ता है। तिथि-घृष्टिके होनेपर एक उपवास कभी कभी 'अधिक करता पड़ता है, क्योंकि तीनों प्रतिपदाओंका रहना व्रतमें आवश्यक बतलाया गया है। मेघमाला व्रतके उपवासके दिन मध्याह्न पूजापाठ करनेके उपरान्त दो घटी पर्यन्त कायोत्सग करना तथा पञ्चपरमेष्ठीके गुणाका चिन्तन करना अनिवार्य है। मध्याह्नकालका प्रमाण गणित विधिसे निकालना चाहिए।

दिनमानमें पाँचका भाग देकर तीनमें गुणा कर देनेपर मध्याह्नका प्रमाण अता है। जैसे भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाके दिन दिनमानका प्रमाण ३१ घटी १५ पल है, इस दिन मध्याह्नका प्रमाण निकालना है अतः गणित क्रिया की— $31 \times 3 = 93$ — $93 \div 3 = 31$ इसको तीनमें गुणा किया तो— $31 \times 3 = 93$ गुणनफल अथवा १८ घने २१ पल मध्याह्नका प्रमाण है। घण्टा मिनटमें वही प्रमाण ७ घटा २० मिनट २४ सैकण्ड हुआ

अर्थात् सूर्योदयसे ० घंटा २० मिनट २४ से० के पश्चात् मध्याह्न है । यदि हम दिन सूर्य ५१२० वजे उदित होता है तो १२ बनकर ५० मिनट २४ से० से मध्याह्नका अरम्भ माना जायगा । मेषमाला व्रतमें उपवासके दिन ठीक मध्याह्नकालम सामायिक और कायोत्सव करने चाहिए । मेषमाला व्रतके समाप्त रत्नत्रय व्रतम भी अभिषेक प्रतिपदाको ही किया जाता है अर्थात् हम दोनों व्रतोंकी समाप्ति प्रतिपदाका होती है ।

रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय

रत्नत्रयेऽप्येयमवधारणं कार्यं, यत तस्य तिथिमातृत्याप्ता धिका, अत यथा व्रतं कार्यं तथा नान्यथा भवति ।

अर्थ—रत्नत्रय व्रतका सम्पन्न करनेके लिए यह अवधारण करना चाहिए कि हम व्रतकी तिथि मंरगा अधिक नहीं है । अत हम प्रकार व्रत करना चाहिए, किन्तु व्रतमें किसी प्रकारका दोष न भाये ।

(विशेषण—रत्नत्रय व्रत एक वर्षमें तीन बार किया जाता है—भाद्रपद, माघ और चैत्र । वह व्रत उक्त महीनोंके शुक्लपक्षम ही सम्पन्न होता है । प्रथम शुक्लपक्षकी द्वादशीको व्रतारम्भ करना चाहिए । प्रयादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका तेल करना चाहिए । पश्चात् प्रतिपदाका व्रतारम्भ करना चाहिए । इस प्रकार पाँच दिन तक मंत्रम धारण कर मन्त्रचर्य व्रतका पालन करना चाहिए । तीन वर्षके उपरान्त इसका उत्सव करने है । यह व्रत करनेकी उत्कृष्ट विधि है । यदि शक्ति न हो तो प्रयोदशी और पूर्णिमाको भी व्रतारम्भ किया जा सकता है, परन्तु चतुर्दशीका उपवास करना आवश्यक है । प्रधान रूपम हम व्रतमें तीन उपवास रत्नान्वार करनेका नियम है । प्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों तिथियोंम व्रत, पूजन और स्वाध्याय करते हुए उपवास करना चाहिए । अत हम व्रतके तीन ही दिन बताये गये हैं । व्रतारम्भ और समाप्तके दिन मिलानेम यह पाँच दिनका हो जाता है ।

यदि रत्नत्रय व्रतकी प्रधान तीन तिथिया—प्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमास किसी एक तिथिही हानि हो तो क्या करना चाहिए । क्या

तीन दिनके बदलेमें जो ही दिन उपवास करना चाहिये या एक दिन पहले से उपवासकर व्रतको नियत दिनोंमें पूरा करना चाहिये। मंगल और बुधवाररात्रिके आचार्योंने एकमत होकर रसत्रय व्रतकी तिथियोंका निश्चय करते हुए कहा है कि तिथिसे हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिये। किन्तु इस व्रतके सम्बन्धमें इतना विशेष है कि चतुर्दशीका उपवास रम्यदृष्टिसे प्रमाण चतुर्दशीके होनेपर ही किया जाता है। यदि ऐसा भी भवसर आवे जब उदयकालमें चतुर्दशी तिथि न मिले तो जिस दिन घण्टात्मक मानके हिसाबसे अधिक पड़ती हो, उसी दिन चतुर्दशीका उपवास करना चाहिये। इस व्रतकी समाप्तिके लिए प्रतिपदाका रहना भी आवश्यक माना गया है। जिसदिन प्रतिपदा उदयकाल में छ घटी प्रमाण हो अथवा उदयकालमें छ घटी प्रमाण प्रतिपदाके न मिलनेपर घण्टात्मक रूपसे ज्यादा हो उसी दिन महाभिषेकपूर्वक व्रतकी समाप्ति की जाती है।

आचार्य सिंहनन्दिने रसत्रय व्रतकी तिथियोंका निश्चय करते समय स्पष्ट कहा है कि व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे, इस प्रकारसे व्रत करना चाहिये। तिथि धृष्टि होने पर एक दिन अधिक व्रत करना ही पड़ता है, परन्तु चतुर्दशीके दिन प्रोषधोपवास और प्रतिपदाके दिन अभिषेक करना परमावश्यक बताया गया है। इन दोनों तिथियोंको टूटने नहीं देना चाहिये। चतुर्दशीको मध्याह्नमें विशेषरूपसे 'ॐ ह्रीं सत्यवर्द्धानशान्त्यारिप्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिये। मध्याह्नका प्रमाण गणितमें लाना चाहिये। यथा चतुर्दशीके दिन दिनमानका प्रमाण २/१२० है, इस दिन सूर्योदय ६।५० मिनट पर होता है। मध्याह्नकाल जाननेके लिए— $2/120 - 4 = 4/19$ इसको तीनसे गुणा किया तो— $4/19 \times 3 = 12/19$ इसका घण्टात्मक मान ६।२९ ४८ हुआ, सूर्योदय कालमें जोड़ा तो १ घण्टा १२ मिनट ४८ से० पर मध्याह्नकाल आया।

१ २३ घटीका एक घण्टा, २३ पलका एक मिनट तथा २३ विपल का एक सेकण्ट होता है।

मुनिमुव्रत पुराणके आधारपर व्रततिथिका प्रमाण

तदुक्त मुनिमुव्रतपुराणे—

पष्टाशोऽप्युदये ग्राह्य तिथिव्रतपरिग्रह ।

पूर्वमन्यतिथेर्योगो व्रतहानि करोति च ॥ १ ॥

अस्यार्थ—व्रतपरिग्रहं सूर्योदये तिथे पष्टाशमपि ग्राह्यं, अथापि शब्देन पष्टाशाब्धिको ग्राह्य इति निर्विषाद्, न म्यूनाश इति चोत्पत्तेरुक्तं यस्मात् व्रतपरिग्रहाणां पष्टाशात् पूर्वमन्य-
तिथिसंयोगव्रतहानि कर व्रतनाशकरो भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—व्रत करनेवालोंको सूर्योदयकालमें पष्टाश तिथिके रहनेपर व्रत करना चाहिये । पष्टाशमे अधिक तिथि होनेपर सो व्रत किया जा सकता है, पर म्यूनाश होनेपर व्रत नहीं किया जा सकेगा क्योंकि अन्य तिथिका संयोग होनेसे व्रत हानि होती है, व्रतका पल नहीं मिलता है ।

इस श्लोकमें अपि शब्द आया है, मित्रका अर्थ पष्टाशमे अधिक तिथि ग्रहण करनेका है अर्थात् पष्टाशसे अधिक या पष्टाश पुरव तिथि उदयकालमें हो सभी व्रत किया जा सकता है । पष्टाशसे अन्य तिथिके होनेपर व्रत नहीं किया जाता ।

धियेचन—आचार्य ग्रन्थांतरोंके प्रमाण दकर व्रततिथिका निर्णय करते हैं । मुनिमुव्रतपुराणमें बताया गया है कि उदयकालमें पष्टाश तिथि या पष्टाशसे अधिक तिथिके होनेपर ही व्रत करना चाहिये । तिथि का मध्यम मान ६० घटी प्रमाण माना जाता है, स्पष्ट मान प्रतिदिन मिश्र मिश्र होता है । स्पष्टमानका पता लगाना ज्योतिषीका ही काम है, साधारण व्यक्तिका नहीं । किन्तु मध्यममान ६० घटी प्रमाण निश्चित है, इसका पष्टाश दस घटी हुआ, अतः यह अर्थ लेना अधिक सगत होगा कि जो तिथि उदयकालमें दस घटी कमसे कम अवश्य हो वही व्रतके लिये उपयुक्त मानी गयी है । दस घटीमे कम प्रमाण तिथिके रहनेपर, उससे पहले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है । मुनिमुव्रत पुराणकारका

इससे भी अल्प प्रमाण रहनेपर प्रशस्त मान ली गयी है। अतएव व्रतके लिए उदयप्रमाण ही तिथि लेनी चाहिये^१। जैनाचार्योंने इस उदय कालीन तिथिकी मान्यताका जोरदार खण्डन किया है। उन्होंने अपने मतके प्रतिपादनमें अनेक युक्तियाँ दी हैं।

उदयकालीन तिथिसे व्रतके लिए सम्पूर्ण माननेमें तीन दोष आते हैं—विद्धा तिथि होनेके कारण दोष, उदयके अनन्तर अल्पकालमें ही तिथिके क्षय हो जानेसे व्रततिथिके प्रमाणका अभाव और निषिद्ध तिथिमें व्रत करनेका दोष। यदि उदयकालमें एक घटी प्रमाण व्रततिथि मान ली जाय तो उदया तिथि होनेके कारण वैष्णवोंमें ग्राह्य मानी जायगी, परन्तु जैनमतके अनुसार इसमें पूर्वार्ण तीनों दोष वसमान हैं। यह तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद ही मष्ट हो जायगी, तथा आगेवाली तिथि सूर्यादयके २४ मिनट बाद आरम्भ हो जायगी। अतः व्रत सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठान व्रतवाली तिथिमें नहीं होंगे, बल्कि वे अवैतनिक तिथिमें सम्पन्न किये जायेंगे, जिससे असमयमें करनेके कारण उन धार्मिक अनुष्ठानोंका यथोचित फल नहीं मिलेगा। उदाहरणके लिए यों मान लिया जाय कि किसीको अष्टमीका व्रत करना है। मगलवारको अष्टमी एक घटी पन्द्रह पर है अर्थात् सूर्यादयकालमें आधा घण्टा प्रमाण है। यदि सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनट पर होता है तो ५ बजकर ४५ मिनट से मयमी तिथि आरम्भ हो जाती है। व्रती सूर्यादय कालमें सामायिक, स्नोव्रपाठ करता है, इन क्रियाओंको उसे कमसे कम ४५ मिनट तक करना चाहिये। सूर्योदय काल में ३० मिनट अष्टमी है, पश्चात् नवमी तिथि है, क्रियाएँ ४५ मिनट तक करनी हैं, अतः इनमें पहला दोष विद्ध तिथिमें प्रातः कालीन क्रियाओंको करनेका आता है। विद्ध तिथिमें की गयी क्रियाएँ, जो कि व्रतविधिके मांस्तर परिगणित हैं, व्यर्थ होती हैं। पुण्यके स्थानमें

१ व्रतोपवासनानादी घटितैः नादि या भवेत् ।

उदये सा तिथिग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥

अज्ञानताके कारण पाप बधकारक हो जाती है। अतः प्रथम दोष विद्वत्तिथिमें प्रारम्भिक व्रत सम्बन्धी अनुष्ठानके करनेका है।

दूसरा दोष यह है कि व्रतारम्भ करनेके समय व्रत-तिथिका प्रभाव क्षीण रहता है, जिससे उपयुक्त उदाहरणमें वर्णित अष्टमी व्रतकी क्रियाओं में भारती ही नहीं। आचार्योंका कथन है कि उद्यकालमें कमसे कम दशमांश तिथिके होनेपर ही तिथिका प्रभाव माना जा सकता है। छ घटी प्रमाण उद्यकालमें तिथिका मान इर्सीलिण प्रामाणिक माना गया है कि मध्यम मान तिथिका ६० घटी होता है, इसका दशमांश छ घटी है, अतः तिथिका प्रभाव छ घटी है, अतः तिथिका प्रमाण ११ घटी होने पर पूर्ण माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि सूर्योदयके पश्चात् रस घटी प्रमाणवाली तिथि कमसे-कम २३ घट तक रहती है, जिससे प्रारम्भिक धार्मिक कृत्य करनेमें विद्वत्तिथि या अमृतिक तिथिका दोष नहीं आता है। मात्र उद्यकालीन तिथि रबीकार कर देनेमें व्रतके समस्त कार्य पूजा पाठ, स्वाध्याय आदि अमृतकी तिथिमें सम्पन्न किये जायेंगे, जिनसे व्रत करनेका फल नहीं मिलेगा।

ज्योतिषशास्त्रमें पणित द्वारा तिथिके प्रमाणका साधन किया जाता है। बताया गया है कि दिनमानमें पौषका भाग देनेसे जो प्रमाण भाग्ये व्रतने प्रमाणके पश्चात् तिथिमें अपना प्रभाव या बल आता है। दिनमान के पञ्चमाशामें अष्टपतिथि विस्तृत निर्वल होती है, यह उस वर्षके समान है, जिसके हृद्य-वैरम शक्ति नहीं, जो गिरता-बढ़ता कार्य करता है। जिसकी धाणी भी अपना व्यवहार सिद्ध करनेमें असमर्थ है और जो मय प्रकारसे अक्षय है, अतः निवृत्त तिथिमें व्रतादि कार्य सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। जो व्यक्ति उद्यकालमें रहनेवाली तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करनेका विधान बतलाते हैं, उनके यहाँ प्रभाववाली या बलवान् तिथि व्रतके लिए हो ही नहीं सकती है। अधिकसे अधिक दिनमान ३३ घण्टीका हो सकता है और कमसे कम २० घण्टीका। ३३ घण्टीका पञ्चमाश ११ घण्टी ३६ परत हुआ और २० घण्टीका पञ्चमाश ५ घण्टी २४ परत हुआ।

मान ४३।३२ हुआ ।^१ अर्थात् पूर्णिमाका प्रमाण ४३ घटी ३२ पल आया । इस प्रकार प्रतिदिनका स्पष्ट तिथिमान कभी ६० घटीसे अधिक हो जाता है, जिससे एक तिथिही वृद्धि हो जाती है, क्योंकि अहोरात्र मान ६० घटी ही माना गया है । अतः एक ही तिथि दो दिन भी रह जाती है । उदाहरणके लिए या समझना चाहिए कि रविवारको प्रतिपदा का स्पष्टमान ६७।१० आया । रविवारका मान सूर्यादयसे लेकर आगे सूर्यादयके पहले तक अर्थात् ६० होता है, अतः प्रथम दिन ६० घटी तिथि चौबीस घण्टेतक रही, दोप ७ घटी और १० पल प्रमाण प्रतिपदा तिथि आगे दिन अर्थात् सोमवारको रहेगी । शिष्यका प्रश्न तिथिवृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंकी तिथि सख्या निश्चित करनेके लिए है ।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रत तिथिकी व्यवस्था

पुनरष्टादिकामध्ये तिथिवृद्धिर्यदा भवेत् ।

तदा नवदिनानि स्युर्वन्ते चाष्टादिकार्यके ॥१४॥

सिद्धचक्रस्य मध्ये तु या तिथिवृद्धिमाप्नुयात् ।

तद्विधिस्माधिरा धुर्यादधिकस्याधिक फलम् ॥१५॥

अर्थ—यदि अष्टादिका व्रतका तिथियोंके बीचमें कोई तिथि बढ़ जाय तो व्रतियों नी दिन तक अष्टादिका व्रत करना चाहिए । सिद्धचक्र—अष्टादिका तिथियोंमें मध्यमें तिथि बढ़ जाने पर सिद्धचक्र विधान करनेवालेको नी दिन तक विधान करना चाहिए । क्योंकि अधिक दिन तक करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है । अतः तिथिवृद्धि होने पर व्रत एक दिन कम करनेकी आवश्यकता नहीं आती है ।

त्रिवेचन—नियत अवधिवाले दैवमिक और नैसर्गिक व्रतोंके मध्यमें तिथिवृद्धि और तिथिवृद्धि होने पर उन व्रतोंके दिनानी सरयाको निर्धारित किया है । तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए,

१ ज्योतिर्गणित कौमुदी ५० ३२, ब्रह्मसंहिता, सूर्यसिद्धांतवा तिथि प्रकरण ।

किन्तु तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन बादसे नहीं किया जाता है। तिथि क्षयमें नियत अवधिमस एक दिन घट जाता है, जिससे दिनसंख्या नियत अवधिमस कम हो जानेके कारण अष्टादश और दशलक्षण जैसे व्रतोंमें एक दिन कम हो जानेका दोष आसता। अष्टादश व्रतके लिए अष्ट दिन निर्दिष्ट हैं तथा यह व्रत शुक्लपक्षमें किया जाता है। तिथि-क्षय होनेपर शुक्लपक्षमें ही एक दिन पहले व्रत करनेकी गुणाई है; क्योंकि अष्टमीके रथानाम सप्तमीस भी व्रत करनेपर शुक्लपक्ष ही रहता है। इसी प्रकार दशलक्षण व्रतमें भी पंचुषीसे व्रत करने पर शुक्लपक्ष ही माना जायगा। यहाँ एक-दो दिन पहले भी व्रत कर लेनपर पक्ष वा मास बदलनेकी सम्भावना नहीं है। जिस निबन्ध अवधिवाले व्रतमें पक्ष वा मासके बदलनेकी सम्भावना प्रकट की गयी है, उसमें व्रत निश्चित तिथिमें ही आरम्भ किया जाता है। जैसे चोषणाकारण व्रतके सम्बन्धमें पहले कहा गया है कि तिथिसे घट जानेपर भी यह व्रत प्रतिपदास ही आरम्भ किया जायगा। तिथिक्षयका प्रभाव इस व्रत पर नहीं पड़ता है और न तिथि वृद्धिका प्रभाव ही कुछ होता है।

तिथि वृद्धि हो जानेपर व्रत एक दिन और अधिक किया जाता है, इसकी दिन संख्या तिथि-वृद्धिके कारण घटती नहीं, बल्कि बड़ी हुई तिथि में भी व्रत किया जाता है। अष्टादश व्रतकी तिथियाँके बीचमें यदि एक तिथि बढ़ जाय तो उस बड़ी हुई तिथिको भी व्रत करना होगा। तिथि वृद्धिके समय व्रत तिथिका नियम यही है कि जिस दिन व्रतारम्भ करनेकी तिथि है, उसी दिन व्रतारम्भ करना चाहिए। बीचमें जो तिथि बढ़ता हो, उसका भी व्रत करना पड़ेगा। तिथि-वृद्धिका परिणाम यह होगा कि कभी कभी यत्न उपवास कर जाना पड़ेगा। तथा कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब दो दिन लगातार वारणा ही का जाय। उदाहरणके लिए या समझना चाहिए कि मंगलवारको अष्टमी दिन भर है, बुधवारको भी प्रातः काल अष्टमी तिथिका प्रमाण ७ घंटे १२ पर है। यहाँ दो अष्टमियाँ हुई हैं, प्रथम अष्टमी भी पूर्ण है और द्वितीय अष्टमीको भी

सूर्योदयकालम् ■ घटी प्रमाण होनेसे व्रतके लिए ग्राह्य माना है, अतः यहाँ व्रत करनेवाले को दोना अष्टमियोने उपवास करने पड़ेंगे। नवमीका दिन अष्टाद्विका व्रनमें पारणाका है, यदि दो नवमी पड़ जायें तो दो दिन लगातार पारणा करनी होगी। कुछ लोग बड़ी हुई तिथिको उपवास ही करनेका विधान मतलाते हैं। सिद्धचक्र विधानके करनेमें भी वृद्धिगत तिथिको ग्रहण किया गया है अर्थात् आठ दिनोंके स्थानमें भी दिन तक विधान करना चाहिए। अधिक दिनतक विधान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होगी। जो लोग यह आशका करते हैं कि नियत अवधिके अनुष्ठान और व्रतोंमें अवधिसा उत्पन्न क्यों किया जाता है? यदि अवधिसा उत्पन्न ही अमीष्ट था तो फिर तिथि क्षयके समय अवधि स्थिर रखनेके लिए क्या एक दिन पहलेसे व्रत करनेको कहा?

इस प्रश्नका उत्तर आचार्योंने बहुत विचार विनिमय करनेके उपरान्त दिया है। आचार्य सिंहनन्दिने बताया है कि यों तो समस्त व्रतोंका विधान तिथिके अनुसार ही किया गया है। जिस व्रतके लिए जो विधेय तिथि है, वह व्रत उसी तिथिमें सम्पन्न किया जाता है। परन्तु विशेष परिस्थितिके आ जानेपर मध्यमें तिथिक्षयकी अवस्थामें नियत अवधिवाले व्रतोंकी अवधिको ज्याकी ज्यों स्थिर रखनेके लिए एक दिन पहले करनेका नियम है। तिथिवृद्धिमें विधेय तिथिकी ही प्रधानता रहती है, अतः एक दिनके बढ़ जानेपर भी नियत अवधि ज्यासा था स्थिर रहती है। नियत अवधिसे व्रतमें अवधिका तापस्य वस्तुतः व्रत समाप्तिके दिनसे है। व्रत समाप्ति निश्चित तिथिसे ही होगी। उदाहरण—अष्टाद्विका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होनी चाहिए। यदि पूर्णिमाका वृद्धाचित् क्षय हो और आगेवाली प्रतिपदा हो तो प्रतिपदाको इस व्रतकी समाप्ति न होकर पूर्णिमाके अभावमें अनुदशीको ही इस व्रतकी समाप्ति की जायगी। क्योंकि अनुदशीकी छायामें पूर्णिमा अवश्य आ जायगी। सर्वथा तिथिका अभाव फल नहीं होता है, केवल उदयकालमें तिथिका क्षय दिसलाया

जता है। नियम तिथिका पचांगमें क्षय लिया रहना है, यह तिथि भी पहलेवाली तिथिकी छायामें कुछ घटी प्रमाण रहनी है। अतएव अष्टादिका व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको कभी नहीं की जायगा। पूर्णिमाके अमावस्य चतुर्दशी का माह बननी जरूरी है, क्योंकि चतुर्दशी आग आन वाला पूर्णिमामें पड़े है।

इसी प्रकार एक तिथि बढ़ जानपर भी अष्टादिका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको ही होगी। यदि कदापि दो पूर्णिमाएँ हा आँध और दोनों ही पूर्णिमा उदयकालमें छ घण्टेमें अधिक हों तो किस पूर्णिमाको व्रतकी समाप्ति की जायगी? प्रथम पूर्णिमाका यदि व्रतका समाप्ति की जाती है तो आगेवाली पूर्णिमा भी मोक्षतिथि होनेके कारण समाप्तिके लिए बरा नहीं ग्रहण की जाती है। आचार्य भिन्नभिन्नने इसका समाधान 'अधिक स्वाधिक पण्ड' कहकर दिया है। अर्थात् दूसरी पूर्णिमाका व्रत समाप्त करना चाहिए, क्योंकि दूसरी पूर्णिमा भी रस घटी प्रमाण उदयकालमें होनामाह है। एक दिन अधिक व्रत कर लेना अधिक ही बल मिलेगा। अतएव दो पूर्णिमाआने होने पर आगेवाला—दूसरा पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए।

जब दो पूर्णिमाओंके होनपर पहली पूर्णिमा १० घण्टे प्रमाण है और दूसरी पूर्णिमा तीन घण्टे प्रमाण है, तब क्या दूसरी ही पूर्णिमाको व्रत समाप्त किया जायगा। आचार्यने इस अशङ्काका निर्मूलन करने हुए बताया है कि दूसरी पूर्णिमा छ घण्टेमें कम होनेके कारण व्रतकी पूर्णिमा हा नहीं है, अतः उस ती पारणाके लिए प्रतिपदा तिथिमें वरे गणित किया गया है। व्रतकी समाप्ति पूर्वा अवस्यम प्रथम पूर्णिमाको ही कर ही जायगा तथा आगेवाली पूर्णिमा जो कि प्रतिपदामे सयुक्त है, पारणा तिथि मानी जायगी।

जब कभी दो चतुर्दशियाँ अष्टादिका व्रतमें पड़ती हैं तो तब उपवासमें पञ्चान् प्रतिपदाका पारणा करनेका नियम है। साधारणतया चतुर्दशी और पूर्णिमा इन दोनों तिथियोंका एक उपवास करनेके उपरान्त

प्रतिपदाको पारणा की जाती है। अष्टाद्विका व्रतका महाभिषेक पूर्णिमाको हा हो जाता है।

या तिथिर्नतपूर्णे तु वृद्धिर्भवति सा यदा ।

तस्या नाडीप्रमाणाया पाग्णा प्रियते व्रती ॥१८॥

अर्थ—व्रतकी समाप्ति होनेपर जो तिथि वृद्धिको प्राप्त होती है, यदि वह एक नाडी—घटी प्रमाण हो तो उसीमें पारणा की जाती है। अभिप्राय यह है कि जब व्रतकी समाप्तिवाली तिथिही वृद्धि हो तो प्रथम तिथिमें व्रतको समाप्तकर द्वितीय तिथि छ घटी प्रमाणमें अक्षय हो तो उसीमें पारणा करनी चाहिए। यदि ॥ घटी प्रमाणसे द्वितीय तिथि अधिक हो या छ घटी प्रमाण हो तो उसीमें ही व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

विशेष—जब व्रत समाप्तिवाली तिथिही वृद्धि हो तो प्रथम या द्वितीय तिथिको व्रतका पूरा करना चाहिए। इसपर आचार्योंके दो मत हैं—प्रथम मत प्रथम तिथिको व्रतकी समाप्तिकर अगली तिथिके एक घंटे प्रमाण रहनकर पारणा करनेका विधान करता है। दूसरा मत अगली तिथिके एक घंटे या द्वादश अधिक होनेपर उसीदिन व्रत समाप्ति पर जाकर होता है तथा अगले दिन पारणा करनेका विधान करता है। जैनाचार्योंने तिथिवृद्धि होने पर व्रत करनेकी अवधिका बड़ा सुन्दर विनियोग किया है।

गणितज्योतिष व्रतके लिए दो विधियोंको ब्राह्म नहीं मानता। इसकी पहिली विधि यज्ञकी ही रही है और न कभी तिथिका अभाव होता है। तिथिवृद्धि और तिथिरूप साधारण धर्मियोंको मान्य मानते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि दो विधियों परस्परमें बिछाव प्राय रहती हैं। पर तिथि उत्तर तिथिमें मगुन तथा उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिमें मगुन होता है। व्रतमें पूर्व तिथि उत्तर तिथिमें मगुन ब्राह्म की गयी है, उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिमें मगुन ब्राह्म नहीं की जाता है। उदाहरणके लिए या समझाएं—अर्द्धिक कि सामवातको अष्टमी ७ घंटे १०

पर है, परवान् नवमी प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ भदमी पर या पूर्व तिथि है जो नवमीय सयुक्त है; क्योंकि ७ घंटे ३० पलने उपरान्त नवमी तिथिका प्रारम्भ होनेवाला है। यद्यपि पञ्चांगम नवमी तिथि मंगलवार को ही लिखी मिलेगा; अत उद्पञ्चालम ही तिथिका प्रमाण लिखा जाता है। अथवा यों कहना चाहिये कि पर या पूर्व तिथिका हा तिथ्यादि मान पञ्चांगमें भक्ति रहता है, उत्तर तिथिका नहीं। जो तिथि पञ्चांगमें भक्ति है वह पर या पूर्व और जो भक्ति नहीं है, वह उत्तर कहलाती है। पुनरागत पूर तिथि वह है, जो उत्तर तिथिके समाप्त होनेपर अगले दिन आनेवाली हो। जैसे पूर उदाहरणम भदमीके उपरान्त नवमी तिथि बनावी गयी है, यदि इसी दिन नवमी भी समाप्त हो पाय और पुनरागत दशमीसे सयुक्त हो तो वह उत्तर तिथि पुनरागत पूरतिथिसे सयुक्त कही जाती है। मतके लिये वह तिथि स्पष्ट है।

तिथितारक नामक ग्रन्थमें बताया गया है कि दो प्रकारकी तिथियाँ होती हैं—परयुक्त और पूरयुक्त। मत विधिके लिये दिनीया, षष्ठादशी, भदमी, त्रयोदशी और अमावास्या परयुक्त होनेपर प्राक् नहीं है। अभि प्राय यह है कि इन तिथियोंको मतके लिये पूर्व होना चाहिये। जब तक ये तिथियाँ दिनभर नहों रहेंगी, इनमें प्रतिपादित मत नहीं किंवा जा सकते हैं। उदाहरणके लिये यों समझना चाहिये कि भदमी तिथि यदि उद्पञ्चालमें ७ घंटे ३० पल है तो परयुक्त होनेके कारण इस दिन मत नहीं करना चाहिये। परन्तु जैनाचार्य त्रिभुवनराजे इस मतका अप्रा मानिक गृहाते हैं। उनका कथन है कि ८ घंटे प्रमाण उद्पञ्चालम तिथिके होनेपर, वह विधेय तिथि मत के लिये स्वीकार की गयी है।

पुनरप्य येथा संनमणस्य मूरीणा वचनमाह—

मेदमन विना जेपप्रते येनाविका तिथि ।

यस्मैररमपद्मीना त्रिभिधा तिथिमप्यिति ॥१७॥

अर्थ—मत समाप्ति तिथिकी वृद्धि होनेपर मतके लिये क्या व्यवस्था करनी चाहिये, इसने लिये मेनगणके अन्य आचार्योंके मतको कहते हैं—

नहीं पड़ता है, क्योंकि यह व्रत लगाने के वर्ष में ७ महीने १० दिन तक करना होता है। इसमें तिथिवृद्धि और तिथिक्षय बराबर होते रहने के कारण दिन मर्यादा में बाधा नहीं आती है।

एक अन्य हेतु यह भी है कि मेरव्रत के करने में किसी तिथि का ग्रहण नहीं किया गया है। इस व्रत में तिथि में कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो एक दिन उपवास, दूसरे दिन पारणा, फिर उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार चार उपवास और चार पारणाओं के अनन्तर एक घंटा—दो दिन तक लगातार उपवास करना पड़ता है। पश्चात् पारणा की जाती है। इस प्रकार उपवास विधिके अनुसार उपवास और पारणाओं का सम्बन्ध किसी तिथि से नहीं है। परन्तु यह सावन तिथि से सम्बन्ध रखता है, इसलिए इस व्रत पर तिथिवृद्धि और तिथिक्षय का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। आचार्यों ने इसी कारण मेरव्रत को छोड़ शेष समस्त व्रतों के सम्बन्ध में विधान बनवाया है कि नियत अवधि वाले व्रतों की अभिमत तिथि के जाने पर पारणा की तिथि इस प्रकार निकाली जाती है कि वृद्ध तिथि प्रमाणों से एक घंटी, छ घंटी और चार घंटी प्रमाण घंटा देने पर जो शेष आवे वही पारणा का समय जाता है अर्थात् पारणा के लिए तीन प्रकार की स्थिति बन गया है।

साध्य यह है कि यदि वृद्धि तिथि अगले दिन छ घंटी प्रमाण हो, चार घंटी प्रमाण हो अथवा एक घंटी प्रमाण हो तो उस दिन व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु पारणा की जायगी। यदि वृद्धि तिथि अगले दिन छ घंटी प्रमाण से अधिक है तो उस दिन भी व्रत ही करना पड़ेगा। मेरव्रत के आचार्यों ने एकमत से स्वीकार किया है कि अगले दिन वृद्धि तिथि का प्रमाण छ घंटों से ऊपर अर्थात् सात घंटी होना चाहिए। बीच में तिथिवृद्धि होने पर उपवास या पश्चात् करना चाहिए। व्रत समाप्ति वाली तिथि के लिए ही यह नियम स्थिर किया गया है।

मेर व्रत का सम्बन्ध सावन दिन से है, अतः इसकी समाप्ति या मध्यम तिथि की उदयान्त मज्जा या तिथियों की घटिका गृहीत नहीं

की गयी है। जिन व्रतोंका सम्बन्ध चान्द्र तिथियोंसे है, उनके लिए तिथि वृद्धि और तिथिक्षय ग्रहण किये जाते हैं। आचार्यन यहाँ पर अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर उसकी व्यवस्था बतलायी है।

मेरु व्रतकी विधि—प्रथम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनमें 'ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्यन्धिपोडशजिनालयेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप प्रिकार करना चाहिए। द्वितीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिन में 'ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्यन्धिपोडशजिनालयेभ्यो नमः', तृतीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनमें 'ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्यन्धिपोडशजिनालयेभ्यो नमः' चतुर्थ मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनमें 'ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्यन्धिपोडश जिनालयेभ्यो नमः' और पचम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनमें 'ॐ ह्रीं त्रिधुन्मालीमेरुसम्यन्धिपोडशजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

पारणाके दिनोंमें एक अनाजका ही प्रयोग करना चाहिए। जहाँमें सेब, नारियल, आम, नारंगी, मीसम्मीका उपयोग कर सकते हैं। रात्रि जगरण करना भी आवश्यक है। व्रतके दिनोंमें भगवानकी पूजा करनी चाहिए। पचमेरुकी पूजाके साथ शिवाल-चौनासी, विद्यमान विंशति तीर्थकर और पचपरमेष्ठी पूजा करनी चाहिए। शीलव्रतका पालन भी आवश्यक है।

इस व्रतका फल—लौकिक और पारलौकिक अम्युदयका प्राप्तिके साथ स्वर्गमुख और विदेहमें जन्म होता है। तीन-चार भवमें जीव निषाण प्राप्त कर लेता है।

व्रत तिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत

कर्णाटप्रान्ते रविमिनघटी तिथि ग्राह्या। मूलसधे रस घटी तिथिग्राह्या। जिनसेनाक्यत काष्ठासधे त्रिमुहूर्तात्मिका तिथिग्राह्या तिथिर्ब्रह्मीतामसपलहीन द्विघटीमित मुहूर्तमित्युच्यते ॥

अर्थ—कणाटक प्रान्तम बारह घटी प्रमाण व्रतके लिए तिथि ग्रहण की गयी है। मूल सघने आचार्योंने छ घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। जिनसेनाचार्यके वचनामे काष्ठासघमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिका मान ग्रहण किया गया है। आठ पल हीन दो घटी अर्थात् एक घटी वायन पलका एक मुहूर्त्त होता है।

विशेष—व्रत तिथिका प्रमाण निश्चित करनेके सम्बन्धमें जैनाचार्योंमें भी मतभेद है। भिन्न भिन्न देशोंके अनुसार व्रतके लिए तिथिका प्रमाण भिन्न भिन्न माना गया है। कणाटक प्रान्तम बारह घटी व्रत तिथिके होनेपर ही व्रतके लिए तिथि ग्राह्य मतायी गयी है। श्रीधराचार्यने अपनी ज्योतिष्मान विधिमें व्रत तिथिका विचार करते हुए कहा है कि जो तिथि अपने सम्पूर्ण प्रमाणके पञ्चमाश हो वही व्रतके लिए ग्राह्य होती है। श्रीधराचार्यके उक्त मतपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि बारह घटी प्रमाण तिथिका मान मध्यम तिथिके हिसाबसे लिया गया है। दक्षिण भारतमें जैनेतर विद्वानोंमें भी श्रीधराचार्यके मतका आदर है।

जब मध्यम तिथिका मान साठ घटी मान लिया जाता है, उस समय पञ्चमाश बारह घटी ही आता है, किन्तु स्पष्ट मान बारह घटी शायद ही कभी आवेगा। गणितकी दृष्टिसे स्पष्ट मान निम्न प्रकार होना चाहिये। उदाहरण—गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है तथा बुधवारको श्रुथी १८ घटी ३० पल है। यहाँ पञ्चमीका कुछ मान निकालकर यह निश्चय करना है कि गुरुवारको पञ्चमी श्रीधराचार्यके मतसे ग्राह्य हो सकती है या नहीं? तिथिका कुल मान सभी मासूम हो सकता है जब एक तिथिके अन्तमें लेकर अहोरात्र पर्यन्त जितना मान हो उसे पञ्चांग अंकित तिथि मानम जोड़ दिया जाय। यहाँ पर पञ्चमीका मान निकालना है, बुधवारको श्रुथ्यानी समाप्ति १८।३० के उपरान्त हा जाती है, अर्थात् पञ्चमी तिथि बुधवारको सूर्योदयके १८।३० घट्टारमक मानके उपरान्त आरम्भ हो गयी है। अतः बुधवारको पञ्चमीका प्रमाण =

(६०।०) - (१८।३०) = (गहोराग्र—व्रतमान तिथि) = ४१।३०
 घट्यादि मान बुधवारको पञ्चमाशा हुआ । गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी
 २० पञ्च है, अतः दोनों मानोंको जोड़ देने पर पञ्चमी तिथिका कुल प्रमाण
 निकल आयगा । (४१।३०) + (१५।२०) = ५६।५० । इसका पञ्चमाश
 निकाला तो $५६।५० - ५ = ५१।२५$ अर्थात् ५१ घटी २५ पञ्च प्रमाण
 यदि सूर्यादय कालमें पञ्चमी होगी, तभी व्रतके लिए ब्राह्म मानी जा
 सकेगी । परन्तु हमारे उदाहरणमें १५ घटी २० पञ्च प्रमाण गुरुवारको
 पञ्चमी उदयकालमें बताया गयी है, जो कि गणितमें आये हुए पञ्चमाश
 से ज्यादा है । अतः गुरुवारको पञ्चमीका व्रत किया जायगा । मुनिसुव्रत
 पुराणकारने व्रतकी तिथि का मान कुल तिथिका पचास स्वीकार किया है ।
 दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रान्तमें पञ्चमाश प्रमाण तिथि, तमिल प्रान्तमें
 पचास प्रमाण तिथि एवं तैलंग प्रान्तमें त्रिमुहूर्त्तात्मिका तिथि व्रतके
 लिए ग्रहण की गयी है । उत्तर भारतमें प्रायः सबत्र रस घड़ी प्रमाण तिथि
 ही व्रतके लिए ब्राह्म मानी गयी है ।

मूलसप्त और सेनगणके आचार्य तिथि प्रमाण और तिथि शक्तिकी
 अवस्था छ घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्रहण करते हैं । काशी,
 कोशाम्ब, मगध एवं अवन्ति आदि समस्त उत्तर भारतके प्रदेशोंमें मूल
 सप्तका ही व्रत तिथिके लिए ब्राह्म माना जाता था । काष्ठा सप्तके प्रधान
 आचार्य जिनसेन हैं, इन्होंने व्रतकी तिथिका प्रमाण तीन मुहूर्त्त अर्थात्
 ५ घटी ३६ पञ्च बताया है । हम्बिनापुर, मधुरा और कोशल देशमें
 प्राचीनकालमें इस व्रतका प्रचार था । मूलसप्त और काष्ठासप्तके व्रततिथि
 प्रमाणमें कोई विशेष अन्तर नहीं । मात्र चौबीस घटका अन्तर है, जो
 कि मध्यम और स्पष्ट मानके अन्तरमें हो सकता है । यहाँ सभी मतोंका
 समन्वय करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्रत करनेके लिए तिथिका
 प्रमाण छ घटीसे ज्यादा होना चाहिये । सेनगणने कतिपय आचार्योंने द्वायी
 कारण व्रत तिथिका मान तीन मुहूर्त्तमें लेकर छ मुहूर्त्त तक बताया है ।

तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथि लेकर व्रत करनेसे अथर्व फल, चार मुहूर्त्त

प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे मध्यम फल पड़ छ मुहूर्त्त प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे उत्तम फल मिलता है। तीन मुहूर्त्तसे अल्पप्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। निणयसिन्धुमें हेमाद्रि मतका निरूपण करते हुए बताया गया है कि विवाद उपस्थित होनेपर व्रतके लिए तिथिका प्रमाण समस्त पूर्वाह्णव्यापी लेना चाहिए। पूर्वाह्णका प्रमाण गणितसे निकालते हुए बताया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देकर जो शेष भाये, उसे ठोसे गुणा करनेपर पूर्वाह्णकालका मान आता है। उदाहरण दिनमान बुधवारको २८ घटी ४० फल है तथा चतुर्दशी तिथि इस दिन ६ घटी ७ फल है, क्या यह तिथि पूर्वाह्णव्यापी है? इसे व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए?

दिनमान २८।४० म पाँचका भाग दिया तो— $२८।४० \div ५ = ५।४४$ । इसको दोमें गुणा किया तो— $५।४४ \times २ = ११।२८$ घटी तक पूर्वाह्ण माना जायगा। जो तिथि पूर्वाह्णव्यापी नहीं होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। अतः बुधवारको चतुर्दशी व्रतकी तिथि नहीं मानी जा सकती है, क्योंकि इसका प्रमाण पूर्वाह्णके प्रमाणसे अलग है।

यह हिमाद्रि मत कणाटकप्रान्तीय श्रीधराचार्यके मतसे मिलता मिलता है। केवल गणित प्रक्रियामें थोड़ा सा भ्रम है। गणितसे निष्पन्न फल दोनोंका प्रायः एक ही है। दीपिकाकार एवं मठनरक्षकार सत्यव्रतने उदय तिथिका स्पष्टन करते हुए बताया है कि जब तक पूर्वाह्णकालमें तिथि न हो तब तक व्रतारम्भ और व्रत समाप्ति नहीं करनी चाहिए। देवलने भी ठीक मतका समर्थन किया है तथा जो केवल उदय तिथिको ही प्रमाण मानते हैं, उनका स्पष्टन किया है। देवल और सत्यव्रतका मत बहुत कुछ मूढ़ सधके आचार्योंके मतके साथ समानता रखता है। तिथि शक्ति और तिथिके बलाबलको प्रधान हेतु मानकर पूर्वाह्णकाल व्यापी तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है। गणितमें पूर्वाह्णका प्रमाण

१ उदयरथा तिथिया हि न भवेद्दिनमप्यभ्यन्तम्।

सा स्पष्टा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्॥—निणय० पृ० १७।

भी एक विलक्षण ढंगसे निकाला है, इन्होंने दिनमानका मान्य पञ्चमाश ही पूर्वाह्न माना है। यद्यपि अन्य ग्रन्थोंके आचार्योंने पञ्चमाशपर पूर्वाह्न का प्रारम्भ और नौ पञ्चमाशपर पूर्वाह्नकी समाप्ति मानी है। दिनमान का मान्य पञ्चमाश कह देनेसे ही पूर्वाह्नका ग्रहण हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अनेक मतमतान्तरोंके रहनेपर भी जैनाचार्योंने व्रतके लिए छ घण्टीसे लेकर बारह घण्टी तक तिथिका प्रमाण बताया है।

दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी अवधिका निर्धारण

प्रारणे लक्षणे धर्मे दिनानि दशगोडशात् ।

न्यूनाधिरदिनानि स्युरप्यतत्रिधिसमुत्ते ॥१८॥

अधिरा तिथिरादिष्टा व्रतेषु युध्यमसमे ॥

जादिमध्यान्तमेदेषु यथाशक्तिर्यिधीयते ॥१९॥

अर्थ—दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी संख्या क्रमसे दश और सोलह है। तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें व्रत प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर व्रत समाप्त करनेकी तिथि तक न्यूनाधिक दिन संख्या भी हो जाती है। मध्यमें जब तिथिक्षय हो जाता है तो दिन संख्या कम और जब तिथि-वृद्धि हो जाती है तो दिन संख्या बढ़ जाती है।

व्रतके जानकार विद्वान् लोगाने तिथिवृद्धि होनेपर ण्ठदिन अधिक व्रत करनेका आदेश दिया है, अत आग्नि, मध्य और अन्त भेदोंमें शक्ति के अनुसार व्रत करना चाहिए। नाल्प यह है कि एक तिथिके बढ़ जान पर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। व्रतके आदि, मध्य अथवा अन्तम तिथिके क्षय होनेपर शक्तिके अनुसार व्रत करना।

निवेदन—यद्यपि सोलहकारणव्रतके दिनोंकी संख्या तथा उसकी अवधिके सम्बन्धमें पहले ही विचारसे कहा जा चुका है। सोलहकारण व्रतमें एक तिथिके बढ़ जानेपर दिनसंख्या बढ़ जाती है किन्तु व्रतके दिनोंके मध्यमें एक तिथिके बढ़ जानेपर दिनसंख्याम एक दिन कम

किया जाता है। यह व्रत भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, अतः बीचकी तिथिके नष्ट हो जानेपर भी तिथि अवधि ज्यों-की-त्यों रहती है। व्रत आरम्भ और व्रत समाप्त करनेकी तिथियाँ इसमें निश्चित रहती हैं, अतः तिथिक्षयमें एक दिन आगेसे व्रत नहीं किया जाता है, जिससे ३१ दिन की जगह ३० दिन ही किया जाता है।

दशलक्षण व्रतम षट् दिनके घट जानेपर एक दिन आगेसे व्रत करने को परिपाटी भी है तथा यह शास्त्रसम्मत भी है। दशलक्षणी व्रतके बीचम जय किसी तिथिका क्षय रहता है, तो उसे पूरा करनेके लिए एक दिन आगे व्रत किया जाता है। दस दिनोंके स्थानमें यह व्रत धनी भी नौ दिनोंमें नहीं किया जाता है। जय तिथि बढ़ जाती है तो इस व्रतकी अवधि पारह दिनकी हो जाती है, तिथि बढ़ जानेपर एक दिन घटता नहीं है। व्रतका समाप्ति चतुर्दशीकी जाती है। तिथि घट जानेपर भी व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। हाँ, पञ्चमीको व्रत आरम्भ न कर तिथि-क्षयकी स्थितिमें चतुर्थीको व्रतारम्भ किया जाता है। सेनगणके आचार्योंने व्रत समाप्तिका तिथि निश्चित कर दी है। व्रतारम्भके सम्बन्ध में कात्यायन और मूल सधम थादा मा मतभेद है। मूल सधके आचार्य मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको ही व्रतारम्भ मान लेते हैं, उन्होंने बतलाया है कि मध्यम तिथि-क्षयकी अवस्थाम पञ्चमी बिद्ध चतुर्थी ग्रहण की गई है। सूयान् समयम पञ्चमी तिथि आ ही जाती है। ऐसा नियम भी है कि जय दशलक्षण व्रतके मध्यम किसी तिथिना क्षय होता है तो चतुर्था तिथि मध्याह्नके पश्चात् पञ्चमीस बिद्ध हो हो जाती है। अतएव मूलसधके आचार्योंने एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान किया है। यद्यपि उदयकालम रमघटी प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य बताया है, परन्तु 'निमुहूर्त्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्त समेति च' श्लोकमें च-शब्दका पाठ रखा है, जिससे स्पष्ट है कि सूयान्कालमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिके होनेपर भी तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है।

यद्यपि आचार्यने स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान वैशिक व्रतोंके लिए ही है ।

‘त्रिमुहूर्त्तेषु यत्रार्च’ श्लोककी समस्त व्याख्यामें बताया है “या तिथिरुदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदियसेऽपि वर्तमाना तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिनागतदियनेऽपि वर्तमाना तिथिः” आचार्य के इस कथनमें स्पष्ट है कि अस्तकालमें तीन घटी रहनेवाली तिथि भी व्रतके लिए ब्राह्म मान ली जाती है । यद्यपि भागे चन्द्रर अपने व्याख्यानमें वैशिक व्रतोंके लिए अस्तकालीन तिथिका उपयोग करनेके लिए कहा गया है । फिर भी व्याख्यामें दो बार “त्रिमुहूर्त्तादिनागतदियसेऽपि वर्तमाना” बात भाजानमें यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि इसावधान और महाद्विका व्रतोंके मध्यमें तिथिका अभाव जानकर पञ्चमी विद्वत्पुत्री तथा अष्टमा विद्वत् वसन्ती व्रत करनेके लिए ग्रहण कर ली जाती है, जिसने निराल अवधिमें भी बाधा नहीं पड़ता है ।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर उपयुक्त व्यवस्था मान ली जायगी, किन्तु आदि और अन्तमें तिथिक्षय होनेपर उन रातों व्रताने लिए क्या व्यवस्था रहेगा ? आचार्य मिहिराक्षरोंने इस प्रश्नका उत्तर भी उपयुक्त पदोंमें दिया है । आपन बतलाया है कि आदि तिथिका क्षय होनेका अर्थ है—उदाहरणके लिए पञ्चमीका ही अभाव होना । जब सूर्यादयकालमें पञ्चमी नहीं रहेगी तो चतुर्थी विद्वत् पञ्चमी ही व्रतके लिए पञ्चमी मान ली जायगा । गणेश प्रक्रियाके अनुसार यही सिद्ध होता है कि जब उत्तर तिथिका अभाव होता है तो पूर्व तिथि भी पिछले दिन अल्प प्रमाण ही रहता है, जिसमें क्षय होनेवाली तिथि उस दिन मुक्त हो जाता है । तात्पर्य यह है कि जिस पञ्चमीका अभाव हुआ है, वस्तुतः वह उसके पड़ल दिन उदयकालमें चतुर्थीके रहनेपर मुक्त हो चुकी है, जिसमें अगले दिन उदय कालमें उसका अभाव हो गया है । उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि दुधवारको चतुर्थी ९ घटी २० पल है, गुरुवारको पञ्चमीका अभाव है और वही ५० घटी १९ पल है । ऐसा अवस्थामें व्रतके लिए पञ्चमी कीन सी मानी जायगी ?

विपल प्रमाण या इससे अधिक होनेपर तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यहाँ पर अष्टमी ७ घटी ५४ है, यह मान गणितागत मानसे अधिक होनेके कारण व्रत तिथिके लिए ग्राह्य है। दिनमान २९ घटी ४० पल है, इसका पक्षांश लिया तो—(२९।४०)—६ = ४।१६।४० अर्थात् ४ घटी ५१ पल ४० विपल हुआ। शुक्रवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है जो कि गणित द्वारा आगत मानसे ज्यादा है, अतः यह तिथि भी व्रतके लिए सर्व प्रकारसे ग्राह्य है। माघनन्दि आचार्यने तिथिके लिए और भी अनेक मतोंकी समीक्षा की है, परन्तु सूक्ष्म विचारसे उन्होंने दिनमानके पक्षांशकी ही दान, अध्ययन, व्रत और अनुष्ठानके लिए ग्राह्य बताया है।

इतीन्द्रनन्दियच्चमम्, अधिकायामुक्तं नियमसूत्रे समयभूषणे च—
अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसप्तमे ।

आदिमध्यान्तमेदेषु शक्तितश्च विधीयते ॥१॥

अर्थ—यह इन्द्रनन्दि आचार्यके वचन हैं। अधिक तिथि—तिथि के बढ़ जानेपर नियमसार और समयभूषणमें व्यवस्था बतायी गयी है कि अधिक तिथिके होनेपर विवेकी आवश्यकको भावि, मध्य और अन्त भेदों में—दिनामें शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए। यह श्लोक पहले भी आया है। सिद्धनन्दि आचार्यका ही यह श्लोक है, यद्यपि इसी श्लोकके भावका इन्द्रनन्दीका भी है। पर तिथि व्यवस्था सिद्ध नन्दीकी ही है।

तथा चोक्तं सिद्धनन्दिविरचितपञ्चनमस्कारदीपिकायाम्—
शक्तिहीन करोतु वाप्यधिरस्याधिक फलम् ।

सशक्तिमे च नि शक्तिके श्रेय नेदमुत्तरम् ॥१॥

अर्थ—सिद्धनन्दी विरचित पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थमें भी कहा है—तिथिवृद्धि होनेपर जिसमें शक्ति नहीं है, उसको भी एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए, क्योंकि एक दिन अधिक व्रत करनेमें अधिक फलकी प्राप्ति होता है। जो यह प्रश्न करत हैं कि जिसमें शक्ति नहीं है, वह किस प्रकार अधिक दिन व्रत करेगा। शनिशर्माको ही

एक दिन अधिक मत करना चाहिए। शक्तिके अभावमें एक दिन अधिक मत करनेका प्रश्न उठता नहीं है। आचार्य हम योही दलीलका सहज न करने हैं तथा कहते हैं कि मत करनेवाला गतिहीन या शक्ति-रहित है, यह कोई उत्तर नहीं है। मत समझने की शक्ति होना पर एक दिन अधिक करना चाहिए। मत समझने करनेवाला अपना शक्ति को देखकर ही मत समझ करता है।

विशेषण—आचार्य मिहन्मर्नेने वज्रमन्त्रारदीविका नामक ग्रन्थ लिखा है। अपने इस ग्रन्थमें शिवशक्ति होने पर मत किन्ने दिन करना चाहिए, इसकी व्यवस्था केली है। कुछ लोग यह भासका करते हैं कि जिसमें शक्ति है, वह शिवशक्तिमें एक दिन अधिक मत करेगा और नियममें शक्ति नहीं है, वह नियत अवधि पर्यन्त ही मत करेगा। आचार्य ने इस प्रश्नका उत्तर देने हुए कहा है कि मत करनेमें शक्ति, अशक्तिका प्रभ नहीं है। अधिक दिन मत करनेमें अधिक फलकी प्राप्ति जाता है। जो शक्तिहीन है, उसको तो मत समझ नहीं करना चाहिए। अपनेको शक्तिहीन समझना बहिरागमा बनता है। आचार्य अनन्त शक्ति है, कर्म बन्धनके कारण आत्माकी शक्ति आच्छादित है; कर्मबन्धनके दूरते ही या शिथिल होते ही पूर्ण या अपूर्ण रूपमें शक्ति उद्भूत होती है।

मत करनेका मुख्य ध्येय यही है कि कर्मबन्धन शिथिल हो जाय और ऐसा अवसर मिले जिससे हम कर्मबन्धनको मोहनमें समर्थ हो सकें। मत करके भी अपनेको निःशक्ति समझना बहिरागमाका लक्षण है। परन्तु जैनाग्राम शक्तिप्रमाण मत करनेका आदेश देता है। यदि उपवास करनेकी शक्ति नहीं है तो एकाग्रता करना चाहिए। परन्तु शक्ति-प्रमाण मत करनेका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अपनी शक्तिको छिपाया जाय। मत करनेमें शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो अपनेको निःशक्ति समझते हैं, उन्हें आचार्यका पक्ष प्रदान नहीं हुआ है—भेदविज्ञानकी जागृति नहीं हुई है। भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही हम जीवको अपनी वास्तविक शक्तिका अनुभव हो जाता है।

शरीरसे मोह करनेके कारण ही यह जीव अपनेको शक्तिहीन समझता है। परन्तु नैनदशनमें शारीरिक शक्ति आत्माकी शक्तिमें ही अनुप्राणित पतलाई है। अतः अनन्त बलशाली आत्माको कभी भी शक्तिहीन नहीं समझना चाहिये। मैं चतुर हूँ, पण्डित हूँ, ज्ञानी हूँ आदि मानना यहिरात्मापना है। रागी, द्वेषी, लोभी, मोही, अज्ञानी, दीन, धनी, दरिद्री, मुरूप, कुरूप, बालक, कुमार, तरण, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, मनुष्य, फाला, गोरा, मोटा, पतला, निचला, सबड आदि अपनेको एकान्त रूपमें समझना मिथ्यात्वका चोतक है। जिसको शरीरमें आत्माकी शक्ति हो जाती है, जो शरीरके धर्मको ही आत्माका धर्म मानता है, वह मिथ्या दृष्टि यहिरात्मा है। अतः व्रत करनेमें सर्वदा अपनेको शक्तिशाली ही समझना चाहिये।

जो लोग अपनेको शक्तिहीन कहकर व्रत करनेसे भागते हैं, वे धम्तुत आत्मानुभूतिस हीन हैं। रत्नत्रय आत्माका स्वरूप है, इसकी प्राप्ति व्रताचरणमें ही हो सकती है। व्रताचरण ससार और शरीरसे विरक्ति उत्पन्न करता है। मोहके कारण यह आत्मा अपने स्वरूपको भूलें है, मोहके दूर होते ही स्वरूपका भान होने लगता है। शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य। यह अनादि, स्वतः सिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष है। इस आत्माको तीक्ष्ण शस्त्र काट नहीं सकते हैं, जलप्लावन इसे भिगा नहीं सकता। पवनकी शोषक शक्ति इसे सुखा नहीं सकती। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, अगुरुलघुत्व आदि स्वाभाविक आठ गुण इसमें घटमान हैं। ये गुण इस आत्माके स्वभाव हैं, आत्मामें अलग नहीं हो सकते। जो व्यक्ति इस मानव शरीरको प्राप्तकर आत्माकी साधना करता है, व्रतोपवास द्वारा विषय-कषायजन्म प्रवृत्तियोंको दूर करता है, वह अपने मनुष्य जीवनको सफल कर लेता है।

शरीरके नाश होने पर भी यह आत्मा इस प्रकार नष्ट नहीं होती है जैसे मकानके भीतरका आकाश जो मकानके आवरणका होता है, मकानके गिरा देने पर भी मूलस्वरूपमें ज्यों-का-स्थो अधिकृत रहता है।

रीक हमी प्रसार शरीरके नाश हो जानेपर भी अत्मा उबोड़ी तथा मूलरूपमें रहता है। इमीलिङ्ग आचार्योंने इस बात, दशनमय आत्मनसको प्राप्त करनेका साधन व्रतोपवास्य अदिको माना है। उपवास करनेसे इन्द्रियों की उद्दाम शक्ति क्षीण हो जाती है, त्रिषयकी ओर उनकी दीक्ष कम हो जाती है। उपवासको आचार्योंने शरीर और आत्मशुद्धिका प्रधान साधन कहा है। प्रमाद, जो कि अत्माकी उपलब्धिमें बाधक है, उपवासमें दूर किया जा सकता है। शरीरको समुचित रखनेमें भी उपवास बड़ा भारी सहायक है। घर्म, भ्रान्त, पुत्रपाद और म्याग्नायपूर्वक उपवास करनेका फल तो अद्भुत होता है। अत्माकी वास्तविक शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है।

सम्पत्ति धावक अपने सम्पद्दर्शन व्रतको विगुह करनेके लिए निन्द, नैमित्तिक सभी प्रकारके व्रत करता है। पञ्चगुप्तोंके द्वारा अपने आचरणको सम्पद् करना हुआ माक्षमणमें अप्रसर जाता है। पैनागमर्म स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि श्रावकको सदा सावधान रहने हुए आत्मशोधनमें प्रवृत्त होना चाहिए। यह गृहस्थ धर्म भी हम आत्माकी समारके बंधनसे छुड़ानेमें सहायक है। यद्यपि मुनिधर्म धारण किये बिना पूर्ण स्वतन्त्रता हम जीवने नहीं प्राप्त हो सकती है, क्योंकि गृहस्थ धर्ममें परावर्त्त्यन अधिक रहता है। अग्रदेवने अपने व्रतोद्योतन धावका धारमें स्पष्ट लिखा है कि समाधिमरणमें सहायक दशलक्षण आदि व्रतों को हम चावको अवश्य धारण करना चाहिए। व्रतोंके प्रभावमें समाधि मरण सिद्ध होता है।

व्रतनिधिके निर्णयके लिए त्रिभिन्न व्रत

तथा व्रतोद्योने—

रत्नपटीमत चापि व्रत दशपटीप्रथमम् ।

त्रिशनाटीमत चापि मूले द्वाव्रतद्वये ॥१॥

मूग्वद्वे घटीपट्कं व्रत स्यान्शुद्धिकारणम् ।

काष्ठासद्वे च पष्ठाश निये स्यान्शुद्धिकारणम् ॥२॥

पूज्यपादस्य शिष्यैश्च कथिन पट्घटीमतम् ।

ग्राह्य सकलसङ्घेषु पारम्पर्यसमागतम् ॥३॥

अर्थ—मूल सधके आचार्योंके मतानुसार छ घटी प्रमाण तिथिका मान है। काष्ठासधके आचार्योंके दो मत हैं—एक सिद्धान्तके आचार्य इस घटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान उतलाते हैं तथा दूसरे सिद्धान्तके आचार्य बीसघटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं। मूलसधमें व्रतकी शुद्धि छ घटी प्रमाण तिथि होनेपर मानी है, किन्तु काष्ठासधमें पष्ठादश प्रमाण तिथि ही व्रतशुद्धिकारण मानी गयी है। पूज्यपादके शिष्योंने भी छ घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। इस तिथि प्रमाणको ही परम्परागत आचार्योंके मतानुसार ग्रहण करना चाहिये।

निवेदन—व्रततिथिके निणयके सम्बन्धमें अनेक मतमतान्तर हैं। मूलसध, काष्ठसध, पूज्यपाद आदि आचार्योंकी परम्पराके अनुसार व्रततिथिका मान भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिया गया है। यद्यपि व्यवहारमें मूलसधके आचार्योंका मत ही प्रमाण माना जाता है, फिर भी विचार करनेके लिए यहाँ सभी मतोंका प्रतिपादन किया जा रहा है।

काष्ठासधके आचार्योंमें दो प्रकारके सिद्धान्त पाये जाते हैं। कुछ आचार्य तिथिका प्रमाण पष्ठादश मात्र और कुछ तृतीयाश मात्र मानते हैं। तृतीयाश मात्र प्रमाण माननेवालाका कथन है कि जितनी अधिक तिथि व्रतके दिन सूर्योदयकालमें होगा, उतना ही अच्छा है। क्योंकि पूर्ण तिथिका पल भी पूरा ही मिलेगा। मध्य मान तिथिका ६० घटी होता है, अतः तृतीयाशका अथ २० घटी मात्र है। यदि स्पष्ट तिथिका मान निकालकर तृतीयाश लिया जाय तो अधिक प्रामाणिक न होगा। परन्तु स्पष्टतिथिके मानका गणित करना होगा तभी तृतीयाश वात हो सकेगा। उदाहरण—शोमवारको सप्तमी तिथिका अथ पञ्चागमें १५ घटी २५ पल अंकित है और मंगलवारको अष्टमी १० घटी ४० पल अंकित की गयी है। कुछ अष्टमीका प्रमाण निम्न प्रकार हुआ—

(अहोरात्र प्रमाण-पञ्चाग अंकित पूर्वतिथि-सप्तमी) = अनंकित

व्रततिथि=अष्टमीका प्रमाण=(६०।०) - (१५।२५)=४४।३५ अनकित
 व्रततिथि अष्टमी (अनकित व्रततिथि + पञ्चांग अकित व्रततिथि)=
 (४४।३५) + (१०।४०)=समस्त व्रततिथि=५५।१५ इसका तृतीयाश
 निकाला तो—५५।१५—३=५८।२५ अर्थात् १८ घटी २५ पल तृतीयाश
 प्रमाण आया । यदि अष्टमी सूर्योदय कालमें १८ घटी २५ पलके मुरख
 हो या इससे अधिक हो सभी काष्ठामघके द्वितीय व्रतके अनुसार प्राद्व
 हो सकती है । प्रस्तुत उदाहरण में १० घटी ४० पल ही है, अतः व्रतके
 लिए प्राद्व नहीं मानी जा सकती है । व्रत करनेवालेको सोमवारके दिन
 ही इस सिद्धान्तके अनुसार व्रत करना पड़ेगा ।

तृतीयाश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी आलोचना

मध्यममान या स्पष्टमानसे समस्त तिथिका तृतीयाश व्रतके लिए
 प्रमाण मानना उचित नहीं जैजता है । क्योंकि उदयकालमें तृतीयाशमात्र
 शायद ही कभी तिथि मिलेगी, ऐसी अवस्थामें व्रत तदा अनकित
 तिथिमें ही करना पड़ेगा । मध्यममानकी अपेक्षा २० घटी प्रमाण उदय
 तिथिका मान आवेगा और स्पष्टमानकी अपेक्षासे कभी २० घटीसे अधिक
 २२ घटाके लगभग हो सकता है और कभी २० घटीसे स्थूल ही प्रमाण
 रहेगा । ऐसी अवस्थामें उदयकालमें उक्त प्रमाण तुल्य व्रतके लिए
 तिथि मिलना सम्भव नहा होगा । वर्षमें दो-बार बार ही ऐसी स्थिति
 आवेगी, जब २० घटी प्रमाण या इसके लगभग तिथि मिल सकेगी,
 अतः अधिकांश व्रतमें उदयकालीन तिथिको छोड़ अस्तकालीन तिथि ही
 ग्रहण करनी पड़ेगी ।

दूसरी भाषति तृतीयाश मात्र व्रततिथि माननेमें यह भी आता है
 कि प्रोषधोपवास करनेवालेका प्रायेक वर्ष सम्बन्धी प्रोषधापवास कभी
 भी यथासमयपर नहीं होगा । क्योंकि प्रोषधोपवासके लिए ण्वाशनकी
 तिथिका विधान है, उपवासके लिए भी निश्चित तिथि होनी चाहिए तथा

पारणाके लिए भी विहित तिथिका होना आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। सोमवारको त्रयोदशी ८ घटी २० पल है, मंगलको चतुर्दशी ७ घटी ५० पल है और बुधवार को पूर्णिमा ६ घटी ३० पल है। इस प्रकारकी तिथि व्यवस्था होनेपर क्या चतुर्दशीका प्रोषधोपवास मंगलवारको किया जा सकेगा और पूर्णिमाको पारणा हो सकेगी ?

प्रायेक तिथिका तृतीयांश प्रमाण निकालनेके लिए गणित प्रिया की। रविवारको द्वादशी १२ घटी ४० पल है। अतः (अहोरात्र—एकाशनके पूर्वकी तिथि) = (६०।०) — (१२।४०) = ४७।२० अनन्तित्रयोदशी तिथि, (अनन्तित्रयोदशी तिथि + अंकित तिथि) = (४७।२०) + (८।२०) = ५५।४० त्रयोदशी, इसका तृतीयांश = ५५।४० — ३ = १८।३३।२० घट्यादि मान त्रयोदशीका।

(अहोरात्र—प्रतये पूर्वकी तिथि) = (६०।०) — (८।२०) = ५१।४० अनन्तित चतुर्दशी (अनन्तित्रयोदशी + अंकित चतुर्दशी) = (५१।४०) + (७।४०) = ५९।२० समस्त चतुर्दशी, इसका तृतीयांश ५९।२० — ३ = १९।४० चतुर्दशाका तृतीयांश।

(अहोरात्र—प्रतये तिथि) = (६०।०) — (७।५०) = ५२।१० अनन्तित प्रतये द्वादशी पारणा तिथि, (अनन्तित पारणा + अंकित पारणा) = (५२।१०) + (६।३०) = ५८।४०, इसका तृतीयांश ५८।४० — ३ = १९।३३।२० घट्यादि पूर्णिमाका।

प्रस्तुत उदाहरणमें एकाशनकी त्रयोदशी तिथि सोमवार को ८ घटी २० पल है, स्पष्टमानपरमे तृतीयांशका प्रमाण १८।३३।२० घट्यादि आया है। एकाशनकी तिथिका प्रमाण तृतीयांशके प्रमाणसे अल्प है, अतः सोमवारको एकाशन नहीं करना चाहिए क्योंकि उस दिन त्रयोदशी तिथि है ही नहीं। यदि रविवारको एकाशन किया जाता है, तो उदय रात्रमें १० घटी ४० पल तक द्वादशी तिथि भी रहती है, अतः धर्मध्यान, सामायिक आदि क्रियाएँ, जिनका सम्बन्ध प्रोषधोपवाससे है, त्रयोदशीमें सम्पन्न नहीं हो सकेंगी।

चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना है, यह भी मंगलवारको ७ घटी ५० पल प्रमाण है। गणितसे चतुर्दशीका तृतीयांश १९।५० घट्यादि आया है, अतः मंगलको उपवास नहीं किया जा सकता, उपवास सोमवारको करना पड़ेगा। इसी प्रकार पारणा भी मंगलवारको करनी होगी। उपवास और पारणाकी क्रियाएँ सम्पन्न करनेकी तिथियामें व्यतिरिक्त हो जाता है, जिससे नियमित समयपर धार्मिक क्रियाएँ नहीं हो सकेंगी।

तीसरा दोष तृतीयांश प्रमाण तिथि माननेमें यह आता है कि स्पष्ट मानके अनुसार तिथिशा तृतीयांश सेनपर एकादशतरी तिथिके अनन्तर एक दिन बीचमें योहीं खाली रह जायगा तथा उपवासकी तिथि एक दिन बाद हो पड़ेगी। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किमा व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोषधोपवास करना है। अयोदशी बुधवारको १५।१२ है, पुरुषारको चतुर्दशी १९ घटी १० पल है। और शुक्रवारको पूर्णिमा १० घटी १५ पल है। ऐसा मन्त्रस्थानमें मंगलवारको अयोदशीका एकादश करना पड़ेगा, बुधवारको या ही रहना पड़ेगा, तथा गुरुवारको चतुर्दशीका उपवास करना पड़ेगा तथा शुक्रवारको पारणा। यह प्रोषधोपवास यथार्थ प्रोषधापवास नहीं कहलाएगा। विधिमें भी व्यतिरिक्त हो जायगा, अतः तृतीयांश प्रमाण तिथिसे स्वीकार कर व्रत करना उचित नहीं है।

सामान्यतः तृतीयांश मान तिथिका ग्रहण किया जाय तो ठीक है, पर उदयकालमें तृतीयांश प्रमाण मानना उचित नहीं जैचता है। इस प्रमाणमें अनेक दोष आते हैं, तथा व्रत करनेमें व्यतिरिक्त भी होता है।

दशपत्नी प्रमाण भी तिथिका मान काष्ठामण्डके कुछ भावार्थ मानते हैं। उनका कथन है कि समस्त तिथिशा पक्षाश करने लिए प्राज्ञ है। यदि उदयकालमें कोई भी तिथि अपने प्रमाणके पक्षाश भी हो तो उस व्रतके लिए विहित माना गया है। दान, अध्ययन, उपवास और अनुष्ठान इन चारों कार्योंके लिए पक्षाश प्रमाण तिथिसे अतिरिक्त विधेय पञ्चभोंका मान भी पक्षाश ही कहा है। अर्थात् दान उपार्जित सम्पत्तिका पक्षाश

देना चाहिये । अध्ययनसमय अहोरात्र प्रमाणका पष्टाशमात्र समय अध्ययन—स्वाध्यायमें अवश्य लगाना चाहिये । उपवासके लिए भी विहित तिथि का समस्त तिथिके पष्टाश प्रमाण होना आवश्यक है । अनुष्ठानमें—विधान, प्रतिष्ठा, मन्त्रमिद्धि आदिमें सचित सम्पत्तिका पष्टाश स्वर्ण करना चाहिये तथा अपने समयके छठवें भागको शुभोपयोगमें बिताना आवश्यक है । भतण्य काष्टासघके आचार्योंने व्रतके लिए विहित तिथिका उदयकालमें दस घटी प्रमाण माननेके लिए जोर दिया है । इससे कम प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत नहीं किये जा सकते हैं । यद्यपि स्पष्ट तिथिके प्रमाणानुसार नव घटीसे द्वादशघटी भी प्रमाण व्रततिथिका हो सकती है, परन्तु ऐसा स्थिति बहुत ही कम स्थलोंमें आती है । उदाहरण—सोमवारको त्रयोदशी ४० घटी १५ पल है और मंगलवारको चतुर्दशी २४ घटी ३० पल है । अतः मंगलको चतुर्दशीका पष्टाश गिनना हुआ, इसके लिए गणित मिया की— $(६० \times १०) - (४० \times १५) = १९१४५$ । $(१९१४५) \div (३४१३०) = ५४११५$ समस्त चतुर्दशी, इसका पष्टाश $५४११५ \div ६ = ९०१२३०$ मंगलवारको चतुर्दशी यदि उदयकालमें ९ घटी २ पल ३० बिपल हो तो यह तिथि व्रतके लिए प्राण्य मानी जायगी ।

पष्टांश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमें तिथि माननेवाले मतकी समीक्षा

काष्टासघका पष्टाश प्रमाण व्रतके लिए तिथि मानना मूर्खीयाश प्रमाण माने गये व्रतकी अपेक्षामें उत्तम है । यह व्यावहारिक दृष्टिसे भी ग्राह्य हो सकता है । इसमें व्रतविधिमें ध्यतिव्रमकी गुजाइश भी नहीं है । यद्यपि छ घटी प्रमाण व्रत तिथिको मान लेनेपर, सभी व्रत सम्बन्धी विधान निश्चित तिथिमें हो जाते हैं । किसी भी प्रकारकी बाधा पष्टांश तिथिमानमें उपस्थित नहीं होती है । परन्तु सब प्रकारसे ठीक होनेपर भी एक बाधा इस तिथिको स्वीकार कर लेनेपर आ ही जाती है और वह है मानाधिक्य होनेसे सर्वदा अंकित तिथियोंमें व्रत नहीं किया

जा सकेगा। षष्ठाधवार जेमा भी समय आ सकेगा, जब उदयकालीन तिथियोंको छोड़कर अस्तकालीन तिथियोंको ग्रहण करना पड़ेगा।

वास्तवमें यतका फल सभी मिलता है, जब सूर्योदयकालमें विधेय तिथि कम से-कम दो घटी सामायिक, प्रतिक्रमण और आलोचनाएँ लिए तथा तीन घटी प्रमाण पूजाएँ लिए और एक घटी प्रमाण आत्मचिन्तनके लिए और उपवास सम्बन्धी नियम ग्रहण करनेके लिए रहे। मूल सचके माचार्योंने इसी कारण छ घटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए प्राह्य माना है। दसघटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए प्राह्य माननेमें सिर्फ दो युक्तियाँ हैं—प्रथम “पष्टाशमपि प्राह्य क्षान्ताध्ययनकर्मणि” यह आत्म वाक्य है। इसके अनुसार शान पूजा पाठ आदिके लिए पष्टाश तिथि ग्रहण करनी चाहिए। दूसरी युक्ति जो कि अधिक बुद्धिमत्त प्रतीत होती है, यह है सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ, स्वाध्याय और आत्म चिन्तनके लिए दो-दो घटी समय निर्धारित करना। व्रत करनेवाले श्रावकको व्रतके दिन प्रातः काल दो घटी सामायिक, दो घटी प्रतिक्रमण, दो घटी पूजापाठ, दो घटी स्वाध्याय और दो घटी आत्मचिन्तन करना चाहिए। भ्रम जो विधेय तिथि व्रतके दिन कम-से-कम दस घटी नहीं है, उनमें धार्मिक विषाद पथाथ रूपसे सम्पन्न नहीं की जा सकती हैं। भवन्व दस घटी या इससे अधिक प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए प्राह्य मानना चाहिए।

छ घटी प्रमाण मूलसच और पुण्यपादकी शिष्यपरम्परा व्रततिथि का मान स्वीकार करता है। इसकी उपपत्ति दो प्रकारसे देखनको मिलती है। कुछ लोग कहते हैं कि तिथिकी चार अवस्थाएँ होती हैं, काल, किशोर, युवा और वृद्ध। उदयकालमें पाँच घटी प्रमाण तिथि बालमञ्जक मानी जाता है, पाँच घटीके उपरान्त दस घटी तक किशोर संज्ञक और दस घटीसे लेकर बीस घटी तक युवा संज्ञक तथा अनन्त तिथि वृद्ध संज्ञक कही गयी है। युवा समक तिथिके कुछ लोगाने दो-भेद किये हैं—पूर्व युवा और उत्तर युवा। दिनमान पर्यन्त पूण युवा

होनेपर एक दिन पहलेसे प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होती है। रसत्रय व्रतको भी तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे करना चाहिये। इन सब व्रतोंकी तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे करते हैं, किन्तु तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन और अधिक करते हैं। व्रत तिथियोंके आदि, मध्य और अन्तमें तिथिकी वृद्धि हो जानेपर नियत अवधि तब ही व्रत नहीं किया जाता। शरित एक दिन अधिक व्रत किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वरोंका मत

आदिमध्यान्नमेदेषु तिथिर्यदि विधीयते ।

तिथिहासे समुद्दिष्ट गौतमादिगणेश्वर ॥ २ ॥

अर्थ—आदि, मध्य और अन्तमें यदि तिथिक्षय हो तो गौतमादि मुनीश्वरोंका कथन है कि एक दिन पहलेसे व्रत विधिकी सम्पन्न करना चाहिये ।

विशेष—जैनाचार्योंने तिथिहास और तिथिवृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंको कितने दिनतक करना चाहिये, इसका विस्तार सहित विचार किया है। श्री गौतमगणधर तथा भुतजाके पारंगामी अन्य आचार्योंने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा है कि तिथिहास होनेपर भी व्रतोंको अपनी निश्चित दिनसंख्यातक करना चाहिये। मध्यमें अथवा आदि, अन्तमें तिथिक्षय हो तो एक दिन आगेसे व्रतका निश्चित दिनोंतक पालन करना चाहिये। दशलक्षण, रत्नत्रय और अष्टाद्विका ये तीनों व्रत अपनी निश्चित दिन संख्यातक किये जाते हैं। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमेंसे प्रत्येक दिन एक-एक धर्मके स्वरूपको मनन किया जाता है। तिथि-हासके कारण यदि एक दिन कम व्रत किया जाय तो एक धर्मके स्वरूपके मननका अभाव हो जायगा, जिससे समग्रव्रतका फल नहीं मिल सकेगा। जैनाचार्योंने तिथिहास होनेपर विभिन्न व्रतोंके लिए विभिन्न व्यवस्था बनायी है।

बुद्धकुन्द, पूरुषपाद, जिनमेन, अम्रदेव, मिहन्दी, दामोदर आदि आचार्योंने दशग्रन्थों और अष्टाद्विका मतके तिथि मध्य, अन्न या आदिमें तिथिभय होनेपर एक मतमें स्वीकार किया है कि एक दिन पहलेसे मत करना चाहिए । गौतमगणधर आदि प्राचीन आचार्योंसे भी उक्त मतही समर्थित है । सिद्धन्दि आचार्यने तिथिशयकी व्यवस्था करते हुए कहा है कि प्रत्येक तिथिमें पाँच मुहूर्त पाये जाते हैं—आनन्द, सिद्ध, काल, क्षय और अमृत । इन पाँच मुहूर्तोंमें तिथिशयकी भरणार्थे अर्थात् उदयकालमें तिथिके न मिलनपर तिथिमें तीन मुहूर्त रहते हैं—काल, आनन्द और अमृत । तिथि क्षयवाला दिन अनुम हर्तलिय माना गया है कि इसमें प्रातःकाल छ घण्टा तक काल मुहूर्त रहता है, जो समस्त कार्योंको विनाशनेवाला होता है । उदयकालमें छ घण्टा प्रमाण तिथिके होनेपर प्रथम आनन्द मुहूर्त आता है, तथा छ घण्टेके उपरान्त बारह घण्टा तक सिद्ध मुहूर्त रहता है जिसमें इसमें किये गये सभी कार्य सफल होते हैं । मनापयाम और धर्मध्यानकी क्रियाएँ भी सफल होती हैं, क्योंकि आनन्द और सिद्धमुहूर्त अपने नामके अनुसार ही चल देने हैं । मूलग्रन्थके आचार्योंन इसी कारण मततिथिका प्रमाण छ घण्टा माना है । काष्ठान्धम मततिथिका प्रमाण समस्त तिथिरा चर्चात माना गया है, वह भी इसी कारण सुनिश्चित है कि सिद्ध मुहूर्ततक काष्ठान्धके आचार्योंने तिथिका ग्रहण किया है । जो बीसघण्टा प्रमाण मततिथिका मान मानने हैं, उनका मत सशेष प्रमाण होता है, क्योंकि काल और क्षयमुहूर्त, जो कि अपने नामके समान ही चल देने हैं, उनके द्वारा जानी जाती तिथिसे अन्तम विद्यमान रहते हैं । तिथि क्षयके दिन सबसे प्रथम काल मुहूर्त आता है, जो यथानाम तथा गुणवाला होता हुआ अमरगन्धारक होता है । परन्तु तिथि क्षयके दिन मध्याह्नके उपरान्त काल मुहूर्तका प्रभाव घट जाता है और आनन्द तथा अमृत मुहूर्त अपना चल देने लगते हैं । आचार्योंने एक दिन पहले जो मत करनेकी विधि बतलायी है, उसका अर्थ यह है कि पहले दिनवाली तिथिका

अन्तिम मुहूर्त्त, जो कि अमृत संज्ञन कहा गया है, व्रत तिथिके दिनके लिए फलदायक हो जाता है।

व्रततिथिकी व्यवस्था

अथाप्य यामस्तामुपेति सूर्यस्तिथिमुहूर्त्तत्रयवाहिनीं च ।

धर्मेषु कार्येषु चदन्ति पूणा तिथि व्रतमानधरा मुनीश ॥

व्याख्या—या तिथिम् अथाप्य प्राप्य सूर्याऽस्त याति, अस्तमुपगच्छति । यथम्भूता तिथि प्रातर्मुहूर्त्तत्रयन्यापिनीम्, चकारात् मूलमधरता व्रतमानधरा मुनीश्वरा, उदय व्यापिनीमपि तिथि गृह्णन्ति । यथा पूर्वमुदयकालन्यापिनी तिथिर्ग्रहीता, चकारात् अस्तकालन्यापिन्या तिथेरपि ग्रहण भविष्यति तथैवात्रापि अवधेयम् । ता पूर्वांश्चा तिथिम् अपिलेपु धर्मेषु कार्येषु गोतमादिगणेश्वरा पूणा चदन्ति ॥

अर्थ—प्रातः कालमें तीन मुहूर्त्त रहनेवाली जिस तिथिकी प्रातःकर सूर्य अस्त होता है, धर्मादि कार्योंमें यह तिथि पूण मानी जाती है, इस प्रकारका कथन व्रत धारण करनेवाले मुनीश्वरोंका है। इस श्लोकमें 'च' शब्द आया है, जिसका अर्थ यह है कि सूर्यास्तपरे पूर्व तीन मुहूर्त्त रहनेवाली तिथि भी वैशिक व्रतोंके लिए ब्राह्म है। तात्पर्य यह है कि इस श्लोकके अनुसार व्रत तिथिका ज्ञान दोनों प्रकारसे ग्रहण किया गया है—उदय और अस्तकाल रहनेवाली तिथिके अनुसार। उदयकालके उपरान्त कम से-कम तीन मुहूर्त्त—५ घटी ३६ एक प्रमाण विधेय तिथि के रहने पर ही व्रत ब्राह्म माना जाता है। इसी प्रकार अस्तवाली तिथिके सूर्योदयके पहले तक रहनेपर भी वैशिक व्रतोंके लिए तिथि ब्राह्म मान ली गयी है।

नियेचन—व्रत ग्रहण और मनोछापनके लिए इस श्लोकमें तिथिका विधान किया गया है। यद्यपि सामान्यतः व्रतके लिए कितनी तिथि ब्राह्म होती है, इसका विचार पहले खूब किया जा चुका है। इस समय व्रत ग्रहण और उछापनके लिए कितनी तिथि ग्रहण करनी चाहिए,

अचार्य विधान बतलाते हैं। व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए दैवसिक और नैशिक व्रतोंने निमित्त पृथक् पृथक् तिथिका विधान बतलाते हैं। प्रथम नियम तो यह है कि सूर्योदय कालके उपरान्त ठाई घण्टे तक व्रतकी विधेय तिथि हो सो व्रतका प्रारम्भ और उद्यापन करना चाहिए किन्तु यह नियम दैवसिक व्रताके लिए ही है, नैशिक व्रताके लिए नहीं। नैशिक व्रतोंका यह है कि सूर्योदयके पूर्व जो तिथि ठाई घण्टे रही हो वही प्राद्य हो सकती है। उदाहरण—भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी बुधवारके प्रातःकाल १०११ घण्टादि है और भाद्रपद चतुर्था मंगलवारको १८११ घण्टादि है। अत्र विचारणीय यह है कि दैवसिक व्रतोंके लिए किस दिन पञ्चमी मानी जायगी और नैशिक व्रतोंके लिए किस दिन। बुधवारके १०११ घण्टादि मान पञ्चमीका है, इस दिन सूर्य पञ्चमीके इस मानसे साथ मेल होता है अतः दैवसिक व्रताके लिए बुधवारकी ही पञ्चमी प्राद्य होगी।

नैशिक व्रतोंके लिए मंगलवारकी पञ्चमी प्राद्य नहीं हो सकती है क्योंकि मंगलवारको उदयके पूर्व पञ्चमी नहीं रहती है, किन्तु सोमवारके उदयके पश्चात् और मंगलवारको उदयके पूर्व ही पञ्चमी रहती है। अतः नैशिक व्रतोंके लिए पञ्चमी सोमवारकी ग्रहण की जायगा। भूलभ्रमसे आचार्योंने उदयमें रहनेवाली छ घटी प्रमाण या इतना अधिक तिथिक दैवसिक और नैशिक दोनों ही प्रकारके व्रतोंके लिए प्राद्य मान लिए हैं। इस प्रकारसे एक ही प्रकारका तिथिमान स्वीकार कर लेनेसे पूर्वापर विरोध नष्ट जाता है तथा तिथि भी व्रतके लिए सार प्रसार प्राद्य मान ही जाती है।

तथा चोक्त पष्ठादशपरि कर्णामृतपुराणे सप्तमस्कन्धे

“यथोक्तविधिना तिथ्युदये व्रतविधिं चरेत्”।

अध्वर्युवर्त्तिमार्त्तण्ड यद्यग्वेदा तिथिर्मन्त्रेत्।

व्रतप्रारम्भेण तस्यामनस्तगुरुशुक्रयुत् ॥

अर्थ—कर्णामृतपुराणके सप्तम स्कन्धमें भी कहा गया है कि पष्ठा

मात्र तिथिका प्रमाण घटके लिपि मानना चाहिये । घटकी तिथिके दिन कही हुई घटविधिसे अनुसार घटका आचरण करना चाहिये ।

जिस दिन सूर्योदयकालमें तिथि पष्टोत्तमाग्र हो अथवा समस्त दिन तिथि रहे, उस दिन वह तिथि अण्डा—मरुला कहलाती है । इस सकला तिथिसे शुभ और शुभके उदय रहते हुए घटकी ग्रहण करनेकी क्रिया करनी चाहिये । तात्पर्य यह है कि घट ग्रहण करने और उद्यापन करनेके समय शुभ और शुभका अन्न रहना उचित नहीं है । इन दोनों ग्रहोंसे उदित रहनेपर ही घटोंका ग्रहण और उद्यापन किया जाता है ।

यिन्नेचन—अपना-अपना गतिस चलनेवाले ग्रह जब सूर्यके निकट पहुँचते हैं, तो श्लोकोशी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, इसीका नाम ग्रहोंका अन्न होना कहलाता है । जब ये ही ग्रह अपनी अपनी गतिसे चलते हुए सूर्यसे दूर निकल जाते हैं, तो श्लोकोशी दृष्टिसे पड़ने लगते हैं, यही ग्रहोंका उदय होना कहलाता है । याम्यमें ग्रह न उदय होते हैं और न अन्न । केवल सूर्यके प्रकाशमें आच्छादित हो जाते हैं तथा सूर्यसे आगे पीछे होनेपर दृश्य होते हैं ।

मंगल, गुरु और शनि सूर्यसे अन्ध गतिवाले हैं, अतः अन्न होनेपर सूर्य ही इनसे आगे निकल जाता है । बुध सूर्यसे तेज गतिवाला है, अतः वह अन्न होनेपर सूर्यसे आगे निकल जाता है । यद्यपि मध्यम रवि, शुक्र और बुध मुख्य हो जाते हैं, फिर भी स्पष्ट रवि और स्पष्ट बुध शीघ्र पदान्तरके बुध आगे पीछे रहते हैं । जब दोनों एकत्रित हो जाते हैं, तो बुध अन्न माना जाता है । शुक्रके पूर्व दिशामें अन्न होनेके बाद ३२ दिनमें पश्चिममें उदय, पश्चिमोदयसे ३२ दिनमें पत्नी, घर होनेमें ३ दिनमें पश्चिममें अन्न, अन्नसे १६ दिनमें पूर्व दिशामें उदय, उदयसे ३ दिनमें माग, मागसे ३२ दिनमें पूरम ही अन्न होता है । शुक्रका पूर्वाम्नमे २ मासमें पश्चिमोदय, उसके बाद ८ मासमें पत्र, पत्रमें २२।३० दिनमें पश्चिममें अन्न, अन्नसे साढ़े सात दिनमें पूर्वदिशामें उदय, उदयसे पौनमासमें माग, मागसे ८ महीनेमें फिर पूर्वमें अन्न होना है ।

मगसका भजनके बाद ४ मासमें उदय, उदयम १० मासमें वक्र, वक्रम २ मासमें मार्ग, मार्गम १० मासमें फिर भजन होता है। बृहस्पतिके भजने १ मासमें उदय, उदयमे सवाचार मासमें वक्र, वक्रम ४ मासमें मार्ग, मार्गमे सवाचार मासमें भजन होता है। शनिके भजनमे सवामासमें उदय, उदयमे भादेसीमे मासमें वक्र, वक्रम भादे चार मासमें मार्ग, मार्गमे भादे मंत्रमासमें फिर भजन होता है। इस प्रकार उदय-भजनकी परिपाटी चलता रहता है। आचार्यने बताया है कि कुछ और गुणके भजन होनेपर उद्यापन और मत्त ग्रहण करना चाह्य है। दशालक्षण, चौकशक्षण, रक्षण, रुद्राणि, षडाली, द्विषाली, मुष्ट-वली आदि मत्ताके ग्रहण कराके शिष्ट यह आवश्यक है कि गुण और गुण उन्नि अवस्थ में रहें। इसका भजन रहनेपर गुण-कृष्य करना पवित्र है।

गुण और गुणके भजन होनेपर प्रतिष्ठा, धरिर् निमान, विधान, विवाह, पञ्चोपधान आदि कार्य भी नहीं किये जाते हैं। गणितमे गुणभजन और गुण भजनका प्रमाण केन्द्रोदाहरण कर निकाला जाता है। इस दातां ग्रहाके भजन होनेपर गुण कृष्य चाह्य माने गए हैं। राव ग्रहोंके भजन कालमें गुण कृष्य सम्भव किये जाते हैं। आरम्भमिति नामक ग्रन्थमे उदयप्रमसूरिने कुछ और गुणके उदय होनेपर भी उनका वाक्यकाल माना है। इस वाक्यकालमें भी गुण कृष्योके करनेका नियम दिया गया है। भजन होनेके पूर्व इनकी बृहस्पत्याका काल भी माना गया है, त्रिष कालमे सभी कृष्य करना चाह्य माना है। “गुरुगुरुयोः समयोऽपि दिशोऽदयेऽस्ते च पाल्ये वायुर्दिक्ये च सप्ताहमवाहृ । अथो पाल्ये वायुर्दिक्ये च सप्ताहमवाहृ न करणीयम्” अर्थात् उदय हो जानेपर भागुरु और गुरुका वाक्यकाल एक सप्ताह माना गया है। इस कारणमें गुण कृष्य करनेका निर्णय किया गया है।

कुछ आचार्योंने गुणका पूर्व दिशामें पाँच दिन तक वाक्यकाल

जीन गुणोद्धानि पाल्य प्रतीत्यां प्राप्या वाक्यकालदानाह देव ।

त्रिणाचैव तानि दिग्देशात्, ५० जीगोऽये तु सप्ताहमाहृ ॥

—आरम्भमिति १० २००

माना है तथा मीन जिन वाक्यकाल स्वीकार किया है। ये दोनों ही काल शुभ कार्योंके लिए त्याज्य हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पूर्वम उदय होनेपर शुक्रका वाक्यकाल तीन दिन और पश्चिममें उदय होनेपर नौ दिन वाक्य काल रहता है। पूर्वमें गुह अस्त होनेपर पन्द्रह दिन वार्धक्य काल और पश्चिममें अस्त होनेपर पाँच दिन वार्धक्यकाल होता है। गुहका भी तीन दिन वाक्यकाल और पाँच दिन वार्धक्य काल होता है। वाक्य और वार्धक्य कालमें शुभ कृत्योंका करना त्याज्य माना है।

ज्यातिपत्रमें प्रत्येक शुभ कार्यके लिए शुभ और शुद्ध काल, चन्द्रगुह और सूर्य गुह ग्रहण की जाती है। इन ग्रहोंके बैठने बिना शुभ कार्यों का करना त्याज्य माना है। चन्द्रगुहिस तिथि, मक्षत्र, योग, करण और चारकी शुद्धि अभिप्रेत है तथा विशेष रूपसे चन्द्र राशिका विचार कर उसके शुभाशुभावके अनुसार कलको ग्रहण करना है। चन्द्र गुहिस प्रत्येक फायमें ली जाती है। तिथ्यादिनी गुहिस लेना तथा उसके बला बलरसका विचार करना एवं सूक्ष्म विचारके लिए मुहूर्त मानके आधार पर शुभाशुभावको ग्रहण करना चन्द्र शुद्धिस अभिप्रेत है। यात्रा, विवाह, उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि समाप्त कार्योंके लिए चन्द्र शुद्धिका विचार करना आवश्यक है।

सूर्य शुद्धि भी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण मासलिक कार्योंमें ग्रहण की गयी है। यद्यपि चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है फिर भी छोटे-बड़े सभी कार्योंमें इसके अनुकूलत्व और प्रतिकूलत्वका विचार नहीं किया गया है। सूर्य-शुद्धिसमें सूर्यकी राशिका शुभाशुभाव तथा चान्द्र-मास और चान्द्रतिथिपर पड़नेवाले सूर्यके प्रभावका विचार किया जाता है।

गुरु और शुक्रकी शुद्धि तो देखी ही जाती है, पर विशेषतः इनके बलावशक्तका विचार किया जाता है। शुक्रकी अपेक्षा गुरुकी शुद्धि अधिक मासलिक कार्योंके लिए ग्रहण की गयी है। जब तक गुरु अनुकूल नहीं होता है तब तक विवाह, प्रतिष्ठा, उपनयन एवं मृत ग्रहण आदि कार्य

सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, अतः व्रतके लिए शुभ और शुक्लके अन्तका विचार करना आवश्यक है ।

प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके व्रतकी व्यवस्था

निये पष्टाशोऽपि व्रतकर्मनरे सादग्मन ,

व्रतदुष्टोद्धये मततमुदये प्रियत यत ।

विहायेदु पूर्णं वननिष्करमिध्वस्तमिमिर,

द्वितीयेदु सर्वं वननिचयामोऽपि नमित ॥

अर्थ—व्रत करनेवाले मर्माभूत धावकको सर्वदा व्रतरी सुविधि के लिए उन्मत्त कालमें रहनेवाली पष्टाश प्रमाण तिथिकी ग्रहण करना चाहिए । अपना किरणोंके समुदायम अन्धकारको दूर करनेवाले पूर्ण चन्द्रमाको छोड़ अर्थात् प्रतिपदा तिथिके दिन तथा द्वितीयाके दिन सूर्योदय कालमें रहनेवाली पष्टाश प्रमाण तिथिकी ही व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए ।

विशेष—वाष्पमघने आचार्योंने पूर्णिमा, प्रतिपदा एवं द्वितीया तिथिमें होनेवाले व्रतकी व्यवस्था करते हुए बताया है कि नमस्त तिथि का पष्टाशमात्र व्रतके लिए प्राप्ति है । इसकी उपपत्ति यहलाने हुए उद्धाने कहा है कि तीस मुहूर्तोंका एक दिन—अहोरात्र होता है । इन तीस मुहूर्तोंमें से पन्द्रह मुहूर्त दिनमें और पन्द्रह मुहूर्त रातमें होते हैं । रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट्ट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिनिन्, रोहण, वन, विजय, मैत्राय, वरुण, अर्यमन् और भाग्य ये मुहूर्त प्रत्येक तिथिमें दिनको रहते हैं ।

रात्रिमें^१ सावित्र, ध्रुव, दात्र, वस, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त,

१—रौद्र श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभट्टोऽपि च ।

दैत्यो वैरोचनश्चान्धा वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥

रोहणो गहनामा च विजयो मैत्राताऽपि च ।

वरुणश्चायमा च स्युमाय पञ्चदशो दिने ॥

२—शविनो ध्रुवश्चक्षुश्च दात्रको वस एव च ।

वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽयमा निधिः ।

सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विश्वोम, योग्य, पुष्पदन्त, मुगधर्ष और अरण्ये पन्द्रह मुहूर्त रहते हैं। प्रत्येक मुहूर्त दोघटी प्रमाण कालतर रहता है। कुछ आचार्य दिनमें पाँच मुहूर्त ही मानते हैं तथा कुछ ■ मुहूर्त। दिनके पन्द्रह मुहूर्तोंमें रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट और दैत्य आदि का गुण और स्वभाव बतलाते हुए कहा गया है कि प्रथम रौद्र मुहूर्त, जो कि उदयकालमें दोघटीतर रहता है, खर और तीक्ष्ण कार्योंके लिए शुभ होता है। इस मुहूर्तमें किसी विलक्षण असाध्य और भयकर कार्यको आरम्भ करना चाहिए। इस मुहूर्तका आदि भाग शुभ, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग निकृष्ट होता है। इस मुहूर्तका स्वभाव उग्र, कार्य करनेमें प्रवीण, माहसा और बचक बताया गया है। दूसरे श्वेत मुहूर्तका आरम्भ सूर्योदयके दो घटी—४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह भी दो घटी तक अपना प्रभाव दिखलाता है। इसका आदि भाग साधारण, शक्तिहीन, पर मागणिक कार्योंके लिए शुभ, नृत्य गायनमें प्रवीण, आमोद प्रमोदको रचिकर समझनेवाला एवं आह्लादकारी होता है। मध्यभाग इस मुहूर्तका शक्तिशाली, कठोर कार्य करनेमें समर्थ, हठ स्वभाववाला, धर्मशील, हठ अभ्यवसायी एवं प्रेमिल स्वभावका होता है। इस भागमें किये गये सभी प्रकारके कार्य सफल होते हैं। अन्तभाग निकृष्ट है।

तीसरा मुहूर्त सूर्योदयके एक घंटा ३६ मिनट पश्चात् आरम्भ होता है। यह भी दो घटी तक रहता है। यह मुहूर्त विशेष रूपसे पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको अपना पूरा प्रभाव दिखलाता है। इसका स्वभाव मृदु, स्नेहशील, कर्तव्यपरायण और धर्मात्मा माना है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदि भाग शुभ, सिद्धिदायक, मंगलकारक एवं कल्याणप्रद होता है। इसमें जिस कार्यका

सिद्धार्थ सिद्धसेनश्च विश्वोमो योग्य एव च ।

पुष्पदन्त मुगधर्षो मुहूर्ताऽन्योऽरुणो मतः ॥

—घण्टा टीका जि० ८ पृ० ३१८—१९.

आरम्भ किया जाता है, यह कार्य मध्यम सफल होता है। तत्पश्चात्, और कार्य करनेमें रुचि विलसित प्राप्त होती है। विभिन्न बाधाएँ उत्पन्न नहीं होता।

तीसरे मुहूर्तका मध्यभाग मध्यम, विचारक, अनुरागी और परिश्रम्य भावनेवाला होता है। इसका स्वभाव उत्तमनीति माना है। यद्यपि इसमें आरम्भ किये जानेवाले कार्योंमें भाग्य प्रचारका बाधाएँ उत्पन्न होता है, ऐसा प्रभाव होता है कि कार्य अपूर्ण ही रह जायगा, फिर भी काम अन्ततोगत्या पूरा हो ही जाता है। इस भागका मध्यम अध्ययन, अध्यापन एवं आराधनके लिए अधिक है। व्यापार आरम्भ करनेके लिए यह भाग श्रेष्ठ माना गया है। ओ स्पष्टि मलितसे तीसरे मुहूर्तके मध्यभागका निष्काटकर उम्मी समयमें विचारम्भ या अक्षरारम्भ करते हैं, ये विद्वान् बन जाते हैं। या तो इस समय मुहूर्तमें सरस्वतीका निवास रहता है, पर विनाय स्वयं इस भागमें सरस्वतीका निवास है। तातरे मुहूर्तका अन्तिम भाग व्यापार, अध्ययन, शिक्षण आदि कार्योंके लिए प्रशस्त माना है। इस भागमें किये जानेवाले कार्यें बगैर श्रमपूर्व होने हैं। इस भागका स्वभाव मित्रमत्त, लोकप्रवृत्त और लोकप्रिय माना गया है। इसका कारण व्यापार और वदे-वदे व्यवसायोंके प्रारम्भ करनेके लिए इसे प्रशस्त बनाया है। यह मुहूर्त गिरसक भी है, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, कृषारम्भ, विनायारम्भ, स्तोत्रपाठ आदि कार्य इस मुहूर्तमें विधेय माने गये हैं।

चौथा सारभट नामका मुहूर्त सूर्योदयके दो घण्टा ३६ मिनटके पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका समय भी दो घण्टा अर्थात् ४८ मिनट है। इस मुहूर्तकी विशेषता यह है कि प्रारम्भमय यह प्रमादी, उत्तरकालम धर्मात्मा, विचारक और स्नेहा होता है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदिभाग शक्तिशाली, अध्ययनादी, कार्यकुशल और लोकप्रिय होता है। इस भागमें कार्य करनेपर कार्य सफल होता है, किन्तु अध्ययनाय और परिश्रमादी आवश्यकता पड़ती

है। पूजा पाठ, धार्मिक अनुष्ठान एवं शान्ति पौष्टिक कार्योंके लिए यह प्राह्य माना गया है। इसमें क्रिये जाने पर उक्त कार्य प्रायः सफल होते हैं। यद्यपि कार्यके अन्त होने पर विघ्न साधारण आती हुई दिख लाइ पड़ती है, परन्तु अच्यवसाय द्वारा कार्य सिद्ध होनेमें विलम्ब नहीं लगता है।

चौथे मुहूर्तका द्वितीय भाग भी आनन्द सम्पन्न है। इसके ५ पलों में अमृत रहता है। जो व्यक्ति इसके अमृत भागमें कार्य करता है या अपने अतिमिक उत्थानमें भागे पड़ता है, वह निश्चय ही सफलता प्राप्त करता है। इसका तीसरा भाग, जिसे अन्त भाग कहा जाता है, साधारण है। इसमें कार्य करनेपर कार्यमें विशेष सफलता नहीं मिलती है। अधिक परिश्रम करनेपर भी फल उत्पन्न मिलता है। जो व्यक्ति इस भागमें मात्रात्मक कार्य आरम्भ करते हैं, उनके वे कार्य प्रायः अमफल ही रहते हैं।

पाँचवाँ वैद्य नामका मुहूर्त है जो कि सूर्योदयके तीन घण्टा १२ मिनट पश्चात् प्रारम्भ होता है। यह शक्तिशाली, प्रमादी, क्रूर स्वभाव वाला और मित्रालु होता है। इसने आदि भागमें कार्य आरम्भ करनेपर विलम्बमें होता है, मध्य भागमें कार्यमें नाना प्रकारके विघ्न आते हैं। चञ्चलता आदि रहता है तथा उग्र प्रकृतिने कारण शगुन सप्तत तथा अनेक प्रकारसे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अन्त भाग अशुभ होते हुए भी शुभ फलदायक है। इसमें श्रमसाध्य कार्योंको प्रारम्भ करना हितकारी माना गया है। जो व्यक्ति घर और तीक्ष्ण कार्योंको अथवा उपयोगी कर्माओंके कार्योंको आरम्भ करता है, उसे इन कार्योंमें बहुत सफलता मिलती है।

छठवाँ वैरोधन मुहूर्त सूर्योदयके चार घण्टेके उपरान्त आरम्भ होता है। इस मुहूर्तका स्वभाव अभिमानी, महत्वाकांक्षी और प्रगतिशील माना गया है। इसका आदिभाग सिद्धिदायक, मध्यभाग हानिप्रद और अन्त भाग सफलतादायक होता है। इस मुहूर्तमें दान, अध्ययन, पूजा-

घाठके काय विशेष रूपसे सफल होते हैं। जो व्यक्ति यकाग्रचित्तसे इस मुहूर्तमें भगवान्‌का भजन, पूजन, स्मरण और गुणानुवाद करता है, वह अपने लौकिक और पारलौकिक सभी कष्टोंमें सफलता प्राप्त करता है। इस मुहूर्तका उपयोग प्रधान रूपसे धार्मिक कृत्योंमें करना चाहिए।

सातवाँ मुहूर्त वैश्वदेव नामका है, इसका प्रारम्भ सूर्योदयके चार घण्टा ४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह मुहूर्त विशेष शुभ माना जाता है, परन्तु कार्य करनेमें सफलता सूचक नहीं है। इस मुहूर्तका अग्निभाग निरुप, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग श्रेष्ठ होता है। आठवाँ अभिजित् नामका मुहूर्त है। यह सर्वमिद्विदायक माना गया है। इसका प्रारम्भ सूर्योदयके ५ घण्टा ३९ मिनटके उपरान्त माना जाता है। परन्तु गणितसे इसका साधन निम्न प्रकारसे किया जाता है—

रविवारको २० अंगुल हम्पी सींगी छत्रका, सोमवारको १६ अंगुल हम्पी छत्रकी, मंगलका १५ अंगुल हम्पी, बुधवारको १४ अंगुल हम्पी, गुरुवारको १३ अंगुल हम्पी, शुक्र और शनिवारको १२ अंगुल हम्पी चिकनी तथा सीधी छत्रकीनी पृष्ठीमें खड़ी करे, जिस समय उस छत्रकी की छाया एकद्वारे मूलमें लगे उसी समय अभिजित् मुहूर्तका प्रारम्भ होता है। इसका आधा भाग अर्थात् एक घटी प्रमाण काल समस्त कार्योंमें अमृतपूर्व सफलता देनेवाला होता है। अभिजित् रविवार, सोमवार आदिको भिन्न-भिन्न समयमें पड़ता है। इसका काय-साधनके लिए विशेष उपयोग है। प्रायः अभिजित् हीन दोषहरको आता है, यही साक्षात्कार करनेका समय है। आत्मचिन्तन करनेके लिए अभिजित् मुहूर्त का विधान ज्योतिष-ग्रन्थोंमें अधिक उपलब्ध होता है।

नौवाँ मुहूर्त रोहण नामका है, इसका स्वभाव शम्भीर, उदासीन और विचारक है। यह समस्त तिथिका शामक माना गया है। यद्यपि पौर्णमासी दीव्य मुहूर्त तिथिका अनुशामक होता है, परन्तु कुछ आचार्योंने इसी मुहूर्तको तिथिका प्रधान अंग माना है। इस मुहूर्तमें कार्य करने

पर कार्य सफल होता है। विघ्न पाधाएँ भी नाना प्रकार की आती हैं, फिर भी किसी प्रकारसे यह सफलता दिलानेवाला होता है। इसका आदिभाग मध्यम, मध्य भाग श्रेष्ठ और अन्तिम भाग निकृष्ट होता है। दम्पण वलनामक मुहूर्त है, यह प्रकृतिसे निवृद्धि तथा सहयोगसं बुद्धिमान् माना जाता है। इसका आदि भाग श्रेष्ठ, मध्यभाग साधारण और अन्त भाग उत्तम होता है। ग्यारहवाँ विजय नामक मुहूर्त है, यह समस्त कार्योंमें अपने नामके अनुसार विजय देता है। बारहवाँ नैर्ऋत नामका मुहूर्त है, जो सभी कार्योंके लिए साधारण होता है। तेरहवाँ वरुण नामका मुहूर्त है, जिसमें कार्य करनेसे धन धन्य तथा मानसिक परेशाना होती है। चौदहवाँ अयमन् नामक मुहूर्त है, यह सिद्धिदायक होता है तथा पन्द्रहवाँ भाग्य नामक मुहूर्त है, जिसका अर्थ भाग शुभ और अवभाग अनुभ माना गया है।

इस प्रकार दिनके पन्द्रह मुहूर्तोंमेंसे पष्ठाश प्रभाव तिथिम पाँच मुहूर्त आते हैं। प्रातः कालमें रौद्र, श्वेत, मित्र, सारभट और दैत्य ये पाँच मुहूर्त मध्यम मानसे सूर्यादयसे दस घड़ी समय तक रहते हैं। दैत्य मुहूर्त तिथिना शासक होता है, तथा पाँचों मुहूर्त दिनके तृतीयाश भाग में भुक्त होते हैं, अतः कम से कम तिथिका मान दस घड़ी या पष्ठाशमात्र मानना आवश्यक है, क्योंकि शासक मुहूर्तके आये बिना तिथि अपना प्रभाव ही नहीं दिखाए सकती है। शासक मुहूर्त पष्ठाश प्रमाण तिथिके मानने पर ही आता है, अतः दस घड़ीसे न्यून तिथिका प्रमाण व्रतके लिए ग्राह्य नहीं किया जा सकता। व्रतविधिमें जाप, सामायिक, पूजापाठ, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ व्रतकी तिथिम दैत्यमुहूर्त तक हानी चाहिये। क्योंकि समस्त तिथि दैत्य मुहूर्तके अनुसार ही अपना कार्य करती हैं। जिस व्रत तिथिम पाँचवाँ मुहूर्त नहीं पड़ता है, वह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती। आप्तार्य महाराजने इसी कारण तिथिके पष्ठाशके ग्रहण करनेपर जोर दिया है।

तिथि-हास होने पर तृतीया व्रतका विधान

तिथिर्नष्टकालतोऽथ तृतीया व्रतमुच्यते—

यणाधमेतराणां च युक्तं तृतीयाद्वासकम् ।

इत्यनन्तव्रताख्येति कृष्णसेनेन चोदितम् ॥

अर्थ—तिथि हास होनेपर अथवा तिथिका घटात्मक मान कम होनेपर तृतीया व्रतका नियम कहते हैं—

यणाधमधर्मको न मानकराए—अमण संमृत्तिके प्रतिष्ठापक तृतीया तिथिकी हानि होने पर द्वितीयाको व्रत करनेका विधान करते हैं। अनन्त व्रतका यगन करते हुए कृष्णमेनने इसका यगन किया है। तात्पर्य यह है कि मूलमघके आधायोके मतमें तृतीया तिथिके हास होनेपर अथवा तृतीयाका घटादि प्रमाण छ घटीम अल्प होने पर द्वितीयाको ही व्रत कर लेना चाहिये।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रतिपदा तिथि पुराह्णव्यापिनी व्रतके लिए ग्रहण की जाती है। द्वितीया तिथि भी शुक्लपक्षमें पुराह्ण व्यापिनी और कृष्णपक्षमें सर्वदिन व्यापिनी ही गयी है। “पूर्यद्युरसती प्रातः परोक्षस्त्रिमुहूर्त्तमा” अर्थात् जा द्वितीया पहले दिन न होकर अगले दिन वर्तमान है। तथा उदयकालमें कम-से-कम सात मुहूर्त्त—१ घटी ३६ पल है, वही व्रतके लिए ग्रहण करने योग्य है। द्वितीया तिथिको व्रतके लिए जैनाचार्योंने ९ घटी प्रमाण माना है। जो तिथि इस प्रमाणसे न्यून होगी, वह व्रतके लिए प्राक् नहीं हो सकती है। सर्वदिन व्यापिनी तिथिकी परिभाषा भी वही की गयी है कि समस्त तिथिका पक्षोत्तर प्रमाण जो तिथि उदयकालमें रहे, वह सर्वदिनव्यापिनी कहलाती है।

तृतीया तिथिको वैदिकधर्ममें व्रतके लिए पराधिन ग्रहण किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि एक घटी प्रमाण या इससे अल्प

१—एरादस्यग्नी पत्नी पौणमासी चतुदशी ।

अमावास्या तृतीया च ता उपोष्या पराधिता ॥

—नि० वि० पृ० २३

रहने पर भी तृतीया तिथि परान्वित हो ही जाती है, अतः व्रत काल
 अथवा घटी तिथिके रहने पर भी व्रतके लिए उमरका ग्रहण किया गया
 है। इस प्रकार यदि धर्ममें अथर्व तिथिको व्रतके लिए हीनाधिक
 मानके रूपमें ग्रहण नहीं किया गया है। अथर्व तिथिका भाग व्रत
 कालके लिए अलग अलग बन गया है। आचार्योंने इर्मा सिद्धान्तका
 रण्डन किया है और सर्वमम्मनिस व्रततिथिका मान छ घटी अथवा
 समस्त तिथिको पट्टाश माना है। आचार्यने उपयुक्त श्लोकोंमें प्रतिपदा,
 द्वितीया और तृतीया तिथिके नियम निर्धारित करते हुए यहाँ बताया है
 कि जो तिथि छ घटी प्रमाण नहीं है, वह चाहे पूर्वविद्ध हो, चाहे पर-
 विद्ध, व्रतके लिए ग्रहण नहीं की जा सकती है। निगवसिन्धुमें अथर्व
 तिथिकी जो अलग अलग व्यवस्था बतलाई है, वह युक्तिगता नहीं है।
 सामान्य रूपसे अथर्व व्रतके लिए छ घटी या समस्त तिथिका पट्टाश
 ग्रहण करना चाहिए।

व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा

कवलचान्द्रायणकी परिभाषा

व्रतानि कति भेदानि, इति चेदुच्यते—

सायधीनि, निरवधीनि, दैवसिक्कानि, नैशिकानि, मासावधि-
 कानि, घात्मग्वानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति
 नवधा भवन्ति । निरवधिव्रतानि कवलचान्द्रायणतपोऽञ्जलिजि-
 नमुष्पायलोपनमुक्तायलीङ्गिकायल्येककवलवृद्ध्यादिव्रतानि ।
 अमायास्याया प्रोषध पुन शुक्लपक्षे तु तन्न्यूनतप एककवलं
 यावत् एव निरवधिव्रतचान्द्रायणाख्य व्रत भवति, न तिथ्या-
 दिको विधिर्भवति ।

अर्थ—व्रत कितने प्रकारके होते हैं ? आचार्य इस प्रश्नका उत्तर
 देते हैं। व्रतके नौ भेद हैं—सायधि, निरवधि, दैवसिक्क, नैशिक,
 मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ । निरवधि व्रतोंमें

कषलचा द्रायण, तपोऽअसि, निनमुसायलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, ण्कावला, मेरुपत्ति आदि । अमावस्याका प्रोषधोपवास कर कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्विताया आदि तिथियोंमें एक-एक कवलकी वृद्धि करते हुए पूर्णिमाको १५ ग्रहस आहार ग्रहण करे । पश्चात् कृष्णपक्षकी प्रतिपदाने एक एक कवल कम करते हुए धनुदशीको षष्ठ ग्रहस आहार ग्रहण करे । अमाशरशाको पारणा करे । इसमें तिथिही तिथि नष्ट की जाती है । षष्ठाथ तिथिके पढ़ने पढ़नेपर दिनमल्याकी अवधिना इसमें विचार नहीं किया जाता है ।

चित्रेचन—जिन व्रताके आरम्भ और समाप्त करनेकी तिथि निश्चित रहती है तथा निमग्न्या भी नियमित रहती है, वे व्रत नावधि व्रत कहलाते हैं । वसन्तक्षण, अष्टाद्विषा, रसत्रय, पाक्षकारण आदि व्रत सावधि व्रत माने जाते हैं । क्योंकि इन व्रताके आरम्भ और अन्तकी तिथियाँ निश्चित हैं तथा दिनमल्या भी निर्धारित है । जिन व्रताकी दिनमल्या निर्धारित रहती है किन्तु आरम्भ और समाप्तिकी तिथि निश्चित नहीं है, वे व्रत निरवधिव्रत कहलाते हैं । जिन व्रतोंके कृत्याना महत्त्व दिनके लिए है, वे नैवमिक व्रत कहलाते हैं, जैसे पुष्पाञ्जलि, रसत्रय, अष्टाद्विषा, अक्षयतृतीया, रोहिणी आदि ।

जिन व्रताका महत्त्व रात्रिकी क्रियाओं और विधानोंके सम्बन्धके साथ रहता है, वे व्रत नैशिक व्रत कहलाते हैं । चन्दनपट्टी, आकाश पञ्चमा आदि व्रत नैशिक माने गये हैं । महीनोंकी अवधि रखकर जो व्रत सम्पन्न किये जाते हैं, वे सामावधिक व्रत कहलाते हैं । सवत्सर पर्यन्त जो व्रत किये जाते हैं, वे सावन्तरिक व्रत हैं । किसी पक्षकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे काम्य तथा विना किसी पक्ष प्राप्तिके जो मन किये जाते हैं, वे अकाम्य कहलाते हैं । उत्तम पक्षकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे उत्तमार्थ व्रत हैं । इस प्रकार नौ तरहके व्रत बतलाये गये हैं । इन व्रतोंके करनेसे उत्तम भोगोपभोगकी प्राप्ति होती है तथा कर्मोंकी निर्नरा होनेसे कर्मभार भी हलका होता है ।

निरवधि व्रतोंमें कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, त्रिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली बताये हैं। कवलचान्द्रायण व्रतका प्रारम्भ किसी भी मासमें किया जा सकता है, यह अमावस्यास आरम्भ होकर अगले महीनेकी चतुर्दशीको समाप्त होता है तथा अमावस्याको पारणा की जाती है। प्रथम अमावस्याको प्रोषधोपवास कर प्रतिपदाको एक प्रास आहार, द्वितीयाको दो प्रास, तृतीयाको तीन प्रास, चतुर्थीको चार प्रास, पञ्चमीको पाँच प्रास, षष्ठीको छ प्रास, सप्तमीको सात प्रास, अष्टमीको आठ प्रास, नवमीको नौ प्रास, दशमीको दस प्रास, एकादशीको ग्यारह प्रास, द्वादशीको बारह प्रास, त्रयोदशीको तेरह प्रास, चतुर्दशीको चौदह प्रास और पूर्णिमाको पन्द्रह प्रास, प्रतिपदाको पुन चौदह प्रास, द्वितीयाको तेरह प्रास, तृतीयाको बारह प्रास, चतुर्थीको ग्यारह प्रास, पञ्चमीको दस प्रास, षष्ठीको नौ प्रास, सप्तमीको आठ प्रास, अष्टमीको सात प्रास, नवमीको छ प्रास, दशमीको पाँच प्रास, एकादशीको चार प्रास, द्वादशीको तीन प्रास, त्रयोदशीको दो प्रास और चतुर्दशीको एक प्रास आहार लेना चाहिए। अमावस्याके अनन्तर जिस प्रकार चन्द्रकलाभाकी वृद्धि होती है, आहारके प्रासोंकी भी वृद्धि होती चली जाती है तथा चन्द्रकलाओंके घटनेपर प्राससंख्या भी घटती जाती है। इस व्रतका नाम कवलचान्द्रायण इसीलिए पड़ा है कि चन्द्रमाकी कलाभाकी वृद्धि और हानिके साथ भोजनके पद्योंकी हानि और वृद्धि होती है।

त्रिनमुखावलोकन व्रत भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक किया जाता है। इस व्रतमें सबसे पहले श्रीजिनेन्द्रका दर्शन करना चाहिए, अन्य किसी व्यक्तिके मुँह नहीं देखना चाहिए। प्रतिपदाको प्रोषधोपवास कर, द्वितीयाको पारणा, तृतीयाको प्रोषधोपवास कर चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको प्रोषधोपवास कर षष्ठीको पारणा, सप्तमीको प्रोषधोपवास कर अष्टमीको पारणा, नवमीको प्रोषधोपवास कर दशमीको पारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार एक दिन उपवास,

भगले दिन पारणा करते हुए भाद्रपद मासको बिताना चाहिए। पारणा के दिन गृहशान करना चाहिए। भोजनमें मांस मात, या मूष अधया छाउ लेना चाहिए। वस्तुओंकी सहाय भी भोजनके लिए निर्धारित कर लेनी चाहिए। यह व्रत कवलध्यान्द्रायणके समान भी किया जा सकता है। इसमें केवल विशेषता इतनी ही है कि प्रातः त्रिगुणवद्ध भजनांकन करना चाहिए। रातका अधिष्ठास मात जागते हुए धर्मध्यानरूपक बिताना चाहिए।

मुक्तावता व्रत दो प्रकारका होता है—लघु और बृहत्। लघु व्रतमें बीस एक व्रतवर्ष भी-नौ उपवास करन पड़त है। पहला उपवास भाद्र पद शुक्ल मसमी को, दूसरा आश्विन कृष्ण पक्षी को, तीसरा आश्विन कृष्ण त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ल पञ्चादशीको, पाँचवाँ कार्तिक कृष्ण द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ल तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ल पञ्चादशीको, आठवाँ मागशीर्ष कृष्ण पञ्चादशीको और नौवाँ मागशीर्ष शुक्ल तृतीयाको करना चाहिए। मुक्तावली व्रतमें मङ्गल्य महित भणु व्रताका पाठन करन चाहिए। रातमें उपवासके दिन जागरणकर धर्मो जन करना चाहिए। “ॐ ह्रीं धृममजिनाय नमः” इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

बृहत् मुक्तावली व्रत ३४ दिनोंका होता है। इस व्रतमें प्रथम एक उपवास कर पारणा, पुनः दो उपवासके पश्चात् पारणा, तान उपवासके पश्चात् पारणा, चार उपवासके पश्चात् पारणा तथा पाँच उपवासके पश्चात् पारणा करनी चाहिए। अब चार उपवासके पश्चात् एक पारणा तीन उपवासके पश्चात् पारणा, दो उपवासके पश्चात् पारणा पञ्च एक उपवासके पश्चात् पारणा करनी होता है। इस प्रकार कुल २० दिन उपवास तथा १ दिन पारणाएँ; इस प्रकार कुल ३४ दिनों तक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें लगातार दो, तान, चार और पाँच उपवास करने पड़ते हैं, दिन धर्मध्यानरूपक बिताने पड़ते हैं तथा रातका जागरण भक्त चिन्तन करते हुए व्रतकी क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इस व्रताका फल

विशेष बताया गया है। इस प्रकार निरग्रहि व्रतोंका अपने समयपर पालन करना चाहिए, सभी आत्मोत्थान हो सकता है। वृहद् मुक्तावली-में "ॐ ह्रा णमो अरुहताण ॐ ह्रा णमो सिद्धाण ॐ ह्रा णमो आइरियाण ॐ ह्रा णमो उग्रज्जायाण ॐ ह्रा णमो लोण सव्य-साहूण' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

वृहद् मुक्तावली और लघुमुक्तावलि व्रतके मध्यमें एक मध्यम मुक्तावलि व्रत भी होता है। यह ६९ दिनामें पूर्ण होता है, इसमें ४९ उपवास और १३ पारणार्थ होती हैं। मध्यममुक्तावली व्रतमें भी वृहद्-मुक्तावली व्रतके मन्त्रका जाप करना चाहिए। पारणार्थके दिन तीनों ही प्रकारके मुक्तावली व्रतमें भात ही लेना चाहिए।

तपोऽञ्जलि व्रतका लक्षण

विनाम तपोऽञ्जलिर्व्रतम्? द्वादशमासेषु निशिजलपान न कर्त्तव्यमुपवासाद्यनुविंशतय कार्या, अष्टम्या चतुर्दश्या नैव नियम अष्टम्यामेव चतुर्दश्यामेवेति ॥

अर्थ—तपोऽञ्जलि व्रतकी क्या विधि है? कबसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि बारह महीनों तक अर्थात् एक वर्ष पर्यन्त रातको पानी नहीं पाना और एक वर्षभर खीचीम उपवास करना तपोऽञ्जलि व्रत है। उपवास करनेका नियम अष्टमी और चतुर्दशीको ही नहीं है, प्रत्येक महीनेमें दो उपवास कभी भी किये जा सकते हैं।

नियेचन—आचार्यने तपोऽञ्जलि व्रतका अर्थ यह किया है कि रातको जल नहीं पीना, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, धर्मध्यान पूर्वक घर्षको बिनाना। यह व्रत श्रावण मासकी कृष्णा प्रतिपदासे किया जाता है। इसका प्रमाण एक वर्ष है। व्रत करनेवाला दि० जैन मुनि या दि० जैन प्रतिमाके समक्ष बैठकर व्रतकी विधिपूर्वक ग्रहण करता है। दो घटी सूर्य अस्त होनेके पूर्वसे लेकर दो घटी सूर्यादयके बाद तक जलपानका त्याग करता है। जलपानका अर्थ यहाँ हल्का भोजन नहीं है बल्कि जल पीने

का त्याग करना अभिप्रेत है। इस व्रतका धारी श्रावक रातको जल तो पीता ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्यका भी पालन करता है। यद्यपि कहीं कहीं स्वदारमन्तोप व्रत रखनेका विधान किया है, पर उचित तो यही प्रतीत होता है कि एक वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर आत्मिक शक्तिका विकास किया जाय। ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शरीर और मन दोनों स्वस्थ होते हैं।

वषा ऋतुसे व्रतारम्भ करनेका अभिप्राय भी यही है कि हम ऋतुमें पेटकी अग्नि मन्द हो जाती है, अतः ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शक्तिका विकास होता है। ब्रह्मचर्यसे अमाशमें वषा ऋतुमें नानाप्रकारके रोग हो जाते हैं, जिससे मनुष्य आत्मरुद्धराशने वचिन हो जाता है। इस ऋतुमें रातको जल न पीना भी बहुत लाभप्रद है। नानाप्रकारके सूक्ष्म और बादर जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति हम ऋतुमें होती है, जिससे रातमें पीनेवाले जलके साथ वे पेटमें चले जाते हैं। भयंकर व्याधियाँ भी वर्षा ऋतुकी रातमें जल पीनेसे हो जाती हैं। तपोऽभ्रलि व्रतमें प्रत्येक मासमें दो उपवास स्वेच्छामे किसी भी तिथिको करने चाहिए।

प्रत्येक महीनेकी शुक्लपक्षकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका नियम इस व्रतके लिए बताया गया है, परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यह व्रत इन दोनों दिनोंमें होना ही चाहिए। प्रत्येक पक्षमें एक उपवास करना आवश्यक है, एक ही पक्षमें दो उपवास नहीं करने चाहिए। जो छाग अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना चाहते हैं, उनको भी इस व्रतके लिए कृष्णपक्षमें अष्टमीका और शुक्लपक्षमें चतुर्दशीका अथवा शुक्लपक्षमें अष्टमीका और कृष्णपक्षमें चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। लगातार एक ही पक्षमें दो उपवास करनेका निषेध है। कोई भी व्यक्ति एक ही पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास नहीं कर सकता है। उपवासके लिए जिस प्रकार पक्षका पृथक् होना आवश्यक है, उसी प्रकार तिथिका भी। एक महीनेमें उपवासकी तिथियाँ एक नहीं हो सकती। जैसे कोई व्यक्ति कृष्ण पक्षकी अष्टमीका उपवास करे, तो पुनः शुक्लपक्षमें वह

पञ्चमीका उपवास नहीं कर सकता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमीके उपवासके पश्चात् शुक्लपक्षमें उसे तिथि-परिवर्तन करना ही पड़ेगा। अतः शुक्ल-पक्षमें पञ्चमीको छोड़ किसी भी अन्य तिथिमें उपवास कर सकता है। इस व्रतमें प्रतिदिन 'ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः' मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

जिनमुखावलोकन व्रतकी विधि

किं नाम जिनमुखावलोकनं व्रतम् ? की विधि ? जिनमुखा-दर्शनानन्तरमाहारो यस्मिन् तज्जिनमुखावलोकनं नामैतत् निर-यधि व्रतम्। इदं व्रतं भाद्रपदमासे करणीयम्, प्रोषधोपवासा-नन्तर पारणा पुनः प्रोषधोपवास, एवमेव प्रकारेण मासान्त-पर्यन्तमिति।

अर्थ—जिनमुखावलोकन व्रत किसे कहते हैं ? उसकी विधि क्या है ? आश्वयुज उत्तर देते हैं कि प्रातः काल जिनमुखा देखनेके अनन्तर आहार ग्रहण करना जिनमुखावलोकन व्रत है। यह निरयधि व्रत होता है। यह व्रत भाद्रपद मासमें किया जाता है। प्रथम प्रोषधोपवास, अनन्तर पारणा, पुनः प्रोषधोपवास पश्चात् पारणा, इसी प्रकार मासान्त तक उपवास और पारणा करते रहना चाहिए।

टिप्पण—जिनमुखावलोकन व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रच-लित हैं। प्रथम मान्यता इस एक वर्ष पर्यन्त करनेकी है और दूसरी मान्यता एक मासतक करनेकी। प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत भाद्रपद मासमें आरम्भ होकर आषाढ मासमें पूरा होता है और द्वितीय मान्यताके अनुसार भाद्रपद मासकी कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होकर इस मासकी पूर्णिमाको समाप्त हो जाता है। एक वर्षतक करनेका विधान करनेवालोंके मतसे वर्षमें कुल ३६ उपवास और एक मासका विधान माननेवालोंके मतसे एक मासमें १५ उपवास करने चाहिए।

प्रथम मान्यता बतलाती है कि भाद्रपद मासकी प्रतिपदाको पहला

उपवास करना चाहिए। पश्चात् इस मासमें किन्हीं भी दो तिथियोंको दो उपवास करने चाहिए। परन्तु इस बातका ध्यान गढ़ा रचना होगा कि प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें दो उपवास और शुक्लपक्षमें एक उपवास करना पड़ता है। इस मतके लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं की गयी है। यह किसी भी तिथिमें सम्पन्न किया जा सकता है। प्रथम मान्यताके अनुसार उपवासके दिन रातभर जगरण करते हुए प्रातःकाल धीमे-से प्रभुके मुखका भवलोकन करना चाहिए। रातको 'ॐ अर्हद्भ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। जिस दिनों उपवास नहीं करना है, उन दिनों भी उपयुक्त मन्त्रका एक जाप आवश्यक करना चाहिए। उपवासके दिन पञ्चांगु मूर्तोंका पालन करना, विज्ञाप रूपसे महाचर्प धारण करना तथा पूजन-सामागिक करना आवश्यक है। जिस समय जिनमुखाव लोकन किया जाता है, उस समय मत करनेवाला भगवान्के समक्ष दोनों घुटने धृष्टीपर टेककर घुटनोंके बीच बैठ जाता है अथवा सुगामन लगाकर बैठता है। रातको भगवान्के समक्ष बैठते हुए निम्न मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिए।

‘त्रैलोक्यवशम्नाय केवलमानप्राप्ताय धीमर्हत्परमं प्रति नमः’, ‘सत्कारपद्मिधमणयिनाशनाय अमीष्टफलप्रदानाय धरणेन्द्रपणमण्डलमण्डिताय धीपार्थनायम्यामिने नमः’; ‘ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं असि वा उ सा नमः सर्वसिद्धिं पुष्टं पुष्टं स्यादा ।’ इन तीनों मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए अन्तिम मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए । शोषशोषवामके दिन भा अन्तिम मन्त्रका सातों मन्त्रप्राप्ति में जाप करना आवश्यक है । उपवामके दूसरे दिन पारणा करते समय मोग्य वस्तुआकी सटपा निर्धारित कर लेनी चाहिए ।

दूसरी मान्यताके अनुसार भी उपवासके दिन 'ॐ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रं असि आ उ मा नमः सयसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रका तानों मन्त्र्याभोंमें जाप करना चाहिए। अन्य दिनोंमें दिनमें एकबार इस मन्त्रका जाप किया जाता है। जिने-द्रुमभवान्के श्वांते भनन्तर

अन्य कार्योंका प्रारम्भ करना चाहिए । जिन मुन्नावलीकेन व्रत निरवधि कहलाता है, क्योंकि दोनों ही मान्यताओंमें इस व्रतके लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की गयी है । आचार्यने यहाँपर दूसरी मान्यताको प्रधानता दी है ।

मुक्तावली व्रतकी विधि

का नाम मुक्तावली ? कथं चेय क्रियते सज्जनोत्तमैः ? मुक्तावल्यामेक ठो त्रयश्चत्वार पञ्चोपवासा, पश्चात् चत्वार त्रयो द्वायेक उपवासा भवन्ति । अस्य व्रतस्योपवासा पञ्च-विंशतिः पारणा नवदिनानि । इति चतुरविंशत् दिनानि । एतदपि निग्यधि ।

अर्थ—मुक्तावली व्रत किस कहते हैं ? यह सज्जन पुरषोंके द्वारा कैसे किया जाता है ? आचार्य कहते हैं कि मुक्तावली व्रतमें पहले एक उपवास, फिर दो उपवास, पश्चात् तीन उपवास, चार उपवास, अनन्तर पाँच उपवास किये जाते हैं । पाँच उपवासके पश्चात् चार उपवास, तीन उपवास, दो उपवास और एक उपवास किये जाते हैं । इस प्रकार व्रतके मध्यमें नौ बार पारणा और २५ दिन व्रत किया जाता है । इस व्रतकी गिनती भी निरवधि व्रतोंमें है ।

त्रिधेयन—मुक्तावली व्रतका अर्थ है मोतिशकी लकी, जो व्रत मोतियोंकी लकीके समान हो, वही मुक्तावली है । मुक्तावली व्रतमें एक उपवाससे प्रारम्भ कर पाँच उपवास तक किये जाते हैं, पश्चात् पाँचपरसे घटते घटते एक उपवासपर आ जाते हैं । इस प्रकार यह व्रत गोल मालाके समान बन जाता है । २५ दिन उपवास करनेपर केवल नौ दिन पारणा करनी पड़ती है । इस व्रतके दिनोंमें णमोकार मन्त्रका तीन बार जाप करना चाहिए । व्रतके दिनोंमें कषाय और विरुधाओंका त्याग करना चाहिए । इस व्रतके विधि-भूषक धारण करनेसे सामारिक उत्तम भोगोंको भोगनेके उपरान्त मोक्षरश्मीकी प्राप्ति होती है ।

द्विकावली मत-विधि

द्विकावल्या द्विकातरेणैकाशानोपवामा, चतुपञ्चाशत् कार्या, न तिथ्यादिनियमः । मतान्तरेण द्विकावल्या प्रत्येक मासे कृष्णपक्षे चतुर्थी पञ्चम्यो, अष्टमी-नवम्यो, चतुर्दशमा पक्ष्ययो उपवासा कार्या । शुक्लपक्षे तु प्रतिपदा द्वितीययो, पञ्चमी षष्ठ्यो, अष्टमी नवम्यो, चतुर्दशी-पूर्णिमयो उपवासा कार्या । एव प्रकारेण चतुरशीति पारणादियसानि भवन्ति ।

अर्थ—द्विकावली मतमें दो उपवासने अनन्तर पारणा की जाती है । हममें कुल ५४ उपवास होते हैं और ५४ दिन का पारणा करनी पड़ती है । हममें तिथि आदिका कोई नियम नहीं है । मतान्तरस द्विकावली मतके प्रत्येक महानेके कृष्णपक्षमें चतुर्थी पञ्चमा, अष्टमी नवमी, चतुर्दशी पमावासा और शुक्लपक्षमें प्रतिपदा द्वितीया, पञ्चमी षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए । हम प्रकार प्रत्येक महानेमें ७ उपवास तथा ७ ण्काशन करने चाहिए । वर्षमें हम प्रकार ८४ उपवास और ८४ पारणाएँ होती हैं ।

२ विधि दुकावली करतका भी जिन भागी ताम ।

पला सात ॥ मास ॥ करिय मुनि तिथ नाम ॥

पपि श्वेत थमी मत लीनै, पडिवा दोयज बुद्धि कीज ।

तुनि पौर्ण पञ्चमी जाणौ, आठे नवमा छट्टि ठणौ ॥

चौदसि पूसु गिण लेह, बेला चहु परिवसि तइएह ।

दिपि चौधी पाचमी कारी, आठे नौमी सुविचारी ॥

चौदसि मासि परवीन, पपि विसन करै छठ तीन ।

इम सात मास एक माहीं, चारमासहि एक ठाही ॥

चौरासी बेला कीनै, उपासन करि छोडीनै ।

इस मत से मुरमिय पावै, मुख को तहाँ बार न आवै ॥

—विद्याभोग

विवेचन—द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दो मत प्रचलित हैं। पहला मत इस व्रतके लिए तिथिका कोई बन्धन नहीं मानता है। इसमें कभी भी नौ दिन उपवास कर पारणा करनी चाहिए। इस प्रकार ५४ उपवास और ५४ पारणाएँ करके व्रतको समाप्त करना चाहिए। ५४ उपवास १६२ दिनमें सम्पन्न किये जाते हैं। उपवास करनेवाला प्रथम दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, पुनः दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, इसी प्रकार आगे भी करता जाता है। इस प्रकार एक उपवासके सम्पन्न करनेमें तीन दिन लगते हैं, अतः ५४ उपवासके $54 \times 3 = 162$ दिन हुए। उपवासने दिनोंमें शीलमतका पालन करते हुए तीनों समय प्रतिदिन—रात, मध्याह्न और सार्यकाल 'ॐ ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रं श्रीपार्थ्वनामजिनेन्द्राय सर्वशान्तिराय सर्वधुत्रोप-द्रव्यविनाशनाय श्रीं ह्रीं नमः स्याद्' मन्त्रका जाप करना चाहिए। यह मन्त्र तीनों संध्याकालोंमें कमसे कम १०८ बार जपा जाता है।

उपवास और पारणाके लिए किसी तिथिका नियम नहीं है, फिर भी यह व्रत श्रावणमासमें आरम्भ किया जाता है। यह माघ मासकी द्वादशी तक किया जाता है। कुछ लोग इसे वर्ष भर करनेकी सम्मति देते हैं, उनका कहना है कि श्रावण माससे आरम्भ कर दो दिन उपवास, एक दिन पारणा इस क्रमसे वर्षान्त तक व्रत करते रहना चाहिए।

द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दूसरी मान्यता यह है कि इस व्रतमें प्रत्येक मासमें मात उपवास किये जाते हैं, ये सात उपवास २१ दिनमें सम्पन्न होते हैं। दो दिन व्रतरखनेके उपरान्त पारणा करनी पड़ती है, इस प्रकार २१ दिनमें मात उपवास करनेके पश्चात् महानेके शेष दिनमें एकाशन करना चाहिए। प्रथम उपवास कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीका किया जायगा। षष्ठीको पारणा की जायगी, सप्तमीको एकाशन करनेके उपरान्त अष्टमी और नवमीको व्रत किया जायगा। इस व्रतकी दशमीको पारणा होगी, पुनः एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना होगा। चतुर्दशी और अमावस्याको उपवास, पुनः शुक्लपक्षमें

प्रतिपदा और द्वितीयाका उपवास करना होगा। इस प्रकार व्रतमें एक चार चार दिनका उपवास पड़ेगा। एक पारणा बीचकी तुल्य हो जायगी। चार दिनोंके व्रतके उपरान्त तृतीया और चतुर्थीको पकाशन करना होगा। पचमी और षष्ठीके उपवासके अनन्तर, सप्तमीको पारणा, अष्टमा और नवमीको उपवास करनेपर दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको पकाशन करना चाहिए। अत्येक महानेका अन्तिम उपवास गुरुपक्षमें चतुर्दशी और पूर्णिमाका करना होगा।

कुछ लोग इस व्रतको गुरुपक्षसे आरम्भ करनेके पक्षमें हैं। गुरुपक्षसे आरम्भ करनेपर प्रथम चार चार दिन तक लगातार उपवास नहीं पड़ता है, क्योंकि चतुर्दशी और पूर्णिमाके उपवासके पश्चात् कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीको उपवास करना विधान है। परन्तु इस व्रतमें भी दूसरी आयुषिमें चार उपवास करना पड़ेगा।

द्वितीय मान्यतामें द्विकावली व्रतके लिए तिथियाँ निर्धारित का गयी हैं। अतः इनमें भी छ घटी प्रमाण तिथिसे होनेपर ही व्रत करना होगा। इस व्रतकी आप-विधि सर्वत्र एक-सा ही है। कषाय और विकृष्य-भोंके स्वागपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। द्विकावली व्रतका यह स्वयं मोक्षकी प्राप्ति होना है। जो व्यक्ति इस व्रतका अनुष्ठान ध्यानपूर्वक करता है तथा प्रसादका स्वाग कर देता है, वह शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण कर लेता है।

यों तो सभी व्रतों-द्वारा आत्मकल्याण करनेमें व्यक्ति समर्थ है, पर इस व्रतके पालन करनेमें समस्त मनोबलपूर्वक पूरी हो जाता है। किसी संकट या विपत्तिको दूर करनेके लिए भी यह व्रत किया जाता है। कुछ लोग इसे भक्तहरण व्रत भी कहते हैं।

लघुद्विकावली

यह व्रत १२० दिनमें समाप्त होता है, इसमें २४ बेला, ४८ पकाशन और २४ पारणा इस प्रकार १२० दिन लगते हैं। प्रथम बेला, पुनः

पारणा, सपश्चात् दो णकाशन करे इस प्रकार इस व्रतको पूरा करना चाहिए । इस व्रतमें णमोकार मन्त्रका जाप या पूर्वार्ध घृह्ण द्विकावली मन्त्रका जाप करना चाहिए ।

एकावली व्रतकी विधि और फल

पिनाम एकावलीव्रतम् ? कथं च विधीयते व्रतिके ? अस्य किं फलम् ? उच्यते—एकावल्यामुपवासो णकान्तरेण चतुरशीति कार्या, न तु तिथ्यादिनियमः । इदं स्वर्गापवर्गफलप्रदं भवति । इति निग्वधियतानि ॥

अर्थ—एकावली व्रत क्या है ? व्रती व्यक्तियोंके द्वारा यह कैसे किया जाता है ? इसका फल क्या है ? आचार्य कहते हैं कि एकावली व्रतमें णकान्तर रूपसे उपवास और पारणाएँ की जाती हैं, इसमें चौरासी उपवास तथा चौरासी पारणाएँ की जाती हैं । तिथिका नियम इसमें नहीं है । इस व्रतके पालनेमें स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है । इस प्रकार निरवधि व्रतोंका व्रतन समाप्त हुआ ।

विशेष—एकावली व्रतकी विधि दो प्रकार देखनेमें मिलती है । प्रथम प्रकारकी विधि आचार्य द्वारा प्रतिपादित है, जिसके अनुसार किसी तिथि आदिका नियम नहीं है । यह कभी भी एक दिन उपवास, अगले दिन पारणा, पुन उपवास, पुन पारणा, इस प्रकार चौरासी उपवास करने चाहिए । चौरासी उपवासोंमें चौरासी ही पारणाएँ होती हैं । इस व्रतको प्राय श्रावण माससे आरम्भ करते हैं । व्रतके अन्तिममें शीतव्रत और पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना आवश्यक है ।

दूसरी विधि यह है कि प्रत्येक महीनेमें सात उपवास करने चाहिए, दोष णकाशन, इस प्रकार एक वर्षमें कुल चौरासी उपवास करने चाहिए । प्रत्येक मासमें कृष्ण पक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुदशी एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुदशी तिथियोंमें उपवास करना चाहिए । उपवासके अगले और पिछले दिन एकाशन करना आवश्यक

है। जोय दिनोंमें भोज्य वस्तुभाकी संख्या परिगणित कर दोना समय भी आहार प्रदण किया जा सकता है। इस प्रतमें जमाकार मात्रका जाप करना चाहिये।

सावधि प्रतोंके भेद

सावधी—युच्यन्ते, तानि त्रिदिविधानि, तिथिमासधिकानि दिनमस्यान्मासधिकानि च। तिथिसावधिकानि पानि। सुप्त चिन्तामणिभाषणा पञ्चविंशतिभाषणा-द्वात्रिंशन्-सम्बन्धवपञ्च विंशत्यादीनि जमोकारपञ्चत्रिंशन्कानि ॥

अर्थ—सावधि प्रतोंका कहते हैं, वे दो प्रकारके होते हैं—तिथिही अवधिक किये जायेंवहे और दिनोंही अवधिते किये जायेंवह। तिथिका अवधिने किये जायेंवह प्रत बीन-कान हैं। आचार्य कहते हैं कि मूल चिन्तामणिभाषणा, पञ्चविंशतिभाषणा, द्वात्रिंशन्भाषणा, सम्बन्धवपञ्च विंशति भाषणा और जमोकार पञ्चत्रिंशन् भाषणा।

विशेष—जो किसी भी प्रकारकी अवधिको लेकर किये जाते हैं, वे सावधिक प्रत कहलाते हैं। या तो सभी प्रतोंमें किसी न किसी प्रकार की मर्यादा रहती ही है, परन्तु सावधिक प्रतमें ऊर्हीकी गणना की गयी है, जिनमें तिथि अदिका विधान विरुद्ध निश्चित है। जमे मन सुप्त चिन्तामणि भाषणा, पञ्चविंशति भाषणा, द्वात्रिंशन् भाषणा, सम्बन्धवपञ्च विंशति भाषणा, जमोकारपञ्चत्रिंशन् भाषणा आदि हैं। इन प्रतोंमें तिथिही अवधिके अनुसार उपवास किये जाते हैं। समय मर्यादाके अतिरमण करनेपर इन प्रतोंका बल भी कुछ नहीं होता है। इनका बल समय—मर्यादापर हा अधिकृत है। अतः वे मन तिथिसावधिक कहलाते हैं। क्रियाकोन आदि आचारके ग्रन्थोंमें इन प्रतोंकी विशेष विशेष विधिवांका निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थमें पूजाचार्य द्वारा प्रतिपादिन १०८ प्रतोंकी विधियोंका संक्षेपमें निरूपण किया है। मन विधियोंके मन्त्रधर्म प्रकरणमें आगे विचार किया जायगा।

सुखचिन्तामणि व्रतका स्वरूप

उच्यते, सुखचिन्तामणौ चतुर्दशी चतुर्दशक, एकादशेकादशक, अष्टम्यष्टक, पञ्चमी पञ्चक तृतीया त्रिकमेघमुपवासा परुचत्वारिंशत् । न कृष्णपक्षशुक्लपक्षगतो नियम, केवलतिथि नियम्य भवतीति उपवासा । अस्य व्रतस्य पञ्चभागा भवन्ति, प्रत्येक भावनायामभिषेको भवति ।

अर्थ—सुखचिन्तामणि नामके व्रतको कहते हैं—सुखचिन्तामणि व्रतमें चतुर्दशियोंमें चौदह उपवास, एकादशियोंके ग्यारह उपवास, अष्टमियोंके आठ, पञ्चमियोंके पाँच उपवास, तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ४१ उपवास करने चाहिये । इस व्रतमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षका कुछ भी नियम नहीं है, केवल तिथिका नियम है । उपवासके दिन व्रतकी विधेय तिथि होना आवश्यक है । इस व्रतकी पाँच भावना होती है, प्रत्येक भावनामें एक अभिषेक किया जाता है । अभिप्राय यह है कि चौदह चतुर्दशियोंके व्रतमें पश्चात् एक भावना, ग्यारह एकादशियोंके व्रतमें पश्चात् एक भावना, आठ अष्टमियोंके व्रतमें बाद एक भावना, पाँच पञ्चमियोंके व्रतमें पश्चात् एक भावना एवं तीन तृतीयाओंके व्रतमें पश्चात् एक भावना करनी पड़ती है । प्रत्येक भावनाके दिन भगवान्का अभिषेक करना पड़ता है ।

नियेधन—सुखचिन्तामणि व्रतके लिए केवल तिथियोंका विधान है । यह व्रत तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीको किया जाता है । प्रथम इस व्रतका प्रारम्भ चतुर्दशीसे करते हैं, उगातार चौदह चतुर्दशी अर्थात् सोलहवानी चतुर्दशियोंमें चतुर्दशीव्रत पूरा होता है । साथ ही चतुर्दशी व्रतके तीन उपवास हो जानेपर एकादशी व्रत प्रारम्भ होता है । जिस दिन एकादशी व्रत प्रारम्भ किया जाता है, उस दिन भगवान्का अभिषेक करते हैं तथा व्रतकी भावना भाते हैं । तीन चतुर्दशियोंके व्रतमें उपरोक्त एकादशी और चतुर्दशी दोनों व्रत अपनी अपनी तिथिमें साथ-साथ किये जाते हैं ।

तीन षष्ठादशी व्रत हो जानेके पश्चात् अष्टमी व्रत प्रारम्भ किया जाता है। जिस दिन अष्टमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक समारोहपूर्वक करते हैं। यह सदा स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक व्रतके प्रारम्भमें अभिषेक १०८ कलशोंसे किया जाता है। तीन अष्टमी व्रत हो जानेके उपरान्त पञ्चमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, इसके प्रारम्भ करनेकी विधि पूर्ववत् ही है। चतुर्दशी, षष्ठादशी, अष्टमी और पञ्चमी ये व्रत एक साथ चलते हैं। दो पञ्चमीव्रतोंके हो जानेपर तृतीया व्रत आरम्भ होता है, इस दिन भी गृहद् अभिषेक, पूजन-याद आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। ये सभी व्रत तीन पक्षतक अर्थात् तीन तृतीया व्रतोंके सम्पूर्ण होनेतक साथ-साथ चलते हैं। तृतीयाके दिन ही इन व्रतोंकी समाप्ति होती है। इस दिन गृहद् अभिषेक समारोहपूर्वक करना चाहिए। उपवासके निमित्त 'ॐ ह्रीं सर्वदुरितघिनाशनाथ चतुर्विंशतितीर्थेश्वराय नमः' इस मन्त्रका जाप प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल करना चाहिए। सुगचिन्तामणि व्रत निश्चित तिथिमें ही सम्पन्न किया जाता है। यदि व्रतकी तिथि आगे पीछेके दिनोंमें होती है तो व्रत आगे-वाछे किया जाता है। यह व्रत चिन्तामणि राजके समान सभी प्रकारके मुक्तोंको देनेवाला है। भावनाके दिन चिन्तामणि भगवान्‌ पाशनाथकी पूजा विशेष रूपसे की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं सर्वसिद्धि कराय पादर्यनाथाय नमः।' इस मन्त्रका जाप किया जाता है।

तिथिहास और तिथिवृद्धि होनेपर सुग- चिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था

अधिरगृहीतानुक्तितथो को विधिरिति चेत्तदाह—तिथि हासे व्रतिने तदादिदिनमारभ्य उपवास कार्य। अधिरुक्तितथो को विधिरिति चेत्तदाह—यथाशक्ति द्वितीयाया तिथो पुन पूर्वप्रोक्तो विधि कार्य, हीनत्वात्त्रिमुहूर्त्तत व्रतविधिर्न भवति।

अर्थ—सुगचिन्तामणि व्रतमें तिथिहास और तिथि वृद्धि होनेपर व्रत

करनेकी क्या विधि है ? तिथिद्वांस होनेपर व्रत करनेवालोंको एक दिन पहले व्रत करना चाहिए ।

तिथिवृद्धि होनेपर क्या व्यवस्था है—आचार्य कहते हैं कि तिथि वृद्धि होनेपर दूसरे दिन—यदि कुछ दिन भी विधिपूर्वक व्रत करना चाहिए । यदि तिथि तीन मुहूर्त्त अर्थात् यद्दी हुई तिथि छ घटीमें अलग हो तो उस दिन व्रत नहीं करना चाहिए ।

प्रियेचन—तिथिद्वांस और तिथिवृद्धि होनेपर मुन्यचिन्तामणि व्रतमें उपवास निश्चित तिथिको करना चाहिए । जब तिथिकी वृद्धि हो, उस समय एक दिन तक उपवास करना पड़ेगा । परन्तु तिथि-वृद्धिमें इस बातका सदा इरादा रखना पड़ेगा कि यद्दी हुई तिथि छ घटीसे अधिक होनी चाहिए । छ घटीसे अलग होनेपर उस दिन पारणा कर ली जायगी । तिथिद्वांस अर्थात् जिस तिथिको व्रत करना है, उसीका द्वांस—क्षय हो तो उस तिथिके पहले वाली तिथिको व्रत करना होगा, क्योंकि व्रतकी तिथि उस दिन सूर्योदयमें न भी रहेगी तो भी अलग कालमें अवश्य आ जायगी । अतएव एक दिन पहले व्रतवाली तिथिके व्रतमान रहनेमें व्रत एक दिन पूर्व करना होगा । सूर्योदय कालमें यदि व्रतकी तिथि छ घटी प्रमाण न हो तो भी व्रत एक दिन पहले करना पड़ेगा ।

तिथिद्वांसमें व्रततिथिकी व्यवस्था पहले ही बतलायी गयी है । जैनागममें सोदया तिथि वही मानी गयी है, जो उदयकालमें कमस कम छ घटी प्रमाण हो । उदया तिथिके न मिलनेपर अलगकालीन तिथि ग्रहण की जाती है । उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्तिको चतुर्दशीमें सुखचित्तामणि व्रत प्रारम्भ करना है । व्रत प्रारम्भके दिन चतुर्दशी उदयकालमें ८ घटी १० पल प्रमाण थी, अन व्रत कर लिया गया । अगली चतुर्दशी बुधवारको ३ घटी १० पल है और मंगलवारको त्रयोदशा ५ घटी १५ पल है । यहाँ यदि बुधवारको व्रत किया जाता है तो ३ घटी १० पल प्रमाण, जो कि उदयकालमें तिथिका

मान है; छ घटी प्रमाणसे अल्प है। अतः शुभवारको चतुर्दशी सोदया नहीं कहलायेगी। अतःके लिए तिथिका सोदया होना आवश्यक है, सोदया न मिलनेपर अग्रा तिथि ब्राह्म की जाती है। इसलिये चतुर्दशी का व्रत मंगलवारको ही कर लिया जायगा।

तिथि वृद्धि होनेपर दो दिन लगातार व्रत करनेकी बात आती है। मान लीजिए कि शुभवारको एकादशी ६० घटी ० पल है और गुरुवारको एकादशी ६।४० पल है। इस प्रकारकी स्थितिमें प्रथम तिथि एकादशी पूर्ण है, अतः शुभवारको व्रत करना होगा। गुरुवारके दिन भी एकादशीका प्रमाण सोनिया—छ घटीसे अधिक है, अतः गुरुवारको भी उपवास करना पड़ेगा। इस प्रकार तिथिवृद्धिमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। यदि यहाँपर गुरुवारके दिन एकादशी ५ घटी ४० पल ही होती, तो सोदया—छ घटी प्रमाण न होनेसे उपवासके लिए ब्राह्म नहीं थी। अतएव गुरुवारको वारणा की जा सकती है। उपवासका दिन केवल शुभवार ही रहेगा। इस प्रकार तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें मुख्यचिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था समझना चाहिये।

अष्टाहिकादि व्रतांमे तिथि-क्षय होनेपर

पुनः व्यवस्था

व्रतान्न व्रत कथं क्रियतेऽस्योपर्यग्यदुक्तं च अपभ्रंशवृत्ता—

अहिमजायय अदणिय आणियह मज्जे तिहि ।

पडणहोइ तद्वयर आइहा अतलौ वय ॥

व्याख्या—अष्टम्या यावत्पूर्णमान्तं व्रतं चाष्टाहिकं जानीहि ।

अस्य मध्ये तिथिपतनं भवति, तर्हि व्रतस्यादिदिनमारभ्य व्रतान्तमवलोकयेत्यर्थः ॥

अर्थ—यदि व्रतके मध्यमें तिथि-ह्रास हो तो व्रतकी समाप्ति किस प्रकार करनी चाहिये, इसके ऊपर अन्य आचार्यों-द्वारा कही गयी गाथा को कहते हैं—

अष्टमीसे लेकर पूर्णिमातक जो व्रत किया जाता है, उसे अष्टाह्निक व्रत कहते हैं। यदि हम व्रतके दिनोंमें किसी तिथिका हास हो तो व्रत आरम्भ करनेके एक दिन पहलेमें लेकर व्रतकी समाप्तिक व्रत करना चाहिए।

तथान्पेरप्युक्ता गाथा—

ययत्रिहीण च मज्झे तिहिण पडण वज्जाई होइ उई ।

मूलदिण पारमिय अते दिउसम्मि होइ सम्मत्त ॥

व्याख्या—व्रतत्रिहीणा च मध्ये तिथिपतन यदि भवेत्, तदा मूलदिने प्रारम्भ अन्त्ये दिवसे च भवति समाप्तमिति चेदित्।

अर्थ—यदि तिथिके मध्यमें यदि किसी तिथिका हास हो तो एक दिन पहले व्रत आरम्भ किया जाता है और व्रतकी समाप्ति अन्तिम दिन होती है। यही सन्वत्तय है, ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं।

मास अधिक होनेपर सावत्सरिक किया कैसे करनी चाहिए।

मासाधिन्ये किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—

सप्तसरे यदि भवेन्मासो वे चाधिकम्यदा ।

पूर्वस्मिन्न व्रत कार्यं त्वपरस्मिन् कृतं शुभम् ॥

अर्थ—अधिमास होनेपर व्रत क्या करना चाहिए ? आचार्य कहते हैं कि यदि वर्षमें एक मास अधिक हो तो पहले वाले मासमें व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु आगे वाले मासमें व्रत करना चाहिए।

प्रवेचन—यौरे और चान्द्रमासमें अन्तर रहनके कारण दो वर्ष छोड़कर तासरे वर्षमें एक मासकी वृद्धि हो जाती है, जो अधिमास कहलाता है। इसका नाम शास्त्रकारोंने मलमास भी रखा है। यह अधिमास चैत्रसे लेकर आश्विन तक पड़ता है अर्थात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, धावण, भाद्रपद और आश्विन ये सा महीने वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूर्य मन्द गतिसे गमन करता है और चन्द्रमा तेज गतिसे। इसलिये प्रति महीनेमें अधिशेषकी वृद्धि होती जाती है। जब

दो महीनोंमें एक सक्कान्ति पड़ती है, तब अधिमास आता है। बात यह है कि व्यग्रहारमें चन्द्रमास छिये जाते हैं, प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमान्त चान्द्रमास गणना होती है। सौरमास सक्कान्तिसे लेकर सक्कान्ति तक होता है, यह पूरे ३० दिनका होता है। चान्द्रमास २९ दिनके लगभगका होता है तथा जिस दिन चान्द्रमास आरम्भ होता है, उस दिन सौरमास नहीं। सौर मास सदा चान्द्रमाससे आगे-पीछे आरम्भ होता है, इसी कारण तीन वर्षोंमें एक महीनेकी वृद्धि हो जाती है।

अधिमासका आशयन गणितसे निम्न प्रकार किया जाता है। दिनादि और अवसका योग करके दसगुणित वर्षगणमें जोड़कर तीसका भाग देने पर फल अधिमास सरया होती है।

सावन दिन और चान्द्र दिनका अन्तर अवस होता है। इसलिये सावन दिन और अवसके योगमें चान्द्रदिन सिद्ध होते हैं।

एक वर्षमें सावनदिन=३६५१५१३०।२२।३०

अवसदिन= ५१४८।२२।०।३०

युक्त वर्षम चान्द्रदिन=३०११३।५२।३०

॥ सौरदिन=३६०।०।०।०

११३।५२।३० एक वर्षमें इतने दिनादि बढ़ जाते हैं। इसका नाम वार्षिक अधिमास या शुद्धि है। क्योंकि सौर और चान्द्र दिनोंके अन्तरमें अधिमास होता है अथवा अनुपात करनेपर कि करपथ्यों में कक्षाधिमास तो एक वर्षमें क्या ? से भी उपयुक्त वार्षिक अधिमास आ जाजाता है।

सावन दिन घटी आदि=०।१५३०।२२।३०

अवस दिन घटी आदि=०।४८।२२।०।३०

अधिशेष=११३।५२।३०=दिनादि+क्षयाद्वादि अथवा अनुपात किया—
एक वर्ष में ११३।५२।३० अधिमास आता है तो गत वर्षोंमें क्या ?
यहाँ सुविधाके लिए गुणकके दो खण्ड कर दिये—एक १० वर और

दूसरा पृष्ठसाधित ११३।५२।३० का । इस प्रकार दिनादि और अयमादिके योगमं दसगुणित वर्षसंख्या जोड़नेपर अधिदिन आये, इनमें तीसका भाग देनेपर अधिमास होता है ।

$$\text{अतः } \frac{\text{दिनादि+क्षयादि+१०} \times \text{वर्षगण}}{३०} = \text{अधिमास। यहाँ शकाब्द-}$$

के अनुसार गणितकर कुछ अधिमासाकी सूची दी जाती है ।

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	वि० सं०	अधिमास
१८७२	२००७	आषाढ़	१९०३	२०५८	आश्विन
१८७५	२०१०	वैशाख	१९२६	२०६१	श्रावण
१८७७	२०१२	भाद्रपद	१९२७	२०६४	ज्येष्ठ
१८८०	२०१५	श्रावण	१९३२	२०६७	वैशाख
१८८३	२०१८	ज्येष्ठ	१९३४	२०६९	आश्विन
१८८५	२०२०	आश्विन	१९३७	२०७२	आषाढ़
१८८६	२०२१	चैत्र	१९४०	२०७५	ज्येष्ठ
१८८८	२०२३	श्रावण	१९४२	२०७७	आश्विन
१८९१	२०२६	आषाढ़	१९४५	२०८०	श्रावण
१८९४	२०२९	वैशाख	१९४८	२०८३	ज्येष्ठ
१८९६	२०३१	आश्विन	१९५१	२०८६	चैत्र
१८९९	२०३४	श्रावण	१९५३	२०८८	आश्विन
१९०२	२०३७	ज्येष्ठ	१९५६	२०९१	आषाढ़
१९०४	२०३९	आश्विन	१९५७	२०९४	ज्येष्ठ
१९०७	२०४२	श्रावण	१९६१	२०९६	आश्विन
१९१०	२०४५	ज्येष्ठ	१९६४	२०९९	श्रावण
१९१३	२०४८	वैशाख	१९६७	२१०२	ज्येष्ठ
१९१५	२०५०	आश्विन	१९७०	२१०५	चैत्र
१९१८	२०५३	आषाढ़	१९७२	२१०७	आश्विन
१९२१	२०५६	ज्येष्ठ	१९७५	२११०	आषाढ़

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास
१९७८	२११३	वैशाख	१९८६	२१२२	ज्येष्ठ
१९८१	२११६	आश्विन	१९८९	२१२५	शैत्र
१९८३	२११९	श्रावण	१९९१	२१२७	श्रावण

इस प्रकार अधिमासका परिज्ञान कर जिस मासकी वृद्धि हो उसके अगलेवाले मासमें व्रत करना चाहिये । जैसे श्रावण मास अधि मास है तो दो आचणोंमेंसे पहले श्रावण मासमें व्रत नहा दिया जायगा, किन्तु दूसरे श्रावणमें व्रत करना पड़ेगा ।

मास-क्षय होने पर व्रतके लिए व्यवस्था

मासद्वानौ किं पक्षं यमिति चेत्तदाह—

सप्तस्तरे यदि भवेन्मासो ये हीयमानक ।

पूर्वस्मिन्न व्रतं कार्यं परस्मिन्न तु योग्यता ॥

अर्थ—मासद्वानि कया करना चाहिये ? उत्तर देते हैं कि सप्त स्तरमें यदि मासद्वानि हो तो पूर्वके महीनेमें व्रत करना चाहिये, आगे वाले महीनेमें नहीं । व्रतकी योग्यता पूर्वमासमें ही होती है, उत्तरमास में नहीं ।

टिप्पण—जैसे अधिमास होता है, वैसे ही क्षयमास भी होता है । कभी कभी वर्षमें एक मासकी हानि हो जाती है । स्पष्टमानस जिस समय चांद्रमासके प्रमाणमें सौरमासका भान कम होता है, तब एक चान्द्रमासमें दो संक्रान्तियोंके सम्भव होनेसे क्षयमास होता है । यह सौरमास अल्प, तभी सम्भव है जब स्पष्ट रविका गति अधिक हो । क्योंकि अधिक गति होनेपर थोड़े समयमें राशिमोय होता है । क्षयमास प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष और पीषमें ही होता है । क्षयमास जिस वर्षमें होता है, उस वर्षमें अधिमास भी होता है । मान लिया कि भाद्रपद अधिमास है, उस समय अधिशेष बहुत कम रहता है और क्रमशः घटता भी है, क्योंकि सूर्य अपने नीचके आसन्न है । अधिशेष जब घटते-घटते

शून्य हो जाता है, तब क्षयमास होता है। कारण स्पष्ट है कि चान्द्र माससे रविमास कम होता है। क्षयमासके अनन्तर अधिमास दीप एक चान्द्रमासके आसन्न पहुँच जाता है। इसके पश्चात् अत्र सूर्य पुन अपने उच्चके आसन्न पहुँचता है, तब सौरमासके अल्प होनेसे कारण पुन अधिमास हो जाता है। इस प्रकार क्षयमास होनेपर दो अधिमास होते हैं। यदि पहला अधिमास भाद्रपदको मान लिया जाय तो दूसरा अधि मास चैत्रमास पड़ेगा तथा अगहनमें क्षयमास होगा। क्षयमास १४१ वर्षके अनन्तर आता है। पिछला क्षयमास वि० स० १९३६ में पड़ा था अथ अगला वि० स० २०२० में कार्तिकमें पड़ेगा। कभी-कभी क्षयमास १९ वर्षोंके बाद भी पड़ता है। यदि समय पर क्षयमास पड़ा तो ४३३ वर्षोंके पश्चात् भी आता है।

यह नियम है कि जिस वर्ष क्षय मास पड़ेगा, उस वर्ष दो अधि मास अवश्य होंगे। क्षयमास पड़नेपर व्रत पिछले महीनेसे किया जाता है। मान लिया कि कार्तिक क्षयमास है। एकावली व्रत करनेवालेको कार्तिकके व्रत आश्विनमें ही कर लेने होंगे अथवा नक्षत्र आदि व्रत जो मासिक व्रत हैं, वे कार्तिकका अभाव होनेपर आश्विनमें किये जायेंगे। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिस वर्ष क्षयमास होता है, उस वर्ष अधिमास पहले अवश्य पड़ता है और यह अधिमास भी नीचासन्न सूर्यके होनेपर अर्थात् भाद्रपद या आश्विनमें आयागा। इस प्रकार एक महीनेके बढ़ जानेसे तथा एक महीना घट जानेसे कोई विशेष गड़बड़ी नहीं होती है। व्रतके लिए बारह मास प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु विचारणीय बात यह है कि अधिमास पड़नेपर भी व्रतके लिए तो एक ही मास प्राप्त है, दूसरा मास तो मलमास होनेके कारण स्थान्य है। अत एव क्षय मास होनेपर मासिक व्रत करनेवालोंको एक महीनेमें दुगुने व्रत करने पड़ेंगे।

दुगुने व्रत करनेके लिए क्षयमासके पहिलेका महीना ही लिया जायगा। क्षयमाससे आगेका महीना नहीं। जिन व्यक्तियोंको मासिक

व्रत प्रारम्भ करना है, उन्हें क्षयमासके पूर्ववर्त्ती महीनेमें व्रत प्रारम्भ करने चाहिए ।

तिथिका प्रमाण

तिथिप्रमाणं विच्यदित्युक्ते चाह—चतुःपञ्चाशत्घटीभ्यो न्यूना तिथिर्न भवति, अधिकं तु सप्तपष्टिघटीप्रमाणं फथितम् । यत जैनानां त्रिमुहूर्त्तौदयवर्त्तिनीतिथिः सम्मता, अधिकं तिथेः प्रमाणं ॥ सप्तपष्टिघटी, अहोरात्रप्रमाणं पष्टिघटीव्रतमतः सप्तघटिकाभ्योऽधिका पारणादिने पारणा न कर्त्तव्या, यदा तु चतुः, पञ्च घटिकाप्रमाणं अपरदिने तिथिः तदा तस्मिन्नेव दिने पारणा कार्या, नाम्यत्र ।

अर्थ—तिथिका प्रमाण कितना होता है ? इस प्रकारका प्रश्न करने पर भाषाय उत्तर देते हैं—प्रत्येक तिथि ५४ घटीसे कम और ६०से अधिक नहीं होती है । जैनाचार्योंने उदयकालमें छ घटी प्रमाण तिथिका मान व्रतके लिए मान्य बताया है । तिथिका अधिकतम मान ६० घटी होता है । अहोरात्रका प्रमाण ६० घटी माना जाता है, अतः पहले दिन कोई भी तिथि ६० घटीसे अधिक नहीं हो सकती । अगले दिन वृद्धि होनेपर वह तिथि अधिकसे अधिक ७ घटी प्रमाण रहेगी । ऐसी अवस्था में उस दिन व्रतकी पारणा नहीं की जायगी, किन्तु उस दिन भी व्रत रक्षना होगा । यदि वृद्धिगत तिथि छ घटीसे अल्प प्रमाण है तो उस दिन पारणा की जायगी, अन्य दिन नहीं ।

विशेषण—गणितके अनुसार तिथिका प्रमाण अधिकसे अधिक ६० घटी और कमसे कम ५४ घटी आता है । ५४ घटी प्रमाणसे अल्प घटी प्रमाण वाली तिथिका दास या क्षय माना जाता है । यद्यपि सूर्यादयकाल में कम ही तिथियाँ ५४ घटी या इससे अधिक मिलेंगी, क्योंकि एक तिथिकी समाप्ति होनेपर दूसरी तिथिका आरम्भ हो जाता है । वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक तिथिका मान गणितसे ६० घटी नहीं आता

है, जिसमें सूर्योदयमें लेकर सूर्योदयकाल तक एक ही तिथि रह सके । कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मध्यम मानानुसार एक ही दिनमें तीन तिथियाँ भी रह जाती हैं तथा कभी दो दिन तक भी एक ही तिथि रह सकती है । आचार्यने ऊपर इसी तिथि-व्यवस्थाको बतलाया है ।

व्रततिथि-निर्णयके सम्यन्धमें शका-समाधान

अत्र सशय करोति "पञ्चदेयै प्रायो धर्मेषु कर्मसु" इत्यत्र प्राय इत्यव्यय कथितम्, तस्य कोऽर्थः, उच्यते देशकालादिभेदात् तिथिमानं ग्राह्यम् ।

अर्थ—यहाँ कोई शका करता है कि पञ्चदेवनेतिथिका मान छ. घटी बतलाते हुए कहा है कि प्राय धर्मकृत्यां इसी तिथिमानको ग्रहण करना चाहिए । यहाँ प्राय शब्द अम्यय है, इसका क्या अर्थ है ? क्या छ घटीसे हीनाधिक प्रमाण भी व्रतके लिए ग्रहण किया गया है ? आचार्य उत्तर देते हैं—देश, काल आदिके भेदसे तिथिमान ग्रहण करना चाहिए, इस बातको दिखलानेके लिए यहाँ प्राय शब्द ग्रहण किया है ।

विषेचन—तिथिका मान प्रायेक स्थानमें भिन्न होता है । अक्षांश और देशान्तरके भेदमें प्रत्येक स्थानमें तिथिना प्रमाण पृथक् होगा । पञ्चांगमें जो तिथिके घटी, पल, विपल आदि लिखे रहते हैं, वे जिस स्थानका पञ्चांग होता है, वहाँके होते हैं । अपने वहाँके घटी, पल निकालनेके लिए देशान्तर संस्कार करना पड़ता है । इसका नियम यह है कि पञ्चांग जिस स्थानका हो उस स्थानके रेखांशके साथ अपने स्थानके रेखांशका अन्तर कर लेना चाहिए । अशास्त्रिक जो अन्तर हो उसे चारसे गुणा करनेपर मिनट, संकण्ड रूप काल आता है । इसका घट्यात्मक काल निकालकर पञ्चांगके घटी, पलोंमें संस्कार कर देनेसे स्थानीय तिथि के घटी, पल निकल आते हैं । संस्कार करनेका नियम यह है कि पञ्चांग स्थानका रेखांश अधिक हो और अपने स्थानका रेखांश कम हो तो ऋण संस्कार, और अपने स्थानका रेखांश अधिक तथा पञ्चांग स्थानका रेखांश

कम हो तो धन सस्कार करना चाहिए । उदाहरण—विषपञ्चागमें बुधवारको अष्टमीका प्रमाण १० घटी १५ पल दिया है । हमें देखना यह है कि आरामें बुधवारको अष्टमी तिथि कितनी है—

वनारस—पञ्चाग निमाणका स्थान, का रेखांश ८३।० है और अपने स्थान आराका रेखांश ८४।४० है । इन दोनोंका अन्तर किया—
 $(८४।४०) - (८३।०) = १।४०$ । इसको ४ सं गुणा किया— $१।४० \times ४ = ५।४०$ मिनट, सैकण्ड आदि । ६ मिनट और ४० सैकण्डके १६ पल ४० विपल हुए । आराके रेखांशसे पञ्चागस्थान वनारसका रेखांश कम है, अतः वहाँके तिथ्यादि मानमें धन-सस्कार करना चाहिए । अतः $(१०।१५) + (०।१६।४०) = १०।३१।४०$ अर्थात् आरामें बुधवारको अष्टमी १० घटी ३१ पल ४० विपल हुई । यदि यही तिथि मान आगराम निकालना है तो—

आगराका रेखांश ७८।१५ और वनारसका रेखांश ८३।० है, दोनोंका अन्तर किया $(८३।०) - (७८।१५) = ४।४५$, $४।४५ \times ४ = १७।०$ मिनट । इससे घट्यादि बनाये : $०।४०।३०$ हुए । यह स्थानका रेखांश पञ्चागके रेखांशसे अल्प है, अतः पञ्चागके घटी, पलोंमें ऋण सस्कार किया । $(१०।१५) - (०।४०।३०) = ९।२७।३०$, आगराम बुधवारको अष्टमी तिथिका प्रमाण ९ घटी २७ पल ३० विपल हुआ । कलकत्तामें अष्टमीका प्रमाण—

कलकत्ताका रेखांश (८८।२४)—वनारसका रेखांश (८३।०) = ५।२४।
 $५।२४ \times ४ = २१।३६$ । इसका घट्यात्मक मान ५३।१० हुआ । इसको वनारसके घटी, पलोंमें जोड़ा

$$१०।१५$$

$$०।५३।५०$$

$$१०।६८।१० \text{ तिथिका मान कलकत्तामें हुआ ।}$$

अपने स्थानके तिथिमानको निकालनेके लिये नीचे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंके रेखांश दिये जाते हैं । जिसमें कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थानके पञ्चाग परसे अपने वहाँके तिथिमानको निकाल सकता है ।

રેવાશ-ધોધક સારિણી

ક્ર. સં.	નામ નગર	પ્રાન્ત	રેવાશ દેશાંશ
૧	અજમેર	રાજપૂતાના	૭૪ ૪૨
૨	અમરાવતી	થરા	૭૭ ૪૭
૩	અમવાલા	પંજાબ	૭૬ ૫૨
૪	અમરોહા	યૂ. પી.	૭૮ ૩૧
૫	અમૃતસર	પંજાબ	૭૪ ૪૮
૬	અયોધ્યા	યૂ. પી.	૮૨ ૧૯
૭	અલહર	રાજપૂતાના	૭૬ ૩૮
૮	અલીગઢ	યૂ. પી.	૭૮ ૬
૯	અહમદાવાદ	બમ્બઈ	૭૨ ૪૦
૧૦	આગરા	યૂ. પી.	૭૮ ૧૫
૧૧	આરા	બિહાર	૮૪ ૪૦
૧૨	આસામ	આસામ	૯૩ ૦
૧૩	હટારસી	સી. પી.	૭૦ ૫૩
૧૪	હમ્દીર	મધ્યભારત	૭૫ ૫૦
૧૫	હાહાવાદ	યૂ. પી.	૮૧ ૫૦
૧૬	હાવેર	મધ્યપ્રદેશ	૭૫ ૪૩
૧૭	હાવેરપુર	રાજપૂતાના	૭૩ ૪૩
૧૮	ફટની	સી. પી.	૮૦ ૨૭
૧૯	ફાઠિયાવાદ	ગુજરાત	૭૧ ૦
૨૦	ફાઠાટક	દક્ષિણ ભારત	૭૮ ૦
૨૧	ફરોઝી	સિંધ	૬૭ ૪
૨૨	ફલ્યાણ	બમ્બઈ	૭૩ ૧૦
૨૩	ફલકતા	બંગાલ	૮૮ ૨૪
૨૪	ફાઝીવરમ્	મદ્રાસ	૭૯ ૪૫
૨૫	ફાઝપુર	યૂ. પી.	૮૦ ૨૪

प्रततिथिनिर्णय

१८५

क्र०	स०	नाम	प्रान्त	रेखाश देशात
२६		कारकल	मद्रास	७९ ४०
२७		कालीकट	"	७५ ५९
२८		किशनगढ़	जैमलमेर	७० ४७
२९		किशनगढ़	राजपूताना	७४ ५५
३०		कोटा राज्य	राजपूताना	७५ ५३
३१		कोसूर	मद्रास	७४ ५३
३२		कोरहापुर	"	७४ १६
३३		खण्डवा	सी० पी०	७६ २३
३४		सुरजा	यू० पी०	७७ ५०
३५		गया	बिहार	८५ ०
३६		ग्वालियर	ग्वालियर	७८ १०
३७		गान्धियाबाद	यू० पी०	७७ २८
३८		गान्धीपुर	"	८३ ३५
३९		गुजरात	गुजरात	७२ ३०
४०		गुजरातवाला	पंजाब	७४ १४
४१		गोरखपुर	यू० पी०	८३ २४
४२		गोहाटी	आसाम	९१ ४७
४३		बगगाँव	बंगाल	९२ ५३
४४		विदम्बरम्	मद्रास	७९ ४४
४५		खुनार	यू० पी०	८२ ५६
४६		छपरा	बिहार	८४ ४७
४७		छोटानागपुर	"	८५ ०
४८		जम्बलपुर	सी० पी०	७९ ५९
४९		जैपुर राज्य	राजपूताना	७५ ५२
५०		जैमलमेर राज्य	"	७० ५७
५१		जोधपुर राज्य	"	७३ ४

[illegible]

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
१०४	मद्रास	मद्रास	८० १७
१०५	मनीपुर	आसाम	८५ ३०
१०६	मदुरा	मद्रास	७८ १०
१०७	महोबा	यू० पी०	७९ ५५
१०८	मालवा	मध्यभारत	७५ ३०
१०९	मिरजापुर	यू० पी०	८२ २
११०	मुजफ्फरनगर	"	७७ ४४
१११	मुजफ्फरपुर	बिहार	८५ २७
११२	मुर्शिदाबाद	बंगाल	८८ १९
११३	मुरादाबाद	यू० पी०	७८ ४९
११४	मुरार	ब्यालिपर	७८ ११
११५	मुग्तान	पंजाब	७१ ३१
११६	मेरठ	यू० पी०	७७ ४५
११७	मैगलूर	मद्रास	७४ ५३
११८	मैनपुरी	यू० पी०	७९ ३
११९	मैसूर	मैसूर	७६ ४२
१२०	रतलाम	मध्यभारत	७५ ७
१२१	राजकोट	बम्बई	७० ५६
१२२	राजनादगाँव	सी० पी०	८१ ५
१२३	रायगढ़	"	८३ २६
१२४	रायपुर	"	८१ ४१
१२५	रायलपिण्डी	पंजाब	७३ ६
१२६	राँची	बिहार	८५ २३
१२७	रबकी	यू० पी०	७७ ५३
१२८	रहेलखण्ड	"	७९ ०
१२९	रघुनन्द	"	८० ५९

क्र० सं०	नाम नगर	प्रांत	रेखांश देशांश
१३०	मलितपुर	यू० पी०	७८ २८
१३१	लक्ष्मर	ग्वालिपर	७८ १०
१३२	छाहौर	पंजाब	७४ २६
१३३	लुधियाना	"	७५ ५४
१३४	विजगापट्टम	मद्रास	७३ २०
१३५	विजयनगर	"	७६ ३०
१३६	व्यावर	मारवाड़	७४ २१
१३७	साहजहाँपुर	यू० पी०	७९ २७
१३८	शिमला	पंजाब	७७ १३
१३९	शिवपुरी	ग्वालिपर	७७ ४४
१४०	श्रीनगर	काश्मीर	७४ ५१
१४१	सतारा	बम्बई	७४ १
१४२	सहारनपुर	यू० पी०	७७ २३
१४३	सागर	सी० पी०	७८ ५०
१४४	सांगली	बम्बई	७४ ३६
१४५	सिरीही	राजपूताना	७२ ५४
१४६	मिलहट	आसाम	९१ ५४
१४७	मिलीगुडी	बंगाल	८८ २५
१४८	सिवनी	सी० पी०	७९ ३५
१४९	सूरत	बम्बई	७२ ५२
१५०	मोलापुर	"	७५ ५६
१५१	हुन्दली	"	७२ १२
१५२	हैदराबाद	दक्षिणभारत	७८ ३०
१५३	होशंगाबाद	सी० पी०	७० ४५

मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतोंका स्वरूप

मुकुटसप्तमी तु श्रावणशुक्लसप्तम्येव प्राद्या, नान्दा तस्याम् आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य मुनिसुवतस्य च पूजा

विधाय कण्ठे मालारोप । शीर्षमुकुटञ्च कथितमागमे । भाद्र-
पदशुक्लासप्तमीव्रतमागमे निर्दोषसप्तमीव्रत कथितम् । सप्त
वर्गवधिर्यावत् अनयो, व्रतयो विधान कार्यम् ।

अर्थ—आवणशुक्ला सप्तमीको ही मुकुट सप्तमी कहा जाता है,
अन्य किसी महीनेकी सप्तमीका नाम मुकुट सप्तमी नहीं है । इसमें
आदिनाथ अथवा पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथका पूजन कर जयमाला
को भगवान्‌का भाद्रीचांद्र समझकर गलेमें धारण करना चाहिए । इस
व्रतको आगममें शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत भी कहा गया है ।

भाद्रपद शुक्ला सप्तमीके व्रतको आगममें निर्दोष सप्तमी व्रत कहा
जाता है । इन व्रतमें भी भगवान्‌ पार्श्वनाथकी पूजा करनी चाहिए ।
सात वपनक इन दोनों व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिए । पश्चात् उद्यापन
करना चाहिए ।

विशेष—आगममें आवणशुक्ला सप्तमी और भाद्रपद शुक्ला
सप्तमी इन दोनों तिथियोंके व्रतका विधान मिलता है । आवणशुक्ला
सप्तमी तिथिके व्रतको मुकुटसप्तमी या शीर्षमुकुट सप्तमी कहा गया है ।
इस तिथिको व्रत करनेवालेको पष्ठी तिथिसे ही सयम ग्रहण करना
चाहिए । पष्ठी तिथिको प्रातःकाल भगवान्‌की पूजा, अभिषेक करके प्रका-
शन करना चाहिए । मध्याह्नकात्ने सामायिकके पश्चात् भगवान्‌की
प्रतिमा या गुम्फे सामने जाकर सयमपूर्वक व्रत करनेका स्वरूप करना
चाहिए । चारों प्रकारके आहारका त्याग सोरह प्रहरके लिए भोजनके
समय ही कर देना चाहिए ।

सप्तमीको प्रातःकाल सामायिक करनेके पश्चात् नित्यक्रियाओंसे
निवृत्त होकर पूजा पाठ, स्वाध्याय, अभिषेक आदि क्रियाओंको करना
चाहिए । भाद्रपदनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी पूजा करनेके उपरान्त जय-
मालाको अपने गलेमें धारण करना चाहिए । मध्याह्नमें पुनः सामायिक
करना चाहिए । अपराह्णमें चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्रका पाठ करना
चाहिए । सन्ध्याकालमें सामायिक, आत्मचिन्तन और देवदशन आदि

त्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। तीनों बारकी सामायिक त्रियाओंके अनन्तर "ओं ह्रीं श्रीपादार्जुनाय नमः, ओं ह्रीं श्रीमुनिसुवत नाथाय नमः" इन दोनों मन्त्रोंका जाप करना आवश्यक है। इस मन्त्रका रातमें भी एक जाप करना चाहिए। अष्टमीको पूजन, अभिषेक और स्थाव्यापके अनन्तर उपयुक्त मन्त्रोंका जाप कर लंकाशन करना चाहिए। इस प्रकार सात वर्षों तक मुकुटसप्तमी व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापनकर व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

निर्दोष सप्तमी व्रत भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको करना चाहिए। इस व्रतमें पट्टी तिथिसंभव्य ग्रहण करना चाहिए। इस व्रतकी समस्त विधि मुकुटसप्तमीके ही समान है, अन्तर इतना है कि इसमें रात भी आगरणपूर्वक व्यतीत की जाती है अथवा रातके पिछले प्रहरमें अव्य निद्रा लेनी चाहिए। 'ओं ह्रीं ह्रीं सर्वेधिष्मनिशारफाय श्री शांतिनाथस्यामिने नमः स्याद्वा' इस मन्त्रका जाप करना होगा। कषाय, राग द्वेष मोह आदि विषयोंका भी त्याग करना अनिवार्य है, इस व्रतको इस प्रकार करना चाहिए किमते किसी भी प्रकारका दोष नहीं लगे। आत्मपरिणामाको निर्मल और विशुद्ध रखनेका प्रयास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि भी सात वर्ष है, पश्चात् उद्यापन कर छोड़ देना चाहिए।

श्रवण द्वादशी व्रतका स्वरूप

श्रवणद्वादशीव्रतस्तु भाद्रपदशुक्लद्वादश्या तिथौ नियते । अस्य व्रतस्याग्निं द्वादशशर्पपर्यन्तमस्ति । उद्यापनानन्तरं व्रत समाप्तिर्भवति ।

अर्थ—श्रवणद्वादशी व्रत भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको किया जाता है। यह व्रत बारह वर्ष तक करना पड़ता है। उद्यापन करनेके उपरान्त व्रत की समाप्ति की जाती है।

विशेष—श्रवण द्वादशी व्रतके दिन भगवान् वासुदेव स्वामीकी पूजा, अभिषेक और स्तुति की जाती है। निर्वर्तमित्तिक पूजा-पाठोंके

अनन्तर गाने याजेके साथ भगवान् धामपूज्य स्वामीकी पूजा करनी चाहिण । इस व्रतम चार बार—तीना सन्ध्याओं और रातमें हगभग दस बने ! 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्लृं श्रीवामपूज्यजिनेन्द्राय नमः स्याद्वा' इस मन्त्रका जाप करना चाहिण । प्रायः इस द्वादशी तिथिको श्रवण नक्षत्र भी पड़ता है, इसी कारण इस व्रतका नाम श्रवणद्वादशी पड़ा है । क्योंकि यह द्वादशी श्रवण नक्षत्रसे युक्त होती है । इस व्रतकी सामान्य विधि अन्य व्रतोंसे समान ही है, परन्तु विशेष यह है कि यदि श्रवण नक्षत्र त्रयोदशीको पड़ता हो या एकादशीमें ही आ जाता हो तथा द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका अभाव हो तो द्वादशीके व्रतके साथ श्रवण नक्षत्रके दिन भी व्रत करना चाहिण । यों तो प्रायः द्वादशी तिथिको श्रवण आ ही जाता है । ऐसा बहुत कम होता है, जब श्रवण एक दिन आते या एक दिन पीछे पड़ता है । द्वादशी तिथि व्रतके लिए छह घटी प्रमाण होनेपर ही प्रायः है ।

यदि कभी ऐसी परिस्थिति आवे कि श्रवण द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र न मिले, तो उस समय अस्तकालीन तिथि भी ग्रहण की जा सकता है । द्वादशीको प्रातःकालमें श्रवण नक्षत्रका होना आवश्यक नहीं है, किसी भी समय द्वादशी और श्रवणका योग होना चाहिए । ज्योतिष शास्त्रमें भाद्रपद शुक्ल द्वादशी और श्रवण नक्षत्रके योगको बहुत श्रेष्ठ बताया है । इसका कारण यह है कि श्रवण मासमें पूर्णिमाको श्रवण नक्षत्र पड़ता है तथा भाद्रपद मासमें पूर्णिमाको भाद्रपद नक्षत्र । द्वादशी श्रवण से संयुक्त होकर विशेष पुण्यकाल उत्पन्न करती है, क्योंकि श्रवण नक्षत्र मासवाली पूर्णिमाके पश्चात् प्रथम बार द्वादशीके साथ योग करता है, चन्द्रमा नीच राशिसे आगे निकल जाता है और अपनी उच्च राशिकी ओर बढ़ता है । द्वादशी तिथिको यों तो अनुराधा नक्षत्र श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु भाद्रपद मासमें श्रवण ही श्रेष्ठतम बताया गया है । इस कारण श्रवणसे संयुक्त द्वादशी कल्याणप्रद, पुण्यकारक और जीवन मार्गमें गति देनेवाली होती है । अपनी मासान्तकी पूर्णिमाके संयोगके पश्चात् श्रवण

प्रथम बार त्रिम किमी नियमों संयोग करना है, यही तिथि छेष्ट, पुण्यो रपादक और मंगलप्रद मानी जाती है। अथवा यही तिथि भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको ही आती है, अतः यह प्रत महान् पुण्यको देनेवाला बताया गया है।

अथवा द्वादशी प्रतका माहात्म्य जैनियोंमें जो बहुत अधिक माना गया है। इस प्रतको प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी सौभाग्य-वृद्धि, सन्तान प्राप्ति तथा अपनी पृथ्वी मंगल-कामनाम करती हैं। इस प्रतकी अवधि बारह वर्ष तक माना गयी है, बारह वर्ष तक विधिपूर्वक प्रत करनेके उपरान्त प्रतका उच्चापन करना चाहिए।

मुकुटमहमी, निर्दायमहमी और अथवा द्वादशी ये सब प्रत वर्षमें एक बार ही किये जाते हैं। जो तिथियाँ इनके दिन निश्चित की गयी हैं, उन उन तिथियोंमें ही उन्हें सम्पन्न करना चाहिए। अथवा द्वादशी प्रतके दिन वामपुत्र भगवान् के पञ्चक्याणवोंका चिन्तन करना चाहिए।

जिनरात्रिप्रतका स्वरूप

जिनरात्रिप्रत फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदाभारम्भ कृष्णपक्षचतुर्दश्यामुपजान्ता या वेवलं तस्यामेवोपघात एवं तयवर्षाणि यायत् या चतुर्दशार्पाणि।

अर्थ—जिनरात्रिप्रतमें फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासं भारम्भ कर चतुर्दशी वर्षान्त उपवास करने चाहिए। प्रत्येक उपवासके बीचमें एक दिन पारणा करना चाहिए। अथवा केवल फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको ही उपवास करना चाहिए। इस प्रतकी अवधि ९ वर्ष या १४ वर्ष प्रमाण है। अर्थात् प्रथम विधिसं करनेपर भी वर्षके अनन्तर उच्चापन करना चाहिए और द्वितीय विधिसे करनेपर चौदह वर्षके पश्चात् उच्चापन करना चाहिए।

विशेष—जिनरात्रि प्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यताके अनुसार यह प्रत फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे भारम्भ किया जाता है। प्रथम उपवास प्रतिपदाका करनेके उपरान्त द्वितीयाको पारणा,

तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको पारणा, सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नौमीको उपवास, दशमीको पारणा, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा एवं त्रयोदशी और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए । इस प्रकार नौ वष तक पालनकर व्रतका उद्यापन कर देना चाहिए ।

दूसरी मान्यता यह है कि केवल पारगुन बड़ी चतुर्दशीको उपवास करे, मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का पञ्चाभूत अभिषेक करे तथा अष्ट त्रयमे त्रिकाल पूजन करे । तीनों समय नियमन सामायिक और स्वाध्याय करे । रात्रिसे धर्मध्यान पूर्वक जागरण सहित व्यतीत करे । 'ओ ह्रीं त्रिकाल चतुर्विंशतिनीर्यकरेभ्यो नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप रातको करना चाहिए तथा दृष्टद्वयभूस्तोत्रका पाठ भी करना चाहिए । रात्रिसे पूर्वाह्नमें आलोचनापाठ पढ़ना, मध्यभागमें मन्त्रका जप करना और अन्तिम भागमें महल नामका स्मरण करना चाहिए । यह विधि विशेष रूपसे ब्राह्म है, सामान्य विधि सभी धर्मोंमें समान की जाती है, जिससे कपाय और त्रिक-धार्ष्ट्य मिलती है । उपवासके अगले दिन अतिथिको आहार करानेसे उपराम्भ शय आहार ग्रहण करना तथा सुपात्रको चारों प्रकारका दान देना चाहिए । इस प्रकार १४ वर्ष तक व्रत करनेसे उपरान्त उद्यापन करना चाहिए । इस दूसरी विधिके अनुसार व्रत वषम एक बार ही किया जाता है ।

मुक्तावली व्रतका स्वरूप

मुक्तावल्यास्तु नरोपवासो माद्रपदे शुक्ला सप्तमी, आश्विने कृष्णाष्टमी, त्रयोदशी, आश्विने शुक्ला एकादशी, कार्तिके कृष्णा द्वादशी, कार्तिके शुक्ला तृतीया, शुक्ला एकादशी, मार्गशीर्षे कृष्णाद्वादशी, शुक्लपक्षे तृतीया चेति नरोपवासो स्यात् ।

अर्थ—मुक्तावली व्रतमें नौ उपवास प्रतिवर्ष किये जाते हैं । पहला उपवास माद्रपद शुक्ला सप्तमीको, दूसरा आश्विन कृष्णाष्टमीको, तिसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ

कार्तिक कृष्ण द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ल तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ल एकादशीको, आठवाँ मागशीर्ष कृष्ण एकादशीको और नौवाँ मागशीर्ष शुक्ल तृतीयाको करना चाहिँ । उपवासके पहले और अगले दिन एकाशन करना चाहिँ । यह शेष मुताबली व्रतकी विधि है । यह व्रत मुकुन्दली व्रतमें कुल २५ उपवास और ९ पारणार्थ की जाती है ।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

रत्नत्रय तु भाद्रपदवैशमाशुहपक्षे च द्वादश्या धारण क्षेत्रमक्त च त्रयोदश्यादिपूर्णिमान्तमष्टम कार्यम्, तद्भागे यथाशक्ति काञ्जिकादिकं, दिनद्वयो तदधिकृत्या फायम् । दिन द्वानो तु पूर्वदिनमारभ्य तदन्त कार्यमिति पूरकमो शेषः ।

अर्थ—रत्नत्रय व्रत भाद्रपद, चैत्र और माघ मासमें किया जाता है । इन महीनोंके गुरुपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रत धारण करना चाहिँ तथा एकाशन करना चाहिँ । त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको उपवास करना, तीन दिनका उपवास करनेकी शक्ति न हो तो काजी आदि लेना चाहिँ । रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक व्रत करना एवं एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे एक व्रत समाप्ति पर्यन्त उपवास करना चाहिँ । यहाँपर भी तिथिहानि और तिथिवृद्धिमें पूरे व्रत का समाप्तना चाहिँ ।

विशेष—रत्नत्रय व्रतके लिए मरप्रथम द्वादशीको शुद्धभाषसे खानादि श्रिया करके स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर त्रिनेत्र भगवान्का पूजन अभिषेक करे । द्वादशीको इस व्रतका धारणा और प्रतिपदाको पारणा होती है । अतः द्वादशीको एकाशनके पश्चात् चारों प्रकारके आहारका त्याग कर, विकथा और कण्ठियोंका त्याग करे । त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको प्रोषण तथा प्रतिपदाको त्रिनाभिरेखादिने अनन्तर किसी अतिथि या किसी दुःखिननुमुक्षितको भोजन कराकर एक बार आहार ग्रहण करे । अपने घरमें ही जयवा चौपालमें जिन विम्बके निकट रत्नत्रय व्रतकी भी स्थापना करे ।

द्वादशीमें ऐश्वर्य प्रतिपदा तक पाँचों ही त्रिणाको विशेष रूपसे धर्म-
ध्यान पूर्वक व्यतीत करे। प्रतिदिन त्रैशक्तिक सामायिक और रसत्रय
विधान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें
'ॐ ह्रीं सद्यग्दर्शनशानचारित्र्येभ्यो नमः' इमं मन्त्रज्ञा जाप करना
चाहिए। इस व्रतको १३ वर्ष तक पालनेके उपरान्त उद्यापन कर देना
चाहिए। यह व्रतकी उत्कृष्ट विधि है, इतनी शक्ति न हो तो चेला करे
तथा भाठ वर्ष व्रत करके उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम
विधि है। यदि इस मध्यम विधिको सम्पन्न करनेकी भी शक्ति न हो
तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको एकाशन ण्य चतुर्दशीको प्रोषध करना
चाहिए। यह अधम्य विधि है, इस विधिसँ निये गये व्रतका तीन या
पाँच वर्षके बाद उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रतमें पाँच दिन तक
शीतव्रतका पालन करना आवश्यक है।

रसत्रय व्रतके दिनोम तिथिवृद्धि या तिथिहास हो तो पहलेके समान
व्रत व्यवस्था समझनी चाहिए। एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन
अधिक और एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना
चाहिए। व्रत तिथिका प्रमाण छ घटी ही उद्यकालमें ग्रहण किया
जायगा।

अनन्तव्रत विधि

अनन्तव्रते तु एकादश्यामुपवास द्वादश्यामेकभक्त त्रयो
दश्या पात्रिक चतुर्दश्यामुपवासस्तद्भावे यथा शक्तिस्तथा
कार्यम्। दिनदानिवृद्धो स एव व्रतं स्मर्त्तव्यम्।

अर्थ—अनन्त व्रतमें भाद्रपद शुक्ला एकादशीको उपवास, द्वादशी-
को एकाशन, त्रयोदशीको कांजा—'ग्रह अथवा छालमें जी, बानराके आटेकी
मिलाकर महेरी—एक प्रजारकी कढ़ी बनाकर खेना और चतुर्दशीको
उपवास करना चाहिए। यदि इस विधिके अनुसार व्रत पालन करनेकी
शक्ति न हो तो शक्तिके अनुसार व्रत करना चाहिए। तिथि हानि या
तिथि वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त मम ही अग्रगत करना चाहिए अर्थात् तिथि

हानिमें एक दिन पहलेसे और तिथि-वृद्धिमें एक दिन अधिक प्रत करना होता है ।

विशेष—अनन्तघन भादों सुदी एकादशीस आरम्भ किया जाता है । प्रथम एकादशीको उपवास कर द्वादशीको एकाशन कर अर्धान् मौन सहित स्वाद सहित प्रायुक्त मोनन ग्रहण करे, मात प्रकारके गृहस्थाके अनन्तराष्टका पालन परे । त्रयोदशीको भिनभिषेक, चतुर्दशी परे पश्यान् छच्छ या छच्छमें जी, वाचराके आटेसे बनाई गह महेरी—एक प्रकारकी कड़ीका भरकर छे । चतुर्दशीके दिन प्रोषण करे तथा सोना, चाँदी या—रेशम सुनका अनन्त बनावे, जिसमें चौदह गौंड लगावे ।

प्रथम गौंड पर ऋषभनाथसे लेकर अनन्ततन्त्र तक चौदह तीर्थहरोंके नामों का उच्चारण, दूसरी गौंड पर सिद्धपरमेष्ठीके चौदह गुणोंका चिन्तन, तीसरी पर उन चौदह मुनियोंका उच्चारण जो मति श्रुत अवधिमानके धारी हुए हैं, चौथी पर अद्वैत भगवान् के चौदह देवगुण अनिशायना चिन्तन, पाँचवीं पर भिनवाणाके चौदह पूर्वोंका चिन्तन, छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका चिन्तन, सातवीं पर चौदह मागगाओंका स्वरूप, आठवीं पर चौदह जीवसमासोंका स्वरूप, नौवीं पर गंगादि चौदह नदियोंका उच्चारण, दसवीं पर चौदह राज् प्रमाण जैसे लोकका स्वरूप, बाराहवीं पर चक्रवर्त्ताके चौदह राजोंका, बारहवीं पर चौदह स्वर्गोंका, तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका एवं चौदहवा गौंड पर आनन्दस्तर

१ तपसिद्धि, विनयसिद्धि, समयसिद्धि, चारित्र्यसिद्धि, भुताभ्यास, निर्वचनार्थक भाव, ज्ञान, यज्ञ, दर्शन, धीम, शुभ्रतन, अमराहनन, अगुरुगुण, अयाराधन ।

२ गृहपति, सेनापति, गिल्सी, पुरोहित, स्त्री, हाथी, घोडा, चक्र, अति (तलवार), छत्र, दण्ड, मणि, चम, काजिणी । काकिणी रत्नका विशेषता यह होती है कि इससे बठोरसे बठोर वस्तु पर भी लिखा जा सकता है, इससे सूखे प्रकाशसे भी तेज प्रकाश निकलता है ।

अनन्तव्रत हिन्दुओंमें भी प्रचलित है। उनसे यहाँ कहा गया है कि "अनन्तस्य त्रिणोगराधनार्थं" अर्थात् विष्णु भगवान्की धाराधनके लिए अनन्त चतुर्दशी व्रत किया गया है। बताया गया है कि भदों सुदी चौदमरे दिन स्नानादिके पश्चात् अर्घ्यान् दूर्घा, तथा शुद्ध मृतसे बने और हृद्ग्राम रगे हुए पादह गौके अनन्तका सामान स्नानर हवन किया जाना है। त पश्चात् अनन्तदेवका ध्यान करके शुद्ध भान्तरा दाहिनी भुजामें बाँधे हैं। इस ग्राम प्राय एक समय भोजन—दिना समक—भीठा भोजन किया जाता है।

आतरेयके सम्प्रथम यह कहा प्राय लोकमें प्रचलित है कि जिस समय सुविष्टिर अपना सब राज-पाट हारकर वनवास कर रह थे, उस समय कृष्ण उतरे मित्रने आये। उसकी वदरथा सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें अनन्त व्रत करनेकी राय दी। आश्विमे आदेशानुसार सुविष्टिर अनन्त व्रत करने समय कहासे मुक्ति पा गये। इस व्रतके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है।

वैतानाममें प्रतिपादित अनन्त व्रतकी हिन्दुओंके अनन्त व्रतानुष्ठान करनेपर यह निरूपित किया है कि यह व्रत हिन्दुओंमें जनोंमें ॥ किया गया है तथा जनोंके विरक्त विधिपूर्वक व्रतका यह वक्षिष्ठ और सरल अंश है।

मेघमाला और पौडशकारण व्रतोंकी विधि

मेघमालापौडशकारणव्रतद्वय समाप्त प्रतिपद्विमेय द्वयो वारम्भ मुख्यतया करणीयम्। एताच्चा विशेष पौडशकारण तु आश्विनकृष्णा प्रतिपदा एव पूर्णामिषेकाय गृहीता भवति, इति नियमः। कृष्णपञ्चमी तु नाम्न एव प्रसिद्धा।

अर्थ—मेघमाला और पौडशकारण व्रत दोनों ही समान हैं। दोनोंका आरम्भ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है। परन्तु पौडशकारण व्रतमें द्विती विशेषता है कि इसमें पूर्णामिषेक आश्विन-कृष्णा प्रतिपदाको होता है, ऐसा नियम है। कृष्णा पञ्चमी तो नामसे ही प्रसिद्ध है।

धिरेचन—सोलह कारण प्रत प्रमिद्ध हो है। मेघमाला प्रत भादों सुदी प्रतिपदामे लेकर आश्विन यदी प्रतिपदा तब ३१ त्रितक किया जाता है। प्रतके प्रारम्भ करनेके दिन ही जिनालयके आँगाम मिहाया स्थापित करे अथवा कलशको सरकृत कर उसके उपर धाल रखकर, धालमें जिनविम्व स्थापित कर मङ्गलपत्र और पूजन करे। श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत ही चन्नेवा बाँधे, मेघधाराके समान १००८ कण्ठासे भगवान् अभिषेक करे। पूजापाठके पश्चात् 'ओं ह्रीं पञ्चपद्मेष्टिभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

मेघमाला प्रतमें सात उपवास कुर किये जाते हैं और २४ दिन एकाशन करना होता है। तीनों प्रतिपदाओंके तीन उपवास, दोना अष्टमियाके दो उपवास प्रब चोना चतुर्दशियोंके दो उपवास इस प्रकार कुल सात उपवास किये जाते हैं। इस प्रतको पाँच वर्ष तक पालन करनेके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस प्रतकी समाप्ति प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रतिपदाकी होती है। सोलह कारणका प्रत भी प्रतिपदाकी समाप्ति किया जाता है, परन्तु इसकी विशयता है कि सोलह कारणका समय और शील आश्विनकृष्णा प्रतिपदा तक पालन करना पड़ता है तथा पञ्चमीको ही इस प्रतकी पूरा समाप्ति समझी जाती है। यद्यपि पूरा अभिषेक प्रतिपदाकी ही हो जाता है, परन्तु नाममात्रके लिए पञ्चमी तक समयका पालन करना पड़ता है।

अष्टाहिका प्रतकी विधि

अष्टाहिकाप्रत कार्त्तिकफाल्गुनापादमासेषु अष्टमीमारभ्य पूर्णिमान्त भवतीति। वृद्धाजघिक्षतया भवत्येव, मध्यतिथिहासे सप्तमीतो दान कार्य भवतीति। तद्यथा सप्तम्यामुपवासोऽष्टम्या पारणा नवम्या काशिक दशम्यामचमोदार्यमित्येको मार्ग सुगम सूचित जघन्यापेक्षया तदादिदिनमारभ्य। पूर्णिमान्त कार्य पटोपवास पद्मदेवगाय्यसमादरे भव्यपुण्डरीके :

प्रतानि समाप्तानि ।

अर्थ—अष्टाद्विका व्रत कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासोंके गुरु पक्षोंमें अष्टमीसे पूर्णिमा तक किया जाता है। तिथि-वृद्धि हो जानेपर एक दिन अधिक करना पड़ता है। व्रतके तिनोँके मध्यमें तिथिदास होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है। जैसे मध्यम तिथिदास होनेसे सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नवमीको काशी-छाछ, दशमीको अनोदर, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा, त्रयोदशीको मीरम, चतुर्दशीको उपवास, पूर्व सन्धि होनेपर पूर्णिमाको उपवास, शनिके अमावसे अनोदर तथा प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। यह सरल और जयम्य विधि अष्टाद्विका व्रतकी है। व्रतकी उत्कृष्ट विधि यह है कि अष्टमीसे पद्योपवास भयात् अष्टमी, नवमीका उपवास दशमाको पारणा, एकादशी और द्वादशीको उपवास त्रयोदशीको पारणा एवं चतुर्दशी और पूर्णिमाको उपवास और प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। श्री पद्मप्रभदेवके वचनाका भाव्य करनेवाले भूष्यतीर्थोंको उक्त विधिसे व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार कतापी गुरु विधिसे जो व्रत नष्ट करते हैं, उनकी व्रत विधि दूषित हो जाती है और व्रतका फल नहीं मिलता। इस प्रकार साधवि व्रतका निरूपण पूरा हुआ।

विधेय—कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मासके गुरुपक्षमें अष्टमी से पूर्णिमा तक आठ दिन यह व्रत किया जाता है। सप्तमीके दिन व्रतकी पारणा करनी होती है। प्रथम त्रि श्री जिनन्द्र भगवान्का अभिषेक पूजन सम्पन्न किया जाता है, तत्पश्चात् गुरुके पास, यदि गुरु न हों तो जिन विग्रहके सम्मुख निम्न सकलपत्रों पढ़कर व्रत ग्रहण किया जाता है।

व्रत ग्रहण करनेका सूक्त—

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मते मासानां मासो-
त्तमे मासे आषाढमासे शुक्लपक्षे सप्तम्या तिथौ धामरे



जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यवण्डे प्रदेशे नगरे एतत्
 अयसर्पिणीकालाग्रमानचतुर्दशप्राभृतमानिमानितमकल्लोकन्य -
 ग्रहारे श्रीगोतमस्वामिश्चेतिश्वरमश्वमण्डलेश्वरममाचरितमन्मा-
 र्गाग्रशेषे वीरनिर्गणसवत्सरे अष्टमहाप्रातिहार्यादिशोभित-
 श्रीमदर्हत्परमेश्वरप्रतिमासन्निधौ अहम् अष्टाद्विंशव्रतस्य स्वरूप
 करिष्ये । अस्य व्रतस्य समाप्तिपर्यन्त मे सायद्यत्याग गृहस्था-
 श्रमजन्यारम्भपरिग्रहादीनामपि त्यागः ।

सप्तमी तिथिसे प्रतिपदा तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना आवश्यक
 होता है, भूमिपर क्षया, संचित पदार्थोंका त्याग, अष्टमीको उपवास,
 रात्रिको जागरण आदि भियाँ की जाती है ।

अष्टमी तिथिको दिनमें नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल मँडकर अष्ट-
 पूता की जाती है । पूज वाढने अनन्तर नन्दीश्वर व्रतकी कथा पढ़नी
 चाहिये । 'ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपजिनालयस्थजिनत्रिम्बेभ्यो नमः'
 इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिये । नवमीको 'ओं ह्रीं अष्ट-
 महात्रिभुतिसंज्ञायै नमः' इस महामन्त्रका जाप, दशमीको 'ओं
 ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप, एकादशीको 'ओं ह्रीं
 चतुर्मुपसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप, द्वादशीको 'आ ह्रीं पञ्चमहा-
 लक्षणसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप, त्रयोदशीको 'आ ह्रीं स्यर्गलोपान-
 संज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप, चतुर्दशीको 'ओं ह्रीं सिद्धचक्राय
 नमः' मन्त्रका जाप एवं पूणमासीको 'ओं ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञायै
 नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिये ।

व्रतकी धारणा और समाप्तिके दिन जमोकार मन्त्रका जाप करना
 चाहिये । व्रत समाप्तिके दिन निम्न स्वरूप पढ़कर सुपाई पैसा या
 नारियल पैसा चढ़ाकर भगवान्को नमस्कार कर घर आना चाहिये—

'ओं आद्यानाम् आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे शुभे श्रावणमासे
 कृष्णपक्षे अद्य प्रतिपदाया श्रीमदर्हत्प्रतिमासन्निधौ पूर्वं यद्व्रत
 गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये—अहम् । प्रमादाज्ञानवशात्

घटे जायमानदोषा शान्तिमुपयान्ति—ओं ह्रीं क्ष्मीं स्वाहा ।
थ्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु ध्यानन्दमक्षि सदास्तु, समाधिमग्ण
भवतु, पापविनाशन भवतु—ओं ह्रीं असि था उ सा य नम ।
सर्वशान्तिर्मवतु स्वाहा ।

दैवसिक व्रतोंका वर्णन

दैवनिशानि कानि भवन्ति ? त्रिमुक्ताशुद्धिद्वाराऽलोकन
जिनपूजापात्रदानव्रतप्रतिभाषोपादीनि व्रतानि भवन्ति ।

अर्थ—दैवसिक कौन कौन व्रत है ? त्रिमुक्ताशुद्धि, द्वारावलोकन,
जिनपूजा, पात्रदान, प्रतिभाषोपादि दैवसिक व्रत हैं ।

त्रिमुक्ताशुद्धि व्रतकी विधि

किंनाम त्रिमुक्ताशुद्धिव्रतम् ? त्रिमुक्ताशुद्धिव्रते पात्रदाना
नन्तर भोजनग्रहण भवति । तदभावे, आहारस्याप्यभावे एव
मुक्ताशुद्धितश्चो नियमो दैवस्तिथौ भवति ।

अर्थ—त्रिमुक्ताशुद्धि व्रत किसे कहते हैं ? आचार्य उत्तर देने हैं कि
त्रिमुक्ताशुद्धि व्रतमें पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण किया जाता है । यदि
द्वारावेक्षण करनेपर भी पात्रकी प्राप्ति न हो तो उस दिन आहार नहीं
दिया जाता है । यह त्रिमुक्ताशुद्धि व्रतक नियम दिनमें ही किया जाता है,
भग्न यह दैवसिक व्रत कहलाता है ।

विवेचन—त्रिमुक्ताशुद्धि व्रतका वास्तविक अभिप्राय यह है कि
पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण करनेका निश्चय करना और दिनमें तीसरा
बार—प्रातः, मध्याह्न और अपराह्नम द्वारापर गन्धे होकर पात्रकी प्रतीक्षा
करना तथा पात्र उपलब्ध हो जाने पर आहारदान देनेके उपरान्त आहार
ग्रहण करना होता है । यह व्रत कभी भी किया जा सकता है, इसके
लिए किसी तिथि या मासका विधान नहीं है । जब तक पात्रदान नहीं
दिया जाता है, उपवास करना पड़ता है ।

द्वारावलोकन व्रत

द्वारावलोकनव्रते तु दिनयाममर्यादा कार्या, द्वौ यामो यावत् द्वागमवलोकयामि तावत् मुनिरागतश्चेत् तस्मै आहार दत्वा पश्चादाहार ग्रहीष्यामि । इति द्वारावलोकनव्रतम् ।

अर्थ—द्वारावलोकन व्रतमें दिनमें दो प्रहरका नियम करके द्वार पर खड़े होकर मुनिराजके आनेकी प्रतीक्षा करना, यदि इस बीचमें मुनि राज आ जायें तो उन्हें आहार करानेके पश्चात् आहार ग्रहण करना होता है । इस प्रकार द्वारावलोकन व्रत पूरा हुआ ।

त्रिवेचन—द्वारावलोकन व्रतमें दो प्रहरका नियमकर द्वारपर खड़े हो जाना और मुनि या ऐष्टक, क्षुत्कृच्छ्रे आनेकी प्रतीक्षा करना । यदि दो प्रहरोंके मध्यमें मुनिराज आ जायें तो उन्हें आहार करा देनेके पश्चात् आहार ग्रहण करना । मुनिराजके न मिलनेपर ऐष्टक या क्षुत्कृच्छ्रको आहार करा देना होता है ।

इस व्रतमें दो प्रहरका ही नियम रहता है, यदि दो प्रहरतक कोई पात्र नहीं मिले तो स्वयं भोजन कर लेना चाहिए । दो प्रहरतक निरन्तर पात्रकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, विधिपूर्वक सज्जामतिसे युक्त होकर पात्रको भोजन कराया जाता है । पात्रके न मिलनेपर किसी साधर्म्य भाईको भी भोजन करानेसे उपरान्त इस व्रतवालेको आहार ग्रहण करना चाहिए । यदि कोई भी उपयुक्त अतिथि उम दिन न मिले तो दीन सुमुक्षितोंको ही आहार कराना उचित होता है । यद्यपि दो प्रहरके अनन्तर व्रतकी मर्यादा पूरी हो जाती है, फिर भी किसी भी प्रकारके पात्रको आहार करानेसे उपरान्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिए ।

जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति

व्रतोंका स्वरूप

जिनपूजाप्यष्टद्रव्यै यदा विधानेन परिपूर्णा भवेत् तदाहार ग्रहीष्यामि, इति सकल्प । जिनपूजाविधानाख्यव्रतम् । एवमेव

जिनदर्शननियमस्तथा गुरुभक्तियोगस्तथा शास्त्रमनियमस्तथा
कार्य ।

अर्थ—इन प्रकारका नियम करना कि विधिपूर्वक भट्टदम्पोंमें जिन
पूजा पूर्ण करनेपर अहार ग्रहण कर्होग, जिनपूजा विधान मत है । इसी
प्रकार जिनदर्शन कराना नियम करना, गुरुभक्ति करनेका नियम करना
एवं शास्त्रभक्ति—स्वाध्याय करनेका नियम करना, जिनदर्शन, गुरुभक्ति
एवं शास्त्रमनि मत है ।

धिये उन—अपने कार्य करनेके नियमको मत कहते हैं, मगर ही हम
परिभाषाके अनुसार जिनपूजा, जिनदर्शन, गुरुभक्ति, शास्त्राध्याय आदि
के नियमोंको भी मत कहा गया है । इन मतोंमें इनका ही मक्य्य करना
पड़ता है कि पूजा, दर्शन, गुरुभक्ति या शास्त्र स्वाध्यायको सम्पन्न करने
मात्रन ग्रहण कर्होगा । अपने स्वकर्मके अनुसार उपर्युक्त धार्मिक कृत्योंको
सम्पन्न करनेपर अहार ग्रहण किया जाना है । इन मतोंके लिए कोई
लिपि या मात्र निश्चय नहीं है, यदि मनु ही देवपूजा देवदर्शन, गुरु-
भक्ति और स्वाध्याय जैसे धार्मिक कार्योंको करना चाहिए ।

अगममें जीवन भरके लिए ग्रहण दिये गये मनुकी वन मनु और
अव्यक्तिक मनुकी नियम मनु बनायी गयी है । आ जीवन भरके लिए
एक धार्मिक कृत्याका नियम करनेमें अवसर ही उन्हें कुछ समयके
लिए अवश्य नियम करना चाहिए । यों ता आवश्यकताका कारण है कि
यह अपने दैनिक पद कर्मोंका पालन करे । देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय,
संयम, तप और दानके कार्य प्रत्येक मनुष्यके लिए करणाय है, मत
इनका नियम जीवन भरके लिए कर लेना आवश्यक है । इन करणीय
कार्योंके किये बिना काह आवश्यक नहीं कहा जा सकता है । आचार्यने इन
आवश्यक कृत्योंकी मत संज्ञा हमालिए बनाया है कि जो सर्वदाके
लिए इनका पालन करनेमें अपनेको अवसर्य समझते हैं वे भा इनके
पालन करनेकी ओर हुरे । जब एक बार इन कृत्योंकी ओर प्रवृत्ति हो जाय
तदा आत्मा अन्नमुर्गी हो जाय तो फिर इन मतोंके पालनमें कोई भी
कठिनाई नहीं है ।

दैनिष्ठ पट्कर्म करनेसे आत्मामें अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है तथा आत्मा शुभोपयोग रूप परिणतिको प्राप्त होता है । यात यह है कि आत्मा की तीन प्रभारसी परिणतियाँ होती हैं—शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग रूप । चैतन्य, आनन्द रूप आत्माका अनुभव करना, इसे स्वतंत्र अल्पद्वन्द्व समझना और पर पदार्थोंमें इसे सर्वथा शून्य अनुभव करना शुद्धोपयोग है । कपायाको मन्द करके अथात् भक्ति, दान, पूजा, वैद्यावृत्त्य, परोपकार आदि कार्य करना शुभोपयोग है । पूजा, दान, स्वाध्याय आदिमें उपयोग—जीवकी प्रवृत्ति विशेष शुद्ध नहीं होती है, शुभ रूप हो जाती है । तीव्र कपायोद्भूत परिणाम, विषयोंमें प्रवृत्ति, तीव्र विषयानुराग, भातपरिणाम, असत्य भाषण, हिंसा, अपकार आदि कार्य अशुभोपयोग हैं । जिनपूजाव्रत, जिनदशनव्रत, गुरुभक्तिव्रत एव स्वाध्याय व्रत करनेसे जीवकी शुभोपयोगकी प्राप्ति होती है तथा कालान्तरमें शुद्धोपयोग भी प्राप्त किया जा सकता है । और आत्मशोध भी प्राप्त होता है, जिससे राग द्वेष, मोह आदि दूर किये जा सकते हैं । अहंकार और ममकार जिनके कारण इस जीवकी ससारमें अनादिरालसे भ्रमण करना पड़ रहा है, दूर किये जा सकते हैं । अतः उपयुक्त व्रतोंका अवश्य पालन करना चाहिये ।

पात्र-दान और प्रतिमायोग व्रत का स्वरूप

प्रतिदिन पात्रदान कार्यम् । यदि पात्रदान न स्यात्तदा रसपरित्याग कार्यम् । प्रतिमायोग कायोत्सर्गादिकं यथाशक्ति नियमं देवसिद्धि कार्यं इत्यादीनि देवसिद्धिव्रतानि ।

अर्थ—प्रतिदिन पात्रदान करनेका नियम लेना पात्रदान व्रत है । यदि प्रतीक्षा और द्वारापेशण करनेपर भी पात्र नहीं मिले तो रसपरित्याग करना चाहिये ।

शक्तिके अनुसार कायोत्सर्ग आदिका नियम दिनके लिए लेना प्रतिमायोग व्रत है । इस प्रकार देवसिद्धि व्रतोंका पालन करना चाहिये । उपयुक्त त्रिगुणशुद्धि आदि सभी व्रत देवसिद्धि हैं

चित्रेचन—गृहस्थको अपनी आर्जित सम्पत्तिमेंसे प्रतिदिन दान देना आवश्यक है । जो गृहस्थ दान नहीं देता है, पूजा प्रतिष्ठाम सम्पत्ति खर्च नहीं करता है, उसकी सम्पत्ति निरर्थक है । धनकी साधकता धर्मोन्नतिके लिए धन व्यय करनेमें ही है, भोगके लिए खर्च करनेमें नहीं । अपना उदर पोषण तो गूकर-कूकर सभी करते हैं, यदि मनुष्य जन्म पाकर भी हम अपने ही उदर-पोषणमें लगे रहे तो हम गूकर-कूकरसे भी बदतर हो जायेंगे । जो केवल अपना पेट भरनेके लिए आश्रित है, जिसके हाथसे दान पुण्यके कार्य कभी नहीं होते हैं, जो मानव सेवाम कुछ भी खर्च नहीं करता है, दिन-रात भिमकी मृगणा घन एकत्रित करनेके लिए बगती जाती है, ऐसे व्यक्तिकी लाशको कुत्ते भी नहीं खाते हैं । अतएव मायेक गृहस्थके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक दान दे तथा कुछ तपश्चर्या भी करे ।

याम्नादिक तपः तो हृष्यशर्भोंका रोकना ही है, या भिमको कुछ समयकी अवधिकर कायोत्सग करना भी तप है । अन्यासके लिए कायोत्सग आदिका भी नियम करना तथा अपनी भोगोपभोगकी लाहसाशर्भोंको घटाना जीवनको उन्नतिकी ओर ले जाना है ।

नैशिक व्रत

नैशिकानि चतुराद्वारविजर्जन स्त्रीसेवनविजर्जन रात्रिभुक्ति विजर्जनञ्चेत्यादीनि , खाद्य स्वाद्य ऐशपेयभेदानि चतुर्भिधान्य शानानि त्याज्यानि, चेतत् निशाभुक्तिपरित्याग व्रत त्रिविध्यते । स्त्रीसेवनविजर्जन च यावज्जीवन यम नियमश्चेति मासदिन सख्यामत्र फर्त्तव्य । रात्रिमकप्रते तु दिवसे स्त्रीसेवनविजर्जन यमनियमविभागतया करणीयम् । भोगोपभोगपरिमाणप्रते तु ताम्बूलपुष्पमालादीत्याभूषणवस्त्रादीना नियम सदैव निशि कार्य , एव नैशिकनियम इत्यादीनि नैशिकानि व्रतानि ।

अर्थ—नैशिक व्रताम रातम चारों प्रकारके आहारोंका त्याग पर

खीमेवनना त्याग करना होता है। आहार चार प्रकारके हैं—खाद्य, स्वाद्य, लेद्य, पेय। जिस भोजनको दाँतोंसे काटकर खाते हैं वह खाद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघनेका त्याग करना, लेद्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनसे अलावा दिधामैथुनना भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभर के लिए त्याग करना यम और कुण्ड मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमं पान, पुण्यमाला, शक्या, आभूषण और वस्त्र आदिना नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक सव्यार्थ भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, शेषका त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैशिक व्रत है। इस प्रकार ये नैशिक व्रत कहे गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी पुण्यचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी रूपचतुर्दशी-कनकावली रत्नावली पुष्पाञ्जलिलिखिविधानकार्य - निर्जगादीनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुण्यचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, कनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लिखिविधान और कार्यनिजरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिधावणभाद्रमाश्विनकार्तिर्मास शुक्लचतुर्दशीपर्यन्त कार्या, सेया यथा पञ्चमासचतुर्दशी; वृद्धती मास मास प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी ता पर्यन्त कार्या, पञ्चोपरासा । व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूपचतुर्दशी-

मारभ्य कार्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्त दशोपवासा पार्या, भवन्ति ।

अर्थ—पञ्चमासचतुर्दशी आपाद, आषण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको घट करना कहलाता है । इस घटमें प्रायः महीनमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीका उपवास करना पड़ता है । पाँच ही उपवास किये जाते हैं । विशेष रूपसे आपाद, आषण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशियोंका उपवास करना, इस प्रकार उक्त पाँच महीनामें दश उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शालचतुर्दशीके उपवासाको भी शामिल करना पञ्च चतुर्दशी घट है । आपाद मासकी अष्टाद्विकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और आषण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं । पञ्चमासचतुर्दशीका प्रारम्भ शालचतुर्दशीसे किया जाता है ।

विशेषतः—मामिक घट उन घनोंका कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक-दो महानेक किये जायें । मामिक घट प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं । कुछ घट ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमें करने पड़ते हैं । आपादने ऊपर पञ्चमास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखा है । प्रथम मान्यतामें आपादमें लेकर कार्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ल चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है । इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं ।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनामें दस उपवास करनेकी पञ्चमासचतुर्दशी घट बताया गया है । इन दस उपवासात्मक शीलघट चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके घट भी शामिल कर लिये गये हैं । आपाद सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलघटका पालन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है । शीलघटकी महत्ताको दिव्यगनेके कारण ही इस घटको शीलचतुर्दशी घट कहा गया है । शील चतुर्दशीके करनेवालेको 'ओं

स्त्रीसेवनमा त्याग करना होता है। आहार चार प्रकारके हैं—राद्य, स्वाद्य, ऐद्य, पेय। जिस भोजनको दूँतोंसे काटकर खाते हैं वह राद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघोका त्याग करना, ऐद्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनके भलाया दिषामैधुनका भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभर के लिए त्याग करना धर्म और कुछ मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें पान, पुष्पमाला, वाद्यया, आभूषण और वस्त्र आदिका नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक सख्यामें भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, सोपना त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैतिक व्रत है। इस प्रकार वे नैतिक व्रत बड़े गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी पुष्यचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी रूपचतुर्दशी फनकावली रत्नावली पुष्पाञ्जलिलक्ष्मिविधानकार्य - निर्जरादीनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुष्यचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, फनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लक्ष्मिविधान और कार्यनिजरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिधावणभाद्रभाश्विनशस्तिमास शुक्लचतुर्दशीपर्यन्त कार्या, श्रेया यया पञ्चमासचतुर्दशी, बृहती मास मास प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी ता पर्यन्त कार्या, पञ्चोपमासा । व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूपचतुर्दशी-

मारभ्य कार्तिक शुक्लचतुर्दशीपर्यन्त दशोपवासा कार्या, भवन्ति ।

अर्थ—पञ्चमासचतुर्दशी आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रत करना कहलाता है । इस व्रतमें प्रत्येक महीनेमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीका उपवास करना पड़ता है । पाँच ही उपवास किये जाते हैं । विशेष रूपसे आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशियोंका उपवास करना, इस प्रकार उक्त पाँच महीनोंमें दश उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शीलचतुर्दशीके उपवासोंको भी शामिल करना पञ्च चतुर्दशी व्रत है । आषाढ़ मासकी अष्टादशिकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और श्रावण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं । पञ्चमासचतुर्दशीमा मारभ्य शीलचतुर्दशीसे किया जाता है ।

त्रिरेखन—मासिक व्रत उन व्रतोंको कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक दो महानेक किये जायें । मासिक व्रत प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं । कुछ व्रत ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमें करन पड़ते हैं । आचार्यने ऊपर पञ्चमास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखी हैं । प्रथम मान्यतामें आषाढ़सँ लेकर कार्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ल चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है । इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं ।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करनेको पञ्चमासचतुर्दशी व्रत बताया गया है । इन दस उपवासाओंमें शीलव्रत चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके व्रत भी शामिल कर लिये गये हैं । आषाढ़ सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलव्रतका पाठन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है । शीलव्रतकी महत्ताको दिखलानेके कारण ही इस व्रतको शीलचतुर्दशी व्रत कहा गया है । शील चतुर्दशीने करनेवालेको 'आँ

ह्रीं निरतिचारशीलव्रतधारणेभ्योऽनन्तमुनिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतके करनेवालेको त्रयोदशीसे शील व्रत धारण करना होता है और पूगमायी तक निरतिचार रूपसे व्रतका पालन करना होता है।

रूप चतुर्दशी आरण मुदी चतुर्दशीको कहते हैं। इस चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना पड़ता है तथा भगवान् आदिभायसा पूजन अभिषेक कर उन्हींके अतिशय रूपसा दशन करना चाहिए। अथवा किसी भी तीर्थंकरकी प्रतिमाका पूजन अभिषेक कर उनके रूपसा दशन करना चाहिए। इस व्रतकी भी पूर्णिमाको पारणा करनी पड़ती है। इसके लिए 'ओं ह्रीं श्रीनमोभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना होता है।

कनकावली व्रतकी विशेष विधि

कनकावस्था तु आश्विनशुक्ले प्रतिपत्, पञ्चमी, दशमी, कार्तिरुष्णपक्षे द्वितीया, षष्ठी, द्वादशी चेति, यय एतद्विद्यसेषु सर्वेषु मासेषु चोपवासमा द्विसप्ततिं कार्या, इय द्वादशमासमवा कनकावली। कस्यापि मासस्य शुक्लकृष्णपक्षयोः पञ्चपञ्चासा कार्या, एषा मायधिका मासिका कनकावली।

अर्थ—कनकावलीमें आश्विनशुक्ला प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इतने प्रकार छ उपवास करने चाहिए, इसी प्रकार सभी महीनोंमें कुल ७२ उपवास किये जाने हैं। यह बारह महीनोंमें किये जानेवाला कनकावली व्रत है। किसी भी महीनेमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी उपयुक्त तिथियोंमें ॥ उपवास करना सातधिक मासिक कनकावली व्रत है।

विशेष—यद्यपि कनकावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है, परन्तु यहाँपर इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि आचार्य सिंहनन्दीने श्रावणसे आरम्भ न कर आश्विनमाससे प्रारम्भ करनेका विधान किया है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा

कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी द्वितीया, पही और द्वादशी इस प्रकार छ उपवास किये जाते हैं। आषाढके मतानुसार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी तीन तिथियाँ तथा प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी तीन तिथियाँ लेनी चाहिए। मन्म गणना अमावस्यामें लेकर अमावस्यनुक ली जाता है। एक वर्षमें कुल ७२ उपवास करने पड़ते हैं। मासिक कनकावलीमें केवल छ उपवास किये जाते हैं। मास गणना अमान्त ली जाता है।

रत्नावलीव्रतकी विधि

वनपावली चैत्रमें रत्नावली, सत्यामासिनशुक्ले तृतीया पञ्चमी, अष्टमी, कार्तिकरूप्ये द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी पर एतद्विषयेषु नवेषु मासेषु द्विसप्ततिरुपवासार्था कार्या। प्रत्येक मासे षडुपवास भवन्ति। इय द्वादशमासमया रत्नावली। सावधिका मासिका रत्नावली न भवति।

अर्थ—कनकावली व्रतके समान रत्नावली व्रत भी करना चाहिए। इसमें भी आश्विन शुक्ला तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, तथा कार्तिक कृष्णा द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी इस प्रकार प्रत्येक महानमें छ उपवास करने चाहिए। बरह महीनोंमें कुल ७२ उपवास उपयुक्त तिथियोंमें हो करने पड़ते हैं। यह द्वादश मासवाली रत्नावली है। सावधिक मासिक रत्नावली भग नहीं होता है।

विशेष—कनकावलीके समान रत्नावली व्रतमें भी मास गणना अमावस्यामें ग्रहण की गयी है। अमान्तमें लेकर दूसरे अमान्त एक मास माना जाता है। व्रतका आरम्भ आश्विनके अमान्तके पश्चात् किया जाता है तथा कनकावली और रत्नावली दोनों व्रतोंके लिए वर गणना आश्विनके अमान्तमें ग्रहण की जाता है। रत्नावली व्रत मासिक नहीं होता है, वार्षिक ही किया जाना है। प्रत्येक महीनेमें उपयुक्त तिथियोंमें छ उपवास होते हैं, इस प्रकार एक वर्षमें कुल ७२ उपवास हो जाते हैं। उपवासके दिन अभिषेक, पुजन आदि कार्य पूर्ववत् ही

किये जाते हैं। 'ओं ह्रीं त्रिकालसम्पन्न्यचतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप इन दोनों व्रतोंमें उपवासके दिन करना चाहिए।

पुष्पाञ्जलि व्रत की विधि

पुष्पाञ्जलिस्तु भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीमारभ्य शुक्लान्त मीपर्यन्त यथाशक्ति पञ्चोपवासा भवन्ति ॥

अर्थ—पुष्पाञ्जलिव्रत भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी से नवमी पर्यन्त किया जाता है। इसमें पाँच उपवास अपनी शक्तिके अनुसार किये जाते हैं।

विधेयन—भाद्र सुदी पञ्चमीसे नवमी तक पाँच दिन पंचमर की स्थापना करके चौपास तीर्थरोंकी पूजा करनी चाहिए। अभिषेक भी प्रतिदिन किया जाता है। पाँच अष्टक और पाँच जयमाळ पढ़ी जाती है। 'ॐ ह्रीं पञ्चमेष्टसम्पन्न्यशीतिजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्र का प्रतिदिन तीन बार जाप किया जाता है। यदि शक्ति हो तो पाँचों उपवास, अन्यथा पञ्चमीको उपवास, शेष चार दिन रस त्याग कर प्रकाशन करना चाहिए। रात्रि जागरण त्रिपथ कपायोंको अट्टर करनेका प्रयत्न एवं आरम्भ परिग्रहका त्याग करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। विकृषाओंकी कहने और मुनिरा त्याग भी इस व्रतके पालनेवालेको करना आवश्यक है। इस व्रतका पालन पाँच वर्षतक करना चाहिए, तपश्चात् उष्णपन करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

लब्धिविधान व्रतकी विधि

लब्धिविधानस्तु भाद्रपदमाघचैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्य तृतीयापर्यन्त दिनत्रयं भवति। दिनद्वानौ तु दिनमेकं प्रथमं पार्यम्, तृतीया एव प्रथमं स्मर्तव्य ॥

अर्थ—भाद्रपद, माघ और चैत्र मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक तीन दिन पर्यन्त लब्धिविधान व्रत किया जाता है। तिथि हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है और तिथि वृद्धि

होनेपर पहलेवाला क्रम अर्थात् वृद्धिपक्ष तिथि छ घण्टासे अधिक हो तो एक दिन व्रत अधिक करना चाहिए ।

विशेष—भादों, भाद्र और चैत्र सुदी प्रतिपदासे तृतीयातक हरिविधान व्रत करनेका नियम है । इस व्रतकी धारणा पूर्णिमाको तथा पारणा चतुर्थीको करनी होता है । यदि शक्ति हो तो तीनों दिनोंका अष्टमोपवास करनेका विधान है । शक्तिके अभाव में प्रतिपदाको उपवास, द्वितीयाको ऊनोदर एवं तृतीयाको उपवास या कांजी—छाछ या छाछने निर्मित महेरी अथवा मादभात लेना होता है । व्रतके दिनोंमें महावीर रक्षामीकी प्रतिमाका पूजन, अभिषेक किया जाता है तथा 'ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नमः' मन्त्रका एक प्रतिदिन तीन बार किया जाता है । विक्रम सामाजिक कालका भी विधान है । रात्रि जागरण तथा रत्नोत्र पाठ, भजन-गान आदि भी व्रतके दिनोंकी रात्रियोंमें किये जाते हैं ।

आवश्यकता पड़ने अथवा आनुकूलता होनेपर मध्यरात्रिमें अल्प निद्रा ली जा सकती है । कषाय और आरम्भ परिग्रहको घण्टा, विद्युत्पात्रोंकी चर्चाया त्याग करना एवं धर्मध्यानमें लीन होना आवश्यक है ।

कर्मनिर्जर व्रत की विधि

कर्मनिर्जरस्तु भाद्रपदशुक्लामेकादशीमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्त भवति । हानिवृद्धौ च स एव प्रथम ज्ञातव्यः ।

धर्म—कर्मनिजराव्रत भाद्र सुदी एकादशीमें लेकर भादों सुदी चतुर्दशीतक चार दिन किया जाता है । तिथि हानि और तिथि वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही व्रतकी व्यवस्थाके लिए ग्रहण किया गया है ।

विशेष—कर्मनिजरा व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यता भाद्र सुदी एकादशीसे लेकर चतुर्दशी तक व्रत करनेकी है । दूसरी मान्यताके अनुसार आपाद सुदी चतुर्दशी, भाद्रपद सुदी चतुर्दशी, भादों सुदी चतुर्दशी एवं आश्विन सुदी चतुर्दशी इन चार तिथियों

को व्रत करने की है । ये चारों उपवास क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपके हेतु एक वर्षके भीतर किये जाते हैं । व्रतके दिनोंमें सिद्ध भगवान्की पूजा की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं समस्तकर्मरहिताय सिद्धाय नमः' अथवा 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन ध्यानचारित्रतपसे नमः' मन्त्रका जाप व्रतके दिनोंमें तीन बार करना होता है । निव्यपूजा, चतुर्विंशतिजिनपूजा, विशेषतः सिद्धपूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं सामग्रीविशेषविद्वलेपिताशेषकर्ममलकलकतया मासिद्धिकात्यन्तिकमिन्द्राविशेषाविर्भागादभिन्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टरूपिशिष्टाम् उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकविद्यमत्कारमात्रपरमन्त्रपरमानन्देकमयीं निष्पीतानन्तपर्यायतयैक किञ्चिदनयन्तास्त्राद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरम्भरनिर्मर कौटस्थमधिष्ठिता परमात्मनामाससारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठता मङ्गललोकोत्तमशरणभूताना सिद्धपरमेष्ठिना स्तघन करोमि" मन्त्रको पढ़ दोनों हाथोंसे पुष्पांकी वर्षा करते हुए सिद्धि पर भेष्टीका स्तुति करना चाहिए ।

ज्ञानपचीसी और भावनापचीसी व्रतोंकी विधि

ज्ञानपञ्चविंशतिव्रते एकादश्यामेकादशोपवासा चतुर्दश्या चतुर्दशोपवासा कार्या भवन्ति । मन्तान्तरेण दशम्या दशोपवासा पूर्णिमाया पञ्चदशोपवासा कार्या भावनापञ्चविंशतिव्रते तु प्रनिपदायामेकोपवास द्वितीयाया द्वौ उपवासा, तृतीयाया त्रय उपवासा, पञ्चम्या पञ्चोपवास, षष्ठ्या षडुपवासा अष्टम्यामष्टौ उपवासा कार्या भवन्ति । मन्तान्तरेण दशम्या दशोपवासा पञ्चम्या पञ्चोपवासा, अष्टम्यामष्टौ उपवासा प्रतिपदाया द्वौ उपवासा, कार्या भवन्ति । एषा सम्यक्त्वपञ्चविंशतिका मूढत्रय मदाद्व्याष्टौ अनायतनानि षट् अष्टौ शकादयो दोषा, इत्येषा निवारणार्थं कर्त्तव्या । उपवासादीना मासनिश्चयाग्राह्यः ।

अर्थ—जानपक्षीमी घतमें एकादशी तिथि के ग्यारह उपवास और चतुर्दशी तिथि के चौदह उपवास किये जाते हैं । भगवान्तरमे इस घतमें दशमी के दस उपवास और पूर्णिमा के पन्द्रह उपवास किये जाते हैं ।

भाषणपक्षीमी घतमें प्रतिपदाम एक उपवास, द्वितीया तिथिमें दो उपवास, तृतीया में तीन उपवास, पञ्चमी तिथिमें पाँच उपवास, षष्ठी तिथिमें छ उपवास और अष्टमी तिथिमें आठ उपवास किये जाते हैं । भगवान्तरमे दशमी तिथिमें दस उपवास, पञ्चमामें पाँच उपवास, अष्टमा में आठ उपवास और प्रतिपदामें दो उपवास किये जाते हैं । यह भावना पक्षीमी घत तीन मूढ़ता, भ ड मड, छ जनापतन और आठ शकादि दोषोंको दूर करनेके लिए किया जाता है । इनके उपवास करनेके लिए तिथि, नाम आदिका नियम प्रायः नहीं है । अर्थात् यह घन किसी भी मासमें किसी भी तिथिमें प्रारम्भ किया जा सकता है । जानपक्षीमी और भाषणपक्षीमी दाना ॥ घतोंमें पक्षाम-पक्षीम उपवास किये जाते हैं । प्रथम जान प्राप्ति के लिए और द्वितीय सम्पदादानको निर्दोष बननेके लिए किया जाता है ।

चित्रेचन—पक्षीमी घत कह प्रकारसे किये जाते हैं । प्रधान दो प्रकारके पक्षीमी घत हैं—जानपक्षीमी और भाषण-पक्षीमी घाटा उद्देश्य द्वादशी जिनराजाकी आराधना है तथा सम्पत्तानदी प्राप्ति उमरा पछ है । जानपक्षीमी घतमें प्रधान रूपसे धुनज्ञानरा पूजा तथा धुतरबन्ध बन्धका अभिषेक किया जाता है । इस घतमें ग्यारह अंगोंके जानके लिए ग्यारह एकादशिकाके उपवास और चौदह पूर्वोंके ज्ञानके लिए चौदह चतुर्दशिकाके उपवास किये जाते हैं । उदाहरण—आषाढ सुदी चतुर्दशी को पहला उपवास, भाद्रपदा एकादशीको दूसरा, भाद्रा वदी चतुर्दशीको तीसरा, भाद्रा सुदी एकादशीको चौथा, भाद्रा सुदी चतुर्दशीको पाँचवाँ, आश्विन वदी एकादशीका छवाँ, आश्विन वदी चतुर्दशीका सातवाँ, आश्विन सुदी एकादशीको आठवाँ, आश्विन सुदी चतुर्दशीको नौवाँ, कार्तिक वदी एकादशीका दसवाँ, चतुर्दशीको ग्यारहवाँ, कार्तिक सुदी एकादशीको

हः णमो लोए मव्व साहूण' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। उपवासके पहले और पिछले दिन एकाशन करना होता है।

माससावधिक व्रतोंका कथन

माससावधिरानि ज्येष्ठजिनवरसूत्रचन्दनपट्टीनिर्दोषसप्तमी-
जिनगात्रिमुक्तावलीरत्नप्रयानन्तमेघमालापोडशकारणशुक्लपञ्च -
म्यष्टाह्निकादीनि।

अर्थ—माससावधिक ज्येष्ठजिनवर, सूत्रमन, चन्दनपट्टी, निर्दोष सप्तमी, जिनगात्रि, मुक्तावली, रत्नप्रय, अनन्त, मेघमाला, शुरुचपञ्चमी और अष्टाह्निका आदि हैं।

ज्येष्ठजिनवर व्रतकी विधि

ज्येष्ठशुक्लपक्षे प्रतिपदि ज्येष्ठशुक्ले प्रतिपदि चोपवास, आपादकृष्णस्य प्रतिपदि चोपवास, एवमुपवासत्रय करणीयम्, ज्येष्ठमासस्यायशेषदिवसेष्वेकाशन करणीयम्, एतद्व्रत ज्येष्ठजिन्नरव्रत भवति। ज्येष्ठप्रतिपदामारभ्यापादकृष्णाप्रतिपत् पर्यन्त भवति।

अर्थ—ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा, ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा और आपादकृष्णा प्रतिपदा, इन तीनों तिथियोंमें तीन उपवास करने चाहिये। ज्येष्ठ मासके शेष दिनाम एकाशन करना होता है। इस व्रतका नाम ज्येष्ठजिनवर व्रत है। यह ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आपाद कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है।

विशेष—ज्येष्ठजिनवर व्रत ज्येष्ठके महीनेम किया जाता है। यह व्रत ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता और आपाद कृष्णा प्रतिपदाको समाप्त होता है। इसमें प्रथम ज्येष्ठवदी प्रतिपदाको प्रोषण किया जाता है, पश्चात् कृष्ण पक्षके शेष १४ दिन एकाशन करते हैं। पुन ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदाको उपवास और शेष १४ दिन एकाशन तथा आपाद वदी प्रतिपदाको उपवासकर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

ज्येष्ठजिनगर व्रतमें मिट्टीके पाँच कलशोंसे प्रतिदिन भगवान् आदि-
नाथका अभिषेक करना चाहिए। 'ओं ह्रीं श्रीज्येष्ठजिनाधिपतये
नमः कलशस्थापनं करोमि' इस मन्त्रको पढ़कर कलशोंकी स्थापना
की जाती है। पाँच कलशोंमेंमें चार कलशा द्वारा अभिषेक स्थापनके
समय ही किया जाता है और एक कलशमें जयमाला पहनेके अनन्तर
अभिषेक होता है। इस व्रतमें ज्येष्ठजिनगरकी पूजा की जाती है। 'ओं
ह्रीं श्रीरूपमजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना होता है।
ज्येष्ठ मासभर तीना समय सामायिक करना, भस्मचर्चका पालन एवं शुद्ध
और अल्प भोजन करना आवश्यक है।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि

जिनगुणसम्पत्तां तु प्रतिपद् पौडशोपवासा पञ्चम्या पञ्चो
पचासा अष्टम्या अष्टौ उपवासा दशम्या दशोपवासा चतुर्द
श्या चतुर्दशोपवासा, षष्ठ्या षडुपवासा, चतुर्दश्याश्चत्वार
उपवासा, एव त्रिपष्टि उपवासा भवन्ति। ज्येष्ठमासरूपेण
श्रीयप्रतिपद्मारभ्य व्रत त्रियते यावत्त्रिपष्टि स्यादेव नियमो
नेव क्षायते पूर्णोपवासस्यैव श्रुतेऽप्युपदेशदर्शनात्। अन्येषां
पृथक्भूतता स्पष्टाचिसम्भता।

अर्थ—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें प्रतिपदके सोलह उपवास, पञ्चमाके
पाँच उपवास, अष्टमीके आठ उपवास, दशमीके दस उपवास, चतुर्दशाके
चौदह उपवास, षष्ठीके छ उपवास और चतुर्थीके चार उपवास, इस
प्रकार कुल ६३ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठ मासमें कृष्णपक्ष
की प्रतिपदमें आरम्भ होता है। ६३ उपवास समाप्त किये जायें,
ऐसा नियम नहीं है। जिस तिथिके उपवास किये जायें उनका पूर्ण
करना आवश्यक है, एक तिथिके उपवास पूरा हो जानेपर दूसरी तिथिके
उपवास स्वेच्छामें किये जा सकते हैं।

निवेदन—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें ६३ उपवास करनेका विधान
है। हममें पौडशकारणके सोलह उपवास, पञ्च परमेष्ठाके पाँच, अष्ट

प्रातिहायके आठ और चौतीस अतिशया—दस जन्म, दस वैवलज्ञान और चौदह देववृत्त अतिशयोंने चौतीस उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठवदी प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। ६३ उपवास एक साथ लगातार करनेकी शक्ति न हो तो सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, जो कि षोडशस्मरणने व्रत कहे जाते हैं, के करनेके पश्चात् पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, जो कि पञ्च परमेष्ठीने गुणोंकी स्मृतिके लिए किये जाते हैं, करने चाहिये। इन उपवासोंके पश्चात् आठ प्रातिहार्योंकी स्मृतिके लिए आठ अष्टमियाँके आठ उपवास एक साथ तथा चौतीस अतिशयाके, स्मृतिकारक दस दशमियोंके दस उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, छ पष्टियोंके छ उपवास और चार चतुर्थियोंके चार उपवास इस प्रकार कुल (१४ + १० + ६ + ४ = ३४) उपवास एक साथ करने चाहिये।

जिनगुणमग्नपति व्रतमें उपवासके दिन गृहारम्भका त्याग कर पूजन, अभिषेक करना चाहिये तथा आरम्भके सोलह उपवासोंमें 'ओं ह्रीं तीर्थंकरपदप्राप्तये दर्शनत्रिशुद्ध्यादिषोडशस्मरणेभ्यो नमः' पञ्च परमेष्ठीके उपवासोंमें "ओं ह्रीं परमपदस्थितेभ्यो पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः" आठ प्रातिहार्योंके उपवासोंमें 'ओं ह्रीं अष्टप्रातिहार्यमण्डिताय तीर्थंकराय नमः' और चौतीस अतिशयोंके उपवासोंके लिए "ओं ह्रीं चतुर्दशदतिशयसहितेभ्य अर्हद्भ्य नमः" मन्त्रोंका जाप किया जाता है। व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करा दिया जाता है।

चन्दन पष्ठीव्रतकी विधि

चन्दनपष्ठ्या तु भाद्रपदकृष्णा पष्ठी ग्राह्या, पङ्कधर्पाणा यावत् व्रतं भवति, अत्र चन्द्रप्रभस्य पूजाभिषेकः कार्यम्।

अर्थ—चन्दनपष्ठी व्रत भाद्रों वदी पष्ठीको होता है, छ वर्षतक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें चन्द्रप्रभ भगवान्का पूजन, अभिषेक करना चाहिये।

विवेचन—भादों वदी पक्षको उपवास चारण करे । चारों प्रकारके आहारका त्यागकर तिनालयमें भगवान् चन्द्रप्रभका पूजन, अभिषेक करे । उ प्रकारके उत्तम प्रासुक पत्तोंसे उ अष्टक चढ़ावे । णमोकार मन्त्रका १०८ बार पूलोंसे जाप करना चाहिए । चारों प्रकारके सघको आहार, औषध, जमय और जान इन चारों दानोंको देना चाहिए । तीनों काल सामायिक, अभिषेक, पूजन और रात्रिजागरण करना चाहिए । रातको स्तोत्र, भजन, आशेषना एवं प्राथनार्थ पढ़ते हुए धर्मप्राप्त्यर्थक विज्ञाना चाहिए । उपवासके दिन गृहारम्भ, विषय कपाय और विरुधाओंका त्याग करना चाहिए । यह उ यपक किया जाता है ।

रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता

यथा शुक्लकृष्णपक्षयो पञ्चदशदिनेषु अष्टम्या चतुर्दश्या द्वयोपवास सधैर नोभोग्यनिमित्तं स्त्रिय सप्तविंशतिनक्षत्रेषु रोहिण्याप्यनक्षत्रे उपवास पुर्व्यमिति ॥

अर्थ—जिस प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके पन्द्रह-पन्द्रह दिनोंमें प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए सप्तविंश नक्षत्रोंमेंसे रोहिणी नक्षत्रका उपवास करती हैं ।

रोहिणीव्रतका फल

रोहिणीव्रतोपवासस्य किं फलमिति चेत्तदुक्त योगीन्द्रदेवै -

दीपद् दिग्माद् जिणवरद् मोहद् होर ॥ ठाड ।

अह उवयासहि रोहिणिहि सोड धिपलद् जाड ॥^१

अर्थ—रोहिणी व्रतके उपवासका क्या फल है? आचार्य योगीन्द्र देवने फल यन्त्रसे हुए कहा है—

जिनेद्र भगवान्को दीप भक्षनेस मोहको स्थान नहीं मिलता अथात्

मोह नष्ट हो जाता है तथा रोहिणी व्रतके उपवाससे शोक भी प्रलयको पहुँच जाता है । अभिप्राय यह है कि रोहिणी व्रत करनेमें सभी प्रकारके शोक, दारिद्र्य आदि नष्ट हो जाते हैं ।

रोहिणीव्रतकी व्यवस्था

तथा व्रतदेवै प्रोक्त चेति—

यस्मिन् दिने समायाति, रोहिणीम मनोहरम् ।

तस्मिन् दिने व्रत कार्यं न पूर्यस्मिन् परत्र वा ॥

अर्थ—जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उसी दिन व्रत करना चाहिए । आगे पीछे व्रत करनेका कुछ भी फल नहीं होता है । रोहिणी नक्षत्र व्रत ग्रन्थे नहींनेमें एकवार किया जाता है ।

यदा रोहिणी न स्यात् कृत्तिकामृगशीर्षां स्त तयोर्मध्ये किं करणीय स्यादित्याह—काले यदि रोहिणीकाया प्रोपध न स्यात्, तदा स निष्फल स्यात् कालेन विना यथा मेघ ।

यामदेवे प्रोक्तमिदं यावत् काल म स्यात् तावत् काल फलेतु भद्रतथम्, न तु दैवसिक्तासु नियम प्रोक्त मुनीद्वारे, अर्थात् यावत् रोहिणी तावत् सर्वेषां त्याग कार्यं । पारणादिने तदुत्तरान्तर च पारणा कर्त्तव्या । एतदेव शुक्लपञ्चमीष्टण्णपञ्चमीजिनगुणसम्पत्तिज्येष्ठजिनवरकवल्लभान्द्रायणादयो ज्ञातव्या । रोहिणी तु त्रिपर्षा स्यात्, पञ्चपर्षा सप्तपर्षा च संप्रोक्ता यस्मूनन्यादिसूरिमि, आदिशब्देन सकल मीर्तिछत्रसेन सिंहनन्दिमल्लिपेणहरिपेणपद्मदेवयामदेवैः संप्रोक्ता ग्राह्या । अन्येऽप्याधुनिका दामोदरदेवेन्द्रकीर्त्तिहेमकीर्त्यादयश्च श्रेया ।

अर्थ—यदि व्रतके दिन रोहिणी न हो अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका क्षय हो कृत्तिका और मृगशीर्ष हों तो क्या करना चाहिए ; इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होनेपर आचार्य कहते हैं कि यदि समयपर रोहिणी व्रतका प्रोपध नहीं किया जायगा तो, उसका फल कुछ भी नहीं होगा । जिस

प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे उस वर्षसे कुछ भी लाभ नहीं होगा, उसी प्रकार असमयमें व्रत करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता है ।

वामदेव आचार्यने भी कहा है कि जब रोहिणी नक्षत्र हो तभी व्रत करना चाहिए । आचार्योंने दैवसिद्ध व्रतोंके लिए यह नियम नहीं बताया है, अर्थात् जिन दिन रोहिणी हो उस दिन व्रत करना, अन्य नक्षत्रोंमें व्रत नहीं किया जाता है । रोहिणीके अनन्तर अर्थात् मृगशिर नक्षत्रमें पारणा की जाती है । मुख्यपञ्चमी, कृष्णपञ्चमी, चित्रगुणसम्पत्ति, ज्येष्ठ त्रिंशत्, कवचचाम्पायण आदि मन्त्रोंको इसी प्रकार मातायधि समझना चाहिए ।

रोहिणी व्रत तीन वर्ष, पाँच वर्ष या सात वर्ष प्रमाण किया जाता है, वेमा वसुनन्दी, सकलकीर्ति, उग्रसेन, सिंहनन्दि, मखिलपेण, हरिपण, पद्मदेव, वामदेव आदि आचार्योंने कहा है । अन्य अर्वाचीन आचार्य वामोदर, देवेन्द्रकीर्ति, हेमकीर्ति आदिने भी इसी बातको बतलाया है ।

चित्रेचन—रोहिणी व्रत प्रतिमास रोहिणी नामक नक्षत्र जिन दिन पड़ता है, उसी दिन किया जाता है । इस दिन चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें जाकर धर्मध्यानपूर्वक सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, पूजन, अभिषेकमें समयको लगाया जाता है । शक्तनुसार दान भी करनेका विधान है । इस व्रतकी अवधि साधारणतया पाँच वर्ष पाँच महानेकी है, इसके पश्चात् उद्यापन कर देना चाहिए ।

रोहिणी व्रतके समयका निश्चय करते हुए आचार्यने कहा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र ज़िम्मी भी दिन पञ्चांगमें एकदो घन्टी भी हो तो भी व्रत उक्त दिन किया जा सकता है । जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो गणितके हिसाबके कृत्तिकाकी समाप्ति होनपर रोहिणीके प्रारम्भमें व्रत करना चाहिए । मृगशिर अवकाश कृत्तिकाको व्रत करना निषिद्ध है, इन नक्षत्रोंमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है । जयन्त सूरीन्द्र्य कालमें रोहिणी नक्षत्र मिले तबतक अस्तकालीन रोहिणी नक्षत्र नहीं ग्रहण

करना चाहिए। यद्यपि आगे आचार्य छ घटी प्रमाण ही नक्षत्र ग्रहण करनेके लिए विधान करगे, पर छ घटीके अभावमें षण् दो घटी प्रमाण भी उदयकालीन रोहिणी ग्रहण किया जा सकता है।

रोहिणी व्रतकी अन्य व्यवस्था

तथान्ये प्रोक्त रोहिण्या दशलक्षणरत्नत्रयषोडशकारणव्रत-
यत् रसघटिकाप्रमाण ग्राह्यमिति अन्यत् देवनन्दिमुनिभिः प्रोक्त
यत् दिवसे क्षीणे नियमस्तुते कार्या, दिवसे तस्मिन्नेव हि
चतुष्टयोपलम्भात्। ते के इति चेदाह—निर्वाणफार्तिकोत्सव
मालोत्सवधूपोत्सवयात्रोत्सवयस्तूत्सवाः। चतुष्टय किमिति
चेदाह—द्रव्यकालक्षेत्रभावायमिति श्रुतसागरे प्रोक्त, अन्यै-
रपि प्रोक्त तद्यथा—

आदिमध्यायसानेषु हीयते तिथिरुत्तमा।

आदौ व्रतविधि कार्यः प्रोक्त श्रीमुनिपुङ्गवै ॥

आदिमध्यान्तमेदेषु व्रतविधिर्विधीयते।

तिथिहासे तदुक्तः श्रौतमादिगणेभ्यरे ॥

अर्थ—अन्य आचार्योंने भी कहा है कि रोहिणी नक्षत्रका प्रमाण दश-
लक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण व्रतके समान छ घटी प्रमाण ग्रहण करना
चाहिए। देवनन्दि आचार्यने और भी कहा कि—दिनहानि होनेपर—
रोहिणी नक्षत्रका अभाव होनेपर उसी दिन व्रत, नियम करना चाहिए,
क्योंकि पूर्वाचार्योंके षड्धर्मोंमें व्रत तिथिका निर्गम करते समय चतुष्टय
शब्दकी उपलब्धि होती है। निवाण, द्वीपमालिका उत्सव, धूपोत्सव,
यात्रोत्सव, वस्तु उत्सव आदि व्रताके निर्णयमें भी आचार्यने चतुष्टय शब्द-
का व्यवहार किया है। श्रुतसागर आचार्यने चतुष्टय शब्दका अर्थ द्रव्य,
क्षेत्र, काल और भाव लिया है। अन्य आचार्योंने भी व्रत व्यवस्थाके लिए
कहा है—

यदि व्रतके दिनोंमें आदि, मध्य और अन्तके दिनोंमें कोई तिथि
घट जाय, तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए, ऐसा श्रेष्ठ मुनिगाने

कहा है । तिथि हास होने पर आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें व्रत विधि की जाती है अर्थात् तिथिहास होनेपर एकदिन पहले व्रत किया जाता है । इस प्रकार गौतम आदि श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है ।

त्रिवेचन—रोहिणी व्रतके दिन रोहिणी नक्षत्र छ घटी प्रमाणसे अक्ष हो तो भी देश, काल आदिके भेदसे आचार्योंने व्रत करनेका विधान किया है, अतः रोहिणी व्रत करना चाहिए । रोहिणी व्रतके लिए एक दो घटा प्रमाण नक्षत्रको भी उदयकालमें ग्रहण किया गया है । कुछ आचार्यों का यह मत है कि रोहिणी नक्षत्रके क्षीण होनेपर भी व्रत उम्मी दिन करना है अर्थात् कृत्तिकाके उपरान्त और श्रृंगशिराके पूरका जिनका समय है, वही व्रतकाल है । रोहिणी व्रत यों तो एश्वर्य, सुख आदिकी वृद्धिके लिए स्त्री पुरुष दोनों ही करते हैं, पर विशेषतः इस व्रतसे स्त्रियाँ करती हैं । इस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको माँमाग्य, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य आदि अनेक फलोंकी प्राप्ति होती है । इस व्रतमें उपवासके दिन तीनों समय 'ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जप करना चाहिए ।

जिनको उपवास करनेकी क्षक्ति न हो वे स्वयं ग्रहण कर अल्पभोजन करें, या काजी अथवा माड भात लें । व्रतके दिन पञ्चांगव्रतोंका पालन करना, कर्ण्य और विक्रयाभाको छोड़ना आवश्यक है । शृंगशिर नक्षत्रमें पारणा करना एव कृत्तिकामें व्रतकी धारणा करनेसे व्रतविधि पूरा मानी जाती है ।

अत्राप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं मुहूर्त्तत्रयवाहिनीं च ।

धर्मेणु कार्येषु धदन्ति पूर्णा तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीश ॥

इति चामुण्डरायणस्य तथा च तन् पुराणेष्वेवमुक्तम्—

व्रतानां दिनेशा दिनेशः प्रदीपे किलादां च मध्येऽपसाने तथेय ।

तथा मुख्ययज्ञं गृहीत्वा प्रकार्यं विधानं व्रतानां समुक्तं मुनीशे ॥

आदितः दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत् मध्यतः दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत्, अतः दिनक्षयेषु अथ विधि न विधीयते ।

उक्तं च—

तिथीना क्षये द्विप्रितुर्यादिमाना

न चै तद्व्रताना तिथिश्चेत्प्रयाति ।

दिनेनेऽवशिष्टे व्रत कार्यमादौ

गृहीत्वा दिन तत्प्रपूर्णा तिथिं च ॥ १ ॥

तिथीना सुवृजो द्विप्रितुर्यादिमाना

व्रताना दिनेष्वेव कार्यं विधानम् ।

यदा कौऽपि मर्त्या मरणेन सह ॥

तदा तेषु कार्यं विधानं बुधोक्तम् ॥ २ ॥

इति चामुण्डरायपुराणे रोहिण्युत्सवनिर्वाणशर्त्तिकामि-
पेकोत्सवे यानोत्सवे चस्तुत्ये च विधानम् ॥

अर्थ—जिस तान मुहूर्तगली तिथिसे प्राप्तकर शुभ अरत होता है, उस तिथिको व्रतने जाता व्रमादि कार्योंमें पूरा मानते हैं। इस प्रकार चामुण्डरायने कहा है, चामुण्डरायपुराणमें और भा कहा गया है—

व्रतोंके दिनोंमें आदि, मध्य या अन्तम तिथिका हास हो तो मुख्य दिनको लेकर व्रत विधान करना चाहिए। इस प्रकार श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

आदिमें तिथि क्षय हो या मध्यमें तिथि क्षय हो तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। अन्तम तिथि क्षय होनेपर यह विधि नहीं की जाती है। कहा भी है—

दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिके क्षय होनेपर, पूर्व दिन में व्रत करने चाहिए तथा पूरा दिनसे ही व्रतविधि सम्पन्न की जाती है।

यदि दो-तीन या चार दिनके व्रतोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो जाय तो, व्रत मरणक दिनमें ही व्रतविधि पूर्ण करनी चाहिए। परन्तु आचार्यों-ने यह विधान किसी रोगी, दुःखी व्यक्तिके लिये किया है। स्वस्थ और सुखी व्यक्तिको तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार चासुण्डरायपुराणमें रोहिणी-उत्सव, निवाण कार्तिकोत्सव, यात्रा-उत्सव, वस्तु उत्सव आदिने लिए विधान किया है।

विशेष—रोहिणी व्रतने लिए उन्वयकालमें रोहिणी नक्षत्र छ घड़ी अथवा हममें अरुण प्रमाण भी हो तो उसी दिन रोहिणीव्रत करना चाहिये। यदि उदयकालमें रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो एक दिन पहले व्रत किया जायगा। यों तो सभी व्रतोंके लिए यही नियम है कि तिथिक्षयमें एक दिन पूरमें व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करनेका विधान है। चासुण्डरायपुराणके अनुसार रोगी, बुद्ध और अयमर्थ व्यक्तियोंका तिथिवृद्धि हमेशापर नियत दिन प्रमाण ही व्रत करना चाहिए। रोहिणीव्रत निरु एक दिनका होता है, अतः इस व्रतमें उदयकालमें छ घड़ीका नियम प्रायः मान्य होता है। हाँ, कभी कभी एक या घड़ी प्रमाण उदयमें रोहिणीके रहनवर भी व्रत किया जाता है।

दिने कृते च छिन्ने याऽच्छिन्ने तत्र च निश्चयः ।

क्षेत्रकालादिमर्यादोऽस्तद्धन तत्र दूषणम् ॥

अन्यदपि पौडशकारणगारिदिमालारत्नप्रयादिप्रताना पूर्णाभिषेये प्रतिपत्तिविरया नापरा ग्राह्येति पूर्वोक्तयचनात्। अपरा द्वितीया ग्राह्येति अनवस्थाभाजसकृद्यदयो दोषा भवन्तीति अश्रदेयमतमित्येष रोहिणीव्रतनिर्णयः ।

अर्थ—तिथिक्षय या तिथिवृद्धि हमेशापर व्रत करनेके लिए देशकाल की मर्यादाका विचार अवश्य किया जाता है। जो देश कालकी मर्यादा का विचार नहीं करता है, उसके व्रतोंमें दूषण आ जाता है।

अन्य पौडशकारण, मेघमाला, रत्नप्रया आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके लिए प्रतिपदा तिथि ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। यदि अन्य द्वितीया तिथि ग्रहण की जाय तो अनवस्था, आपाभय, सकर आदि दोष आ जायेंगे, इस प्रकार अश्रदेयका मत है। रोहिणी व्रतके निणयके लिए

भी देशकालकी मयादाका विचार करना चाहिये । इस प्रकार रोहिणी व्रतका निणय समाप्त हुआ ।

विशेषतः—रोहिणीव्रत रोहिणी नक्षत्रको किया जाता है । जिस दिन पश्चात्तमें रोहिणी ८ घटी या इससे अधिक प्रमाण हो उस दिन व्रत करनेका विधान है । यदि बदाचिन् ८ घटी प्रमाण रोहिणी नक्षत्र न मिले तो षष्ठाश घटी प्रमाण मिलनेपर भी व्रत किया जा सकता है । जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो वृत्तिकालके उपरान्त और मृगशिरसे पूर्व रोहिणी व्रत करना चाहिये । जब दो दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो जिस दिन पूर्ण नक्षत्र हो उस दिन व्रत करना तथा अगले दिन यदि ८ घटीसे ऊपर या ८ घटी प्रमाण ही रोहिणी नक्षत्र हो तो अगले दिन भी व्रत किया जायगा । इससे कम प्रमाण होनेपर व्रतकी पारणा की जायगी ।

रविव्रतको विधि

आदित्यव्रते पाद्वर्णनाथार्यसप्तके आपादमासे शुक्लपक्षे तत्प्रथममादित्यमारभ्य नवसु अर्कदिनेषु व्रत कार्यं नववर्षं यावत् । प्रथमवर्षे नवोपवास, द्वितीयवर्षे नवकाशना, तृतीयवर्षे नवफाजिका, चतुर्थवर्षे नवरूक्षा, पञ्चमवर्षे नवनीरस्ता, षष्ठवर्षे नवालघणा, सप्तमवर्षे नवागोरस्ता, अष्टमवर्षे नवनोदरा, नवमवर्षे अलघणा ऊनोदरा नव । एवमेकाशीति कार्या । व्रत दिने श्रीपाद्वर्णनाथम्यामिपेक कार्यं पूजन च । समाप्ताबुद्यापन च कार्यम्, ये भव्या इदं रविव्रत विधिपूर्वकं कुर्वन्ति तेषां कण्ठे मुक्तिरामिनी कण्ठरत्नमाला पतिष्यति ।

अर्थ—रविव्रतन आपाद मास शुक्ल पक्षमें प्रथम रविवार पाद्वर्णनाथ सप्तक होता है, इससे आरम्भ कर नौ रविवार तक व्रत करना चाहिये । यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है । प्रथम वर्षमें नौ रविवारोंको उपवास, द्वितीय वर्षमें नौ रविवारोंको षष्ठाशन, तृतीय वर्षमें नव रविवारोंको काशा—छाउ या छाछसे बने महेरी आदि पदार्थ लेकर

पञ्चाशत्, चतुर्थ वर्षमें नव रविवाराओं विना भी क' र' भोजन, पञ्चम वर्षमें नौ रविवाराओं नीरस भोजन, षष्ठ वर्षमें नौ रविवाराओं विना नमस्कार भोजना भोजन, सप्तम वर्षमें नौ रविवाराओं विना पूज, अष्टम वर्षमें नौ रविवाराओं का उत्तर एवं नवम वर्षमें नौ रविवाराओं विना नमस्कार नौ उत्तर किये जाते हैं । इस प्रकार ८१ व्रत दिन प्राप्त हैं । व्रतके दिन श्रीपार्वत्याय भगवद्भूषा अभिषेठ और पूजन किये जाते हैं । जो शिथिलपूर्वक रविग्रस्तका पालन करत है, उसके मन्त्रमें मोक्षार्थीके मन्त्रका हार पढ़ना है । सब पूरा होनपर उद्यापन करना चाहिये ।

विशेषन—आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षके प्रथम रविवारमें अष्टौ नौ रविवारों तक यह व्रत किया जाता है । आषाढ़ रविवारके दिन उपवास या विना नमस्कार पकानन करनेका नियम है । व्रतके दिन पार्वत्याय भगवद्भूषा पूजन, अभिषेठ करे तथा रामायण गृह्यारम्भका त्याग कर, कषाय और वस्त्रनाको दूर करनेका प्रयास कर । रात्रि अंगारग पूरक ध्वनि करे तथा 'ओं ह्रीं क्लृप्ते श्रीपार्वत्याय नमः' इति मन्त्रका तीन बार एक ही अक्षर कर जप करना चाहिये । नौ वर्ष व्रत करने के उपरांत उद्यापन करनेका विधान है ।

पहले वर्ष में नव उपवास, दूसरे वर्ष नमस्कार विना सादृ भोजन, तीसरे वर्ष नमस्कार विना दान भोजन, चौथे वर्ष विना नमस्कार निषेदी, पाँचवें वर्ष विना नमस्कार शीत, छठवें वर्ष विना नमस्कार दही भोजन, सातवें और अठवें वर्ष विना नमस्कार मूत्रादी दान और शरी तथा नाभे वर्ष एक बारका पराणा दुभा विना नमस्कार भोजन करे । धर्ममें श्रम नहीं पावना चाहिये । प्रथम रविवार और अन्तिम रविवारका प्रतिपर्व उपवास करना चाहिये । व्रतके दिन नवध्वनि सहित मुनिताओंको भोजन कराना चाहिये ।

रविग्रस्तका फल

सुतं यस्या ममाप्नोति दृष्ट्वा रश्मिने धनम् ।

मूढ धृतमवाप्नोति रागी मुञ्चति व्याधितः ॥

अर्थ—रविवारका व्रत करनेमें चन्प्या श्री पुत्र प्राप्त करता है, दरिद्र। व्यक्ति धन प्राप्त करता है, मूर्ख व्यक्ति शास्त्रज्ञान एवं रोगों व्यक्ति व्याधिमें लुप्तकारा प्राप्त कर लेता है।

सप्तपरमस्थान व्रतकी विधि

अथ सप्तपरमस्थान ध्यायणमासे शुक्लपक्षादिमदिनमारभ्य शुक्लसप्तदिनं यावत् कार्यम्। प्रतदिने स्नपनपूजाजाप्यकथा-ध्यायणदानानि कार्याणि। एकत्रस्तुभक्षणं कार्यमाप्तदिनम्, विधिवन् समाप्ताद्युद्यापनं च। तत्फलम्—

जातिमेभ्यर्च्यगार्हस्थ्यं समुत्कृष्टं तपस्तथा।

सुराधीशपदं चमिषर्कं चार्हन्त्यसप्तकम् ॥१॥

सन्निर्वाणपदं भव्यलोके हि जिनभाषितम्।

प्रमात्प्रमयिदामेति परमस्थानमसप्तकम् ॥२॥

अर्थ—सप्तपरमस्थान व्रतमें ध्यायणमास सुदी प्रतिपदासे ध्यायण सुदी सप्तमा तक व्रत करना चाहिये। प्रतके दिन अभिषेक, पूजन, जाप, कथाध्यायण, दान आदि कार्योंको करना चाहिये। सातों दिन एक ही वस्तुका भाजन किया जाता है। विधिवन् व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। इस व्रतका फल निम्न है—

जाति, पञ्चर्च, गार्हस्थ्य, उत्कृष्ट तप, इन्द्रपदरी या चक्रवर्ती पदवी, अर्हन्तपदरी प्राप्ति इस व्रतके करनेमें होती है। संसारमें निर्वाण ही परम पद है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। इस प्रकार सप्तपरमस्थान व्रतके पालनेसे सातों परमपद निर्वाण प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि सप्त परमस्थान व्रतके पालनेसे सप्त परमपदकी प्राप्ति होती है। यह व्रत लौकिक अभ्युदयके साथ निर्वाणपदको भी देनेवाला है। जो ध्यायण इस व्रतका पालन करता है, वह परम्परासे अल्पकालमें ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

विशेष—सप्तपरमस्थान व्रत ध्यायण सुदी प्रतिपदासे सप्तमीतक सात दिन किया जाता है। प्रतिपदाके दिन अर्हन्त भगवान्का अभिषेक

तथा सप्तपरमस्थान पूजन करनेके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सञ्जातिपरम
स्थानप्राप्तये श्रीधर्मयज्ञिनेन्द्राय नमः' इत्य मन्त्रका जाप करना
चाहिण । स्वाध्याय, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओंमें निवृत्त होकर
उपवास करना चाहिण । यदि उपवास करनेकी शक्ति न हो तो निर्मा
ण्ड ही वस्तुका आहार ग्रहण किया जाता है । अक्षरम दो अनाज या
दो वस्तुएँ नहीं होना चाहिण । केवल एक अनाज होना आवश्यक है—

द्वितीयाके दिन सप्तपरमस्थान पूजन, अभिषेकके उपरान्त 'ओं ह्रीं
अर्हं सद्गृहस्थपरमस्थानप्राप्तये श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः'
मन्त्रका जाप करना, कृताचार्य 'ओं ह्रीं अर्हं श्री पारिव्रज्यपरम
स्थानप्राप्तये श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप चतुर्थी
को 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसुरेन्द्रपरमस्थानप्राप्तये श्रीपार्व्यनाथ
जिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, पञ्चमाका 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसाम्रा
ज्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका
जाप, षष्ठीको 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीआनन्दपरमस्थानप्राप्तये श्रीशान्ति
नाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप ण्य सप्तमीको 'ओं ह्रीं अर्हं
श्रीनिवाणपरमस्थानप्राप्तये श्रीजीरजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका
जाप किया जाता है । सातदिन व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करनेका
विधान है । व्रतके दिनोंमें रात्रिनागरण करना चाहिण, यदि शक्ति न
हो या भीर किसी प्रकारका वाधा हो तो मध्यरात्रिमें एक प्रहर शयन
करना चाहिण ।

शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत

अथ धारणमासे शुक्लपक्षे सप्तमीदिनेयादिनाथस्य वा
पार्श्वनाथस्य पण्ठे माला शीर्षे मुकुट च निधाय उपवास
कुर्यात् । न तु पलायना गीतरागत्वहानिर्भवति । यत वापि
यस्या तु स्वयं धट्टनिवारणाय जिनशासनागमोद्दिष्टविधिं पुरतः ।
एतद्विधिनिन्दकस्तु जिनागमप्रोद्दी जिनाशलापी भवतीति न

सन्देह कार्य । सकलकीर्त्तिमि स्वामीये कथाकोषे श्रुतासागरे
स्तथा दामोदरैस्तथादेवनन्दिभिरभ्रदेवेश तथैव प्रतिपादितमत
पूर्वक्रमो नामो ग्रेय ।

अर्थ—श्रावण शुक्ल सप्तमीको आदिनाथ या पाश्वनाथके कण्ठमें
माण्य और शिरमें मुकुट बाँधकर उपवास करना, शीर्ष मुकुट सप्तमी
व्रत है । धीतरागी प्रभुके गलेमें माला और शिरपर मुकुट बाँधनेमें धीत-
रागतानी हानि नही होती है, क्योंकि कोई भी कन्या अपने घेघरके
निराकरणके लिए जिनागममें यनायी हुई विधिका पालन करती है । जो
कोई इस विधिही निन्दा करता है, वह जिनागमद्रोही तथा जिनाशा-
लोपी होता है, अतः इस विधिमें सन्देह नहीं करना चाहिए । सकल-
कीर्त्ति आचार्यने अपने कथाकोषमें, तथा श्रुतसागर, दामोदर, देवनन्दी
और भ्रदेव आदिने भी इस विधिका कथन किया है । अतः ऊपर
जिम विधिका कथन किया है, वह समीचीन है, प्रामाण्यपूर्ण है, अक्रमिक
नहीं है ।

विवेचन—शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत श्रावण सुदी सप्तमीको किया
जाता है । इस दिन कन्याएँ या सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी
वृद्धिके लिए भगवान् आदिनाथका पूजन, अभिषेक करती हैं तथा
प्रोषधोपवास करती हुई धर्मध्यानने दिन व्यतीत करती हैं । इस व्रत
में 'ओं ह्रीं श्रीगृण्मतीथकराय नमः' इस मन्त्रका या 'ओं
ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है । रातको
जागरण करना आवश्यक माना गया है । मुकुटसप्तमी व्रतमें भगवान्
आदिनाथ और पाश्वनाथके नामोंकी एक हजार आठ जाप करनी
चाहिए । इस व्रतमें रातको बृहत्संयमस्तोत्र, सप्तहरण विनती,
दुःखहरण विनती, करपाणमन्दिर, भक्तामर आदि स्तोत्रका पाठ करना
चाहिए । अष्टमीके दिन अभिषेक, पूजन और सामायिकके पश्चात् प्रकाशन
करना चाहिए । पछीसे लेकर अष्टमी तक तीन दिनोंका पूण शीघ्रव्रत
पालन किया जाना है ।

अक्षयनिधि व्रतकी विधि

अक्षयनिधिनियमस्तु धावणशुक्ल दशमी भाद्रपदशुक्ल तत्पुण्या चेति दशमीप्रथ पञ्चम्यं यावत् व्रत कार्यम् । दशमी दानो नु नयम्या गृहो नु यस्मिन् दिने पूर्णा दशमी तस्मिन्नेव दिने व्रतं वाच्यम् । शुद्धिगततिथौ सोदयप्रमाणेऽपि व्रतं न कार्यम् ।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रत धावणशुक्ल दशमी, भाद्रपदशुक्ल दशमी, भाद्रपद कृष्ण दशमी, इत्येकत्रय तीन दशमियाको किया जाता है । यह व्रत पाँच वर्ष तक करना होता है । दशमी तिथिही दानि हानि पर नयमीको व्रत और दशमा तिथिही शुद्धि होनेपर नियम दिन पूरा दशमी हो उक्त दिन व्रत किया जाता है । शुद्धिगत तिथि उ घटाय अधिक हा ता भी दूसरे दिन व्रत करना विधान नहीं है । यह व्रत वर्षभर तीन दिवस अधिक नहीं किया जाता है, तिथि शुद्धि हानिपर भी एक दिन अधिक कराना निषेध नहीं है ।

विशेष—अक्षयनिधि व्रत धावण शुक्ल दशमी, भाद्र पदी दशमा और भाद्र शुक्ल दशमी इन तीनों दशमी तिथियाको वर्षमें एक बार किया जाता है । इस व्रतका दूसरा नाम अक्षयव्रत दशमी व्रत भी है । अक्षयनिधि व्रत करनकोई दशमीके दिन प्राथम्य करन चाहिये । गृह-राम छोड़कर धार्मिक मन्दिरम आकर भगवान् आदिदेवका अभिषेक और पूजन करना चाहिये । 'ॐ ह्रीं नमो भगवते' इस मन्त्रका पाप उपशान्तके दिन १००८ करना चाहिये । रात्रिमें जागरण, शक्ति १ होनेपर अन्न निद्रा का जाती है । घमभ्यान व्रतके दिन विसर्प रूपसे किया जाता है । शाक्यव्रत धावण शुक्ल नयमीव लेकर भाद्र शुक्ल पञ्चादशी तक इस व्रतके चालीसो पञ्चा चाहिये ।

मासिक सुगन्ध दशमी व्रत

मासिकसुगन्धदशमीव्रत नु पाँचशुक्लपञ्चमीमारभ्य दशमी

पर्यन्त भवति हानौ वृद्धो च स एव मार्गो ज्ञेयः, इत्यादीनि
मांसिकानि भवन्ति ॥

अर्थ—सुगन्ध दशमी व्रत पौषपुर्णमासी पञ्चमीसे दशमी तक किया
जता है। निधिका हानि, वृद्धि होनेपर पूर्वात नमः समग्रता चाहिये।
इस प्रकार मांसिक व्रतोंका स्थान यमास हुआ।

विशेषतः—सुगन्ध दशमी व्रत भाद्रपद सुदी दशमासी किया जाता
है। न मालूम आचार्यने यहाँ स्थिति अभिप्रायसे पौष सुदी पञ्चमीसे पौष
सुदी दशमी तक किये जानेवाले व्रतको सुगन्ध दशमी व्रत कहा है।
इस व्रतकी प्रसिद्धि भाद्रपद सुदी दशमीकी है।

व्रतके दिन चारा प्रकारके आहारका स्वाग कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी
पूजा, अभिषेक आदि करे। दसमें तीर्थंकर श्रीदीनलनाथ भगवान्की
पूजा विशेषतः की जाती है। रात्रि जागरणपूर्वक चित्तव्यो जती है।
'ओं ह्रीं अर्हं श्रीदीनलनाथजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप किया
जाता है। पौषधके दूसरे दिन चौबीसा भगवाद्दी पूजा तथा अतिधिको
आहार दान देनेके उपरान्त पारगा की जाती है। इस व्रतको सौभा-
ग्यकी आज्ञाशक्त प्राप्त स्थितों करता है। व्रतके मध्याह्नमें पूर्वोक्त
मन्त्रके प्रत्येक उच्चारणके साथ अग्निमें धूपका हवन किया जाता है।

सांप्रत्सरिक व्रत

सांप्रत्सरिकानि नन्दीशरपङ्क्तिचारिण्यशुद्धिदुःसहण
सुखकरणलक्षणपत्तिसिंहनिष्ठीडितभद्रावसन्तत्रिलोकसारश्रुत-
स्कन्धविमानपत्तिमुरजमध्यमृदगमध्यशातकुम्भश्रुतज्ञानद्वादश-
व्रतत्रिपञ्चाशत्क्रियायातिशयादीनि व्रतानि चात्सरिकानि
भवन्ति ।

अर्थ—नन्दीशरपङ्क्ति, चारिण्यशुद्धि, दुःसहण, सुखकरण, लक्षण
पत्ति, सिंहनिष्ठीडित, भद्रावसन्त, त्रिलोकसार, श्रुतस्कन्ध, विमान
पत्ति, मुरजमध्यमृदग, मध्यशातकुम्भ, श्रुतज्ञान, द्वादशव्रत, त्रिपञ्चा-
शत् क्रिया एवं यातिशय आदि व्रत सांप्रत्सरिक व्रत कहे जाते हैं।

नन्दीश्वरपक्षो षट्षन्चाशदुपवासो द्विषन्चाशत्पारणा भवन्ति । इदं व्रतं वत्सरमध्ये मामश्रयमष्टादशदिनपर्यन्तं स्वशक्त्या करणीयम् ।

अर्थ—नन्दीश्वरपक्षि व्रतम् ५६ उपवास और ५२ पारणार्ण होती है । यह व्रत एक वर्षमें तीन मास अगस्तह दिन तक अपनी शक्तिके अनुसार किया जाता है ।

विधेय—नन्दीश्वरपक्षि व्रत १०८ दिनमें पूर्ण होता है । इसमें पहले चार उपवास और चार पारणार्ण की जाती है । पश्चात् एक बेला—दो दिनका उपवास करनेके अनन्तर पारण करनेका नियम है । तदुपरान्त एक उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार १२ उपवास और १२ पारणार्ण करनी पड़ती है । अनन्तर एक बेला करनेके उपरान्त पारणा का जाती है । इसके पश्चात् उपवास और पारणा इस क्रमसे करते हुए १२ उपवास और १२ पारणार्ण सम्पन्न की जाती है । पुनः एक बेला करनेके अनन्तर पारणा की जाती है । तत्पश्चात् उपवास और पारणाके क्रमसे १२ उपवास और पारणा करनेका विधान है । पुनः एक बेला और पारणा करनेके पश्चात् उपवास और पारणा क्रमसे आठ उपवास और आठ पारणार्ण करनी चाहिए । इस प्रकार इस व्रतमें कुल चारबेला, और अष्टतालीस उपवास तथा बावन पारणार्ण होती हैं । कुल उपवास $(४+१२+१२+१२+८+४ \text{ बेला} = ८) = ५६$ उपवास । पारणार्ण $४+१+१२+१+१२+१+१२+१+८=५२$ होती है । इस व्रत में 'ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपस्थारिभिमजिनालयस्थजिनविम्बेभ्यो नमः' मंत्रवा जप किया जाता है । तीन महीना अगस्तह दिनतक शालग्रामका पाठन भी करना चाहिए ।

चारित्र्यशुद्धि व्रतकी व्यवस्था

चारित्र्यशुद्धो दशशतचत्वारिंशदुपवासा सूत्रक्रमेण हिमादिपापानां त्यागश्च कार्यः । इदं षड्वर्षकाले परिपूर्णं भवति ।

त्रिरात्र च क्रियते, तत्र भुक्तिरेकान्तरेण वा पञ्चादानी यावत्काय ततश्चोद्यापनम्, पूर्वतियिक्षये पूर्वा तियिरभावस्या कार्या एत द्ब्रत पाक्षिक चाये प्रोक्त तेषामपेक्षया द्वितीया पूर्वा भवति, व्रत तु चतुर्थीपर्यन्त भवति । परन्तु नेतन्मत प्रमाण, कथं ग्ला त्कारिणा व्रते चतुर्थी दशलाक्षणिकव्रतस्यादिधारणादिनत्वात् न ग्राह्या, अधिकतियाधिकमार्गण व्रत कार्यम् दाने लाहे भोग- उपभोगे वीरियेण समतेण वेवल्लज्जीउ दसणणाने चग्गित्तेय इति फल ज्ञातव्यम् ।

अर्थ—हे भगवन् ! अपूर्व व्रतना क्या स्वरूप है, इस प्रकार प्रश्न करनेपर, गौतम गणधरने उत्तर दिया—हे ध्यायकोत्तम ! मुनिये— भाद्रपद मासमें शुक्ल पक्षमें पूर्वादि तीन दिन और तीन रात्रियोंमें व्रत करते हैं । एक दिन व्रत, पश्चात् ज्जगजन पुन व्रत इस प्रकार तीन दिन व्रत किया जाता है । पाँच वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है । पूर्व तिथिके क्षय होनेपर पूर्वा तिथि अभावस्या मानी जाती है । कुछ आचार्य इस व्रतको पाक्षिक मानते हैं । उनके मतसे तिथिक्षय होनेपर पूर्वा द्वितीया तिथि ली गयी है, अत द्वितीयासे चतुर्थी पर्यन्त व्रत करना चाहिये । परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि बलात्कार गणके आचार्य चतुर्थी तिथिको दशलक्षण व्रतकी धारणा तिथि मानते हैं, अत चतुर्थीका ग्रहण नहीं होना चाहिये ।

तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिये । इस व्रतना फल अपूर्व ही होता है । ज्ञान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्तत्व, क्षायिक लब्धि, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दान और क्षायिक चारित्र्य आदिकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है ।

विशेष—अपूर्व व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तक किया जाता है । इसका दूसरा नाम त्रैलोक्य तिलक व्रत भी है । इस व्रतमें प्रतिपदाको उपवास कर गृहारम्भका त्यागकर तीना कालकी पाँचीसीकी पूजा करनी चाहिये अथवा तीन छोरकी रचनाकर अष्टाग्रिम

सै-याहयोंकी स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । ताना काल 'ओं ह्रीं त्रिलोक्यमङ्गल्यष्टमिजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए । द्वितीयाके दिन उपवास करना और शेष धार्मिक विधि पूरा करने की सम्पन्न की जाती है । तृतीयाके दिन उपवास करना, घरका आरम्भ (योग) कर जिनकस्यम जाकर उससाह पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानको पूरा करना । अष्टमि जिनालयाका पूजन, विनाम सम्बन्धी चतुर्विंशति त्रिमपूजन आदि पूजन विधानोंको विधिपूर्वक करना चाहिए । इस दिन तीनों काल 'ओं ह्रीं त्रिकालसङ्गमिधित्रिचतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है । रात जागरण कर धर्मध्यान पूर्वक बितायी जाती है तथा खोड़ीसा भगवान्की स्तुतियाको रातमें पढ़ कर भावनाओंको पवित्र किया जाता है । तिथि क्षय होनेपर इस व्रतको अमावस्यासे आरम्भ करना चाहिए, समाप्ति सर्वदा ही तृतीयाको की जाती है । छोरमें तिरुक् व्रतका विधान अथवा वेवः तृतीयाका हा मिलता है, परन्तु पूरा विधि तीन दिनोंमें सम्पन्न की जाती है । तीन पय या पाँच पय व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन किया जाता है ।

पुरन्दर-व्रत-विधि

अथ पुरन्दरव्रतमाह—यत्र तत्र वसुचिन्मासे समारम्भ शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्याष्टमीपर्यन्त कार्यम् । अत्र प्रतिपदष्टम्यो प्रोषध शेषमेकभुक्तञ्च वा एकास्तरण व्रत कार्यम् । एतद्व्रतमनि यतमासिह नियतपाक्षक द्वादशमासिक ज्ञेयम् । फलञ्चेतत्—

दारिद्र्यमृगशार्दूल मूल मोक्षश्च निश्चलम् ।

पुरन्दरविधिं विद्धि सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१॥

अर्थ—पुरन्दर व्रतका स्वरूप कहते हैं—किन्ना भी महीनेम शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे अष्टमी तक पुरन्दर व्रतका पालन किया जाता है । प्रति पदा और अष्टमाका प्रोषध तथा शेष दिनोंम एकाशन अथवा एकान्तरस उपवास और एकाशन करने चाहिए अथवा प्रतिपदाका उपवास द्वितीया का एकाशन, तृतीया उपवास चतुर्थीका एकाशन, पञ्चमीका उपवास

पट्टीका प्रकाशन, मसुमीका उपवास और अष्टमीका प्रकाशन, किये जाते हैं। यह व्रत अनिवार्य मासिक और नियत पाक्षिक है, क्योंकि इसके लिए कोई भी महीना निश्चित नहीं है पर शुक्ल पक्ष निश्चित है। इसका फल निम्न है—

पुरन्दर व्रत दरिद्रतारूपी मृगको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान है और मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए भूल कारण है अर्थात् इस व्रतके पालन करनेमें निश्चय ही मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तथा यह व्रत मनुष्योंको सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि पुरन्दर व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे रोग, शोक, व्याधि, व्यसन सभी दूर हो जाते हैं तथा कालान्तरमें परम्परासे निर्वाणही प्राप्ति होती है।

विशेष—श्रियाकोषमें बताया गया है कि पुरन्दर व्रतमें किसी भी महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक लगातार आठ दिनका प्रोषण करना चाहिए। आठों दिन धरका समस्त आरम्भ त्यागकर जिना ल्यमें भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक, पूजा, आरती एवं स्तवन आदि करने चाहिए। आठ दिनोंके उपवासके पश्चात् मयमी तिथिकी पारणा करनेका विधान है। यह काव्य व्रत है, दरिद्रता एवं रोग शोकका दूर करनेके लिए किया जाता है। व्रतके दिनोंमें रात्रिका धर्मध्यान करना, रात्रि जागरण करना, जिनेन्द्र प्रभुकी आरती उत्तारना एवं भजन पढ़ना आदि श्रियाएँ भी करना आवश्यक है। रातके मध्यभागमें अल्प निद्रा लेना तथा जिनेन्द्र प्रभुके गुणोंका चिन्तन करना और सामायिक ह्याध्याय करना भी इस व्रतकी विधिके अन्तर्गत् परिगणित है। प्रोषणके दिनोंमें स्नान, तेलमदन, दन्तधावन आदि श्रियाओंका त्याग करना चाहिए। यदि आठ दिनतक लगातार उपवास करनेकी शक्ति न हो तो चार दिनोंके पश्चात् पारणा कर लेनी चाहिए, पारणामें एक ही अनंज तथा एक ही प्रकारकी वस्तु लेनी चाहिए। जिनमें उपयुक्त प्रकारसे व्रत करनेकी शक्ति न हो, वे अष्टमी और प्रतिपदाका उपवास करें तथा दोष दिन प्रकाशन

करें। अन्य धार्मिक क्रियाएँ समान हैं, स्नान करनेवालेको द्रव्यपूजा और स्नान न करनेवाले श्रावणको भावपूजा करनी चाहिए। व्रतके दिनमें प्रतिदिन नमोकार मात्रका एक हजार आठ बार जाप करना चाहिए। एकादशके दिन तीन बार प्रातः, दोपहर और सन्ध्याको एक हजार आठ बार नमोकार मात्रका जाप करना चाहिए।

दशलक्षण व्रतकी विधि

दशलक्षणव्रतमासे माघपदमासे शुक्ले त्रिपञ्चमीदिने प्रोषध कार्यं, सर्वगृहारम्भ परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजार्चनादिकञ्च कार्यम्। चतुर्विंशतिका प्रतिमा समारोप्य जिनास्पदे दशलक्षणिकं यन्त्र तदग्रे ध्रियते, ततश्च स्नपनं कुर्यात्, अन्य मोक्षाभिलाषी अष्टधापूजनद्रव्यैः जिने पूजयेत्। पञ्चमीदिनमारम्भ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रत कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिना स्यात्तद्व्यम्। इदं व्रतं दशपर्वपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चाद्यापनं कुर्यात्। अथवा दशोपवासा कार्या। अथवा पञ्चमीचतुर्दश्योरपवासद्वयं शेषमेकादशमिति केषाञ्चिन्मतम्, तच्च शक्तिहीनतयाक्रीडा न तु परमो भागः।

अर्थ—दशलक्षण व्रत माघपद मासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ किया जाता है। पञ्चमी तिथिको प्रोषण करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भना त्यागकर जिन-मन्दिरमें जाकर पूजन, अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेकके लिए खीरीस भगवान् की प्रतिमाओंको स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यन्त्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षाभिलाषी भव्य अष्ट द्रव्योंसे भगवान् जिनेन्द्रका पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पञ्चमीसे भाद्र सुदी दशमीतक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है।

इस व्रतको दस वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर

दिया जाता है। इस घतनी उत्कृष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अथवा पञ्चमीसे लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करने चाहिए। अथवा पञ्चमी और चतुर्दशीका उपवास तथा दोष दिनामें एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह दो विधि शक्तिहीनोंके लिए यत्नायी गयी है, यह परममार्ग नहीं है।

त्रिवेचन—दशरक्षण घत माना, माघ और चित्रमासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीसे चतुर्दशीतक किया जाता है। परन्तु प्रचलित रूपमें केवल भाद्रपदमास ही ग्रहण किया गया है। दशरक्षण घतके दस दिनोंमें त्रिशूल सामायिक, चन्द्रमा और प्रतिग्रसन आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। घतारम्भके दिनसे लेकर घत समाप्ततक जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेकके साथ दशरक्षण चित्रमा भी अभिषेक किया जाता है। निम्न नैमित्तिक पूजाओंके अनन्तर दशरक्षणपूजा की जाती है। पञ्चमी पष्टी, सप्तमी आदि दश तिथियोंमें प्रथम प्रत्येक तिथिके 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तममार्द्रयधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमार्जुनधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमसत्यधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमशास्त्रधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमसयमधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमतपधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमत्यागधर्माज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमाकिञ्चनधर्माज्ञाय नमः' एवं 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुपक्रमलसमुद्गताय उत्तमग्रहचर्यधर्माज्ञाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। समस्त दिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिक आदि कार्योंमें व्यतीत करे, रात्रि जागरण करे और समस्त विकृताओंका त्याग कर आत्मचिन्तनमें लीन रहे। दसों दिन कथाशक्ति प्रोषध, वेला, तेला, एकाशन, ऊगोदर एवं रसपरित्याग करने चाहिए। स्वादिष्ट

भोजनका त्याग करे तथा स्वप्न और मादे वस्त्र धारण करने चाहिए ।
इस व्रतका पालन हम वर्षभर किया जाता है ।

तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल

आदितिथिभ्ये चतुर्थीत, मध्यतिथिभ्ये चतुर्थीत अष्ट-
म्यादितिथिहान्येऽपि चतुर्थीनां व्रत कार्यम् । नन्येषां तरेण व्रते
वृत्ते सति अष्टम्यामपि पारणा भवतीति दूरणम्, नेत्र वाच्यम्,
एकान्तरस्यागमोक्तत्वात् । तिथिभ्येऽपि पञ्चम्या पारणादोष
आगच्छति, इति न घान्य प्रोच्योपघामनकथितपञ्चम्या चतुर्थ्या-
मेवाध्यारोपात् । एष दशग्रयपर्यन्तं घात पालनीयम्, तत्तद्यो
घापन भवेत् । एतस्य फलं तु मुनिरिति निर्णयः ।

वर्ण—दशलक्षण व्रतमें आदितिथि पञ्चमीका अभाव होनेपर
चतुर्थी तिथिमें व्रतारम्भ, मध्यतिथिका अभाव होनेपर चतुर्थीमें व्रतारम्भ
और अष्टमी तिथिके अनन्तर चतुर्दशी तक किसी भी तिथिका हान्य
होनेपर चतुर्थीमें ही व्रतका आरम्भ किया जाता है ।

यहाँ धारा बँट गया है कि जो एकान्तर उपवास और पारणा करेगा,
उस अष्टमीकी पारणा करनी होगी अर्थात् पञ्चमीका उपवास पछाकी
पारणा, सप्तमीका उपवास अष्टमीकी पारणा, नवमीका उपवास दशमीकी
पारणा इत्यादि एकान्तर उपवासक क्रमसे अष्टमीकी पारणा आती है, यह
दोष है । क्योंकि अष्टमी पवतिथि है, इसका उपवास अवश्य करना
चाहिए । आचार्य उक्त देते हैं कि यहाँ पवतिथिका विचार नहीं किया
जाता है, आगममें एकान्तर उपवास करनेका क्रम बताया गया है, भव
यहाँपर एकान्तर उपवास क्रम ही ग्राह्य है । इसलिये अष्टमीकी पारणा
करनेमें दोष नहीं है ।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जाएगा, जिसमें
एकान्तर उपवास करवाला पञ्चमीको पारणा करेगा, यह भी दोष है ।

क्योंकि दशरक्षण व्रतका प्राथम्य पञ्चमीको होना चाहिए, किन्तु पञ्चमीकी पारणा आती है। आचार्य इस शंकाका समाधान करते हुए कहते हैं कि मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जाता है, किन्तु इस चतुर्थीमें ही पञ्चमीका अन्वरोध कर लिया जाता है। उत्तम क्षमाधर्मकी भावना तथा जाप, जो कि पञ्चमीको किया जाता है इसी चतुर्थीको कर लिये जाते हैं, अतः चतुर्थीको ही पञ्चमी मान लिया जाता है। अतएव पञ्चमीकी पारणामें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार इस दशरक्षण व्रतका पालन दस वर्ष तक करना चाहिए।

इस व्रतका बड़ा मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति है; यों तो इस व्रतमें लौकिक प्रेक्ष्य और अगुदक्षकी प्राप्ति होती है, पर वास्तवमें यह व्रत मोक्ष लक्ष्मीको बालान्तरम् देता है।

निवेदन—तिथिक्षय होनेपर दशरक्षण व्रतको चतुर्थीसे प्रारम्भ किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर व्रत एक दिन अधिक किया जाता है। अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर अर्थात् दो दिन चतुर्दशी होनेपर प्रथम दिन व्रत किया जाता है। यदि दूसरी चतुर्दशी भी छ घटासे अधिक हो तो उस दिन भी व्रत करना होता है तथा छ घटी प्रमाणसे अल्प होने पर पारणा की जाती है। इस व्रतका बड़ा अनुपम होता है। व्रत धर्म आत्माने पारलौकिक स्वरूप है, इनसे चिन्तन, मनन और जीवनम उतारनेसे जाय शीघ्र ही अपने कर्मोंको तोड़कर निर्वाण प्राप्त करता है। उत्तम क्षमादि धर्म आत्माकी कर्मकालिमाको नष्ट करनेमें समर्थ है। व्रतोपवाससे विषयोंकी ओर से आनेवाली इन्द्रियाँकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा जीव अपने उत्थानका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

पुष्पाञ्जलि व्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल

पूर्वमधितपुष्पाञ्जलिव्रतं पञ्चदिनपर्यन्त करणीयम्।
तत्र केतकीकुसुमादिभि चतुर्विंशतिविकसितसुगन्धितसुम
नोभिश्चतुर्विंशतिजिनान् पूजयेत्। यथोक्तकुसुमामावे पूजयेत्

पीनतन्दुलै । पञ्चमर्षानंतर उद्यापन कार्यम् । केवलज्ञान
मम्प्राप्तिरेतस्य परम फलम् । तिथिष्वये वा तिथिरुक्तौ पूर्वोक्त
एव प्रम स्मर्तव्य । पुष्पाञ्जलिप्रते पञ्चमीपष्ठोदपयाम
महाम्या पारणा अष्टमी नवम्योदपयाम दशम्या पारणा, एका-
म्वरेण तु तिथिक्षये चादिदिने गृहीते पारणादय मध्ये कार्यम् ।
पञ्चम्यामष्टम्या च पष्ठमामष्टम्या वा पथैकान्तर स्यात्तथा
कार्यम् । एतत् पुष्पाञ्जलिप्रत कर्मयोगादह मुक्तिप्रद च पारम्पयण
भवति ।

अर्थ—पहले बराबरे हुए पुष्पाञ्जलि प्रतरो पौंच दिन तक करना
चाहिए । इस प्रतम केनसी, वेण, चम्या आदि विकसित और सुगन्धित
पुष्पोंमें चौधवां भगवन्का पूजा करनी चाहिए । यदि वास्तविक पुष्प न
हों वा वास्तविक पुष्पास पूजन करना उपयुक्त न समर्थे ता पीले चाबलों
से भगवान्की पूजा करनी चाहिए । पौंच वषके पश्चात् प्रतका उद्यापन
कर देना होता है । इस प्रतका चण केवलज्ञानसी प्राप्ति जाना बताया
गया है अर्थात् तिथिपूर्वक पुष्पाञ्जलि प्रतके प्राप्तमम केवलज्ञानकी
प्राप्ति होती है । तिथिअथ वा तिथिरुद्धि इनपर पूर्वोक्त क्रम ही भवगत
करना चाहिए । तिथिष्वयमें एक दिन पहलम और तिथिरुद्धिमें एक दिन
अधिक प्रत दिया जाता है । पुष्पाञ्जलि प्रतमें पञ्चमी और पष्ठा इन
दोनों दिनोंका उपवास, महाम्याकी पारणा, अष्टमी और नवमीका उपवास
तथा दशमाकी पारणा की जाती है । एकान्तर उपवास करनेवालेको
अर्थात् एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा, पुन उपवास तथा पारणा
इस क्रमसे उपवास करनेवालेको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले
से प्रत करनेके कारण मध्यमें दो पारणाएँ करनी चाहिए । पञ्चमी और
अष्टमीकी पारणा अवका चली और अष्टमीकी पारणा की जाती है । एका
न्तर उपवास और पारणाका क्रम चण सके गया करना चाहिए । यह
पुष्पाञ्जलि प्रत कर्मरूपी रोगको दूर करनेवाला, लौकिक आयुदयका
प्रदाता एवं परम्परासे मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाला है ।

त्रिप्रेचन—पुष्पाञ्जलि व्रतकी विधि पहले लिखी जा चुकी है।
 आचार्यने यहाँपर कुछ विशेष बातें इस व्रतके सम्बन्धमें बतलायी हैं।
 पुष्पाञ्जलि शास्त्रका अर्थ है कि पुष्पांश समुदाय अर्थात् सुगन्धित, रिक-
 मित और फटाणु रहित पुष्पाम जिनेन्द्र भगवान्की पूजा इस व्रतवाले
 को करनी चाहिए। पहले व्रत विधिम लिखे गये जापको भी पुष्पांश ही
 करना चाहिए। यदि पुष्प खदानेमें णराज हो तो पीले खालोंमें पूजन
 तथा लवंगोंसे जाप करना चाहिए। पाँचों दिन पूजन और जाप करना
 आवश्यक है। इस व्रतका बड़ा भारी माहात्म्य बताया गया है, विधि
 पूर्वक इसके पालनेमें वेदज्ञानकी प्राप्ति परम्परासे होती है, कमरोग
 दूर होता है तथा नाना प्रकारके लौकिक ऐश्वर्य, धन धान्यादि विभूतिप्रा-
 प्त होती है। इसकी गणना काम्य व्रतामें ईर्षालिष की गयी है, कि इस
 व्रतको विधिपूर्वक पालकर कोई भी व्यक्ति अपनी लौकिक और पार-
 लौकिक दोनों प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण कर सकता है।

उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि

उत्तममुक्तावलीव्रत धर्मि, तृतीयमयमोक्षदम्। भाद्रपदशुक्ल
 सप्तम्या प्रोपद्य हृत्या अष्टम्यामुपवास कुर्यात्। पश्चात्—
 आदिने मेचके पक्षे पष्ठ्या सूर्यप्रभो भवेत्।
 चन्द्रप्रभरयोद्दयामेष चन्द्रप्रभस्तथा ॥१॥
 आश्विनशुक्लैकादस्या कुर्याद् दुष्कर्महानये।
 कुमारसमग्रो नामोपवास शुभदो भवेत् ॥२॥
 कार्तिके दयामले पक्षे द्वादस्या प्रोपद्यो भवेत्।
 नाभन नन्दीश्वरस्तस्य माहात्म्य केन चर्णितम् ॥
 कार्तिके धवले पक्षे तृतीयादिवसे मत।
 सर्वार्थसिद्धिर्नाम चतुर्गर्गप्रसाधनम् ॥
 कार्तिके धवले पक्षे लक्ष्यद्वैकादशीदिने।
 प्रातिहार्यविधिर्नाम कथित धर्मवृद्धये ॥

एकादश्या तु मार्गस्य मेखकेऽतिशुभप्रदे ।

सर्वसुखप्रदं नाम प्रभाज क्षेत्रं वण्यते ॥

आग्रहायणके शुक्ले तृतीय प्रापय शुभ ।

जनन्तविधिरित्युत्तमनन्तसुखसाधनम् ॥

एव चतुर्षु मासेषु, उपवासो प्रकीर्त्तिता ।

प्रत्यहं ते त्रिघातन्या मया दमिति साधुभिः ॥

उपवासदिने जितेन्द्रस्तपन पूजन कार्यम्, नयमपदे यतोद्यो
जन करणीयम् । इति उत्तममुखाग्रलीयत भूमिसाधुभिः निगदितम् ।

अर्थ—उत्तम मुखाग्रलीयत मतकी विधिको कहने हैं, यह मत तृतीय
मघमें मोक्ष देनेवाला है । इस मतका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला सप्तमी
को होता है । सप्तमीको एकादश कर भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको उपवास
करना चाहिए पश्चात् आश्विन वदी पक्षाको पूर्वप्रथम नामका उपवास
करना आश्विन वदी प्रयादशीको पश्चिमप्रथम नामका उपवास करना चाहिए ।
आश्विन शुक्लपक्षमें दुर्गमोंके क्षय करनेके लिये एकादशी तिथिको हुमा
समय नामका उपवास करना चाहिए । यह उपवास सब प्रकारसे शुभ
करनेवाला होता है ।

कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिका प्रोषधीपवास करना चाहिए ।
इस उपवासकी न्यायसंज्ञा है । इसको महिमाका वर्णन कोई
नहीं कर सकता है । कार्तिक शुक्लपक्षमें नृनाराको यगुगको देनेवाला
पथायसिद्धि नामका उपवास किया जाता है । इस उपवासके फलमें
सभी मनोभामनाएँ पूरा होती हैं । कार्तिक शुक्लमें एकादशी तिथिको
प्रातिपद्य नामका उपवास किया जाता है, यह धमदृष्टिको करनेवाला
होता है । मार्गशर्ष कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिको सर्वसुखप्रद नामका
उपवास किया जाता है । इसके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है ।
अगहन सुदी तृतीयाको अनन्तविधि नामका प्रापघाषवास किया जाता
है, यह अनन्तसुखदा देने वाला होता है । इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें भाद्र
पद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष इन चार महीनामें उपवास करने

चाहिण । इस विधिसे नौ वषत्तर व्रत पालनकर उद्यापन करना चाहिये ।

उपवासके दिन भगवान् विनन्दका अभिषेक, पूजन करने चाहिये ।

इस प्रकार नौ वषत्तर व्रत पालनकर नौ वष उद्यापन कर देना चाहिये,

जैसा अनन्त श्रेष्ठ आचार्योंने उत्तम मुक्तावली व्रतके सम्बन्धमें कहा है ।

प्रिवेचन—मुक्तावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है ।

आचार्यन पहाँपर उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि बतलायी है । उत्तम मुक्तावली व्रत भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और भगहन इन चार महीनोंमें पूरा किया जाता है । भाद्रपद शुक्लपक्षमें सप्तमीका एकादश और अष्टमाका उपवास, कार्तिक कृष्णपक्षमें पटी और अष्टादशीको और शुक्लपक्षमें एकादशको उपवास, कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वादशीको, और शुक्लपक्षमें तृतीया और एकादशको उपवास एवं भगहनमें कृष्णपक्षमें एकादशीको और शुक्लपक्षमें तृतीयाको उपवास रिया जाता है । इस व्रतमें उपवासके दिनाम पञ्चामृत अभिषेक करनेका विधान है । व्रतके दिनोंमें चतुर्विंशति चितपूजा की जाती है । रात जगरण पूर्वक चितायी जाती है । शील व्रत भाद्रपदमें आरम्भ कर भगहनतक पाला जाता है ।

इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन उपवासके दिन तीन बार, शेष दिन एक बार एक-एक माला भयात् १०८ बार जाप करना चाहिये । चारों महीनामें इसीका पालन किया जाता है तथा भोजन हरी, नमक या कोई रस छोड़कर किया जाता है । उपवासके दिन गृहारम्भका बिल्कुल त्याग करना आवश्यक होता है । पारणाके दिन भगवान्के अभिषेकके अनन्तर दीनन्दु स्त्री व्यनियोंका आहार करानेके उररान्त भोजन करना होता है । भोजनमें प्राय मांस मांस केनेका विधान है ।

प्रकारान्तरसे सुगन्धदशमी व्रतकी विधि

सुगन्धदशमीमाह—

भद्रे भाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन्पञ्चमीदिने ।

उपोष्यते यथाशक्ति त्रियते कुसुमाञ्जलि ॥

तथा पष्ट्या च सप्तम्या चाष्टम्या नवमीदिने ।

जिनानामव्रतो भूयो दशम्या जिनवेदमनि ॥

उपवास ममादाय विधिरेव विधीयते ।

चतुर्विंशतितीर्थानां स्नपन पूजन तत ॥

सुमधुररसैः पूजा धूप दशविध तथा ।

पूगन्दुदशमे वयं तदुद्यापनमाचरेत् ॥

अर्थ—सुगन्धरसमी व्रतकी विधि कहते हैं—श्रेष्ठ भाद्रपद महीने के पुनर्वसुक्षत्री पञ्चमीसे दशमीतक पुष्पाञ्जलिप्रद करते हुए पशु, सप्तमी, अष्टमी और नवमीका उपवास या ण्डांतर उपवास करने चाहिए। दशमीको जिन मन्दिरमें जाकर उपवास ग्रहण किया जाता है तथा चौबीस तीर्थंकराकी पूजा, अभिषेक किया की जाती है। दशाष्टी धूप भगवान्‌के समाने लीयी जाती है। दस वर्ष तक इस व्रतका पालन किया जाता है, इसके पश्चात् उद्यापन किया सम्पन्न की जाता है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष

अक्षयनिधायक्य व्रतं श्रावणशुक्लपक्षे दशमीदिने दशान्द-
मध्यघटोपरिस्थितचतुर्विंशतिराया स्नपन पूजन च फायम्,
दशवर्षपर्यन्तं व्रतं भवतीति । पुत्रपौत्रादिवृद्धिश्चरन्तीति ।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रतमें विशेष विधि यह है कि श्रावणशुक्ल दशमाके दिन दस कमलोंके ऊपर घड़ेको स्थापितकर उसके ऊपर शीशम भगवान्‌की प्रतिमाओंको या किसी भा भगवान्‌की प्रतिमाका स्थापित कर अभिषेक और पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार भाद्र वदी दशमा और भाद्र सुदी दशमीमें भी व्रत करना चाहिए। अक्षयनिधि व्रतमें दश वर्ष तक करनेमें पुत्र, पौत्र, धन, धान्यकी वृद्धि होती है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ हैं—प्रथम मान्यता श्रावणवदी दशमी, भाद्रपद दशमी और भाद्र सुदी दशमी इन तीन तिथियोंमें व्रत करनेकी है। इस मान्यताका आचार्यने पहले

व्रत किया है। द्वितीय मान्यता के अनुसार यह व्रत श्रावणवदी दशमी से आरम्भ किया जाता है तथा भाद्र पदी दशमीको समाप्त होता है। इसमें दोना दशमी तिथियोंमें उपवास तथा शेष तिथियोंमें षण्मास किये जाते हैं। व्रतारम्भके दिन दम कमलाके ऊपर केशर, चन्दन आदिसे सज्जित मिट्टाके घड़ेको स्थापित कर, घड़ेके ऊपर थाल रखा जाता है। थालमें अष्टरमलदल यन्त्रर भगवान्की प्रतिमा सिंहासन पर स्थापित की जाती है। इस विधिसे प्रतिदिन भगवान्का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। अर्थात् श्रावण सुदी दशमीके दिन प्रतिमा घड़े ऊपर स्थापित की जाती है, यह भाद्र पदी दशमी तक स्थापित रहती है। प्रतिदिन अभिषेक और पूजन होते रहते हैं। इस व्रतमें प्रतिदिन दस अष्टक, दम अथ और दस फल चढ़ाये जाते हैं। प्रतिदिन तानों सम्य सामायिक किया जाता है तथा घेसठ शलाकापुष्पोंके पुष्प चरितोंका अभ्ययन, मनन और चिन्तन आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

षण्मासके दिनामें भी प्रथम दिन मादभात, द्वितीय दिन रसत्याग पूर्वक आहार, तृतीय दिन दूध त्याग सहित आहार, चतुर्थदिन दही त्याग सहित आहार, पञ्चम दिन नमक त्यागमहित आहार, षष्ठ दिन नियमित रूपसे पूर ही अन्नका आहार, सप्तम दिन पुन मादभात, अष्टम दिन भलीना—यिना नमक और भीठेका भोजन, नवम दिन ऊनोदर, दशम दिन दही त्याग पूर्वक आहार, एकादशवें दिन मादभात, द्वादशवें दिन एक अन्न आहार, त्रयोदशवें दिन परिगणित वस्तुओंका आहार, चौदहवें दिन ऊनोदर या मादभात और पन्द्रहवें दिन उपवास किया जाता है। ये सभी दिन सयमके दिन कहलाते हैं। इनमें वाणीसयम और इन्द्रिय

१ व्रत अपैनिधिको उपवास । श्रावणसुदि दशमी करितास ॥

भादोद जय दशमी होय । तिहुँके प्रोषण अश्लोय ॥

अन्न सज्ज एतन्त चुकरी । सो दस थपहि पूरी करै ॥

उत्थापन करि छोटै चाहि । तातरिपुगणौ करिदै चाहि ॥

—त्रिशाकोश किसनसिंह ।

सयमका पालन करना चाहिए । भाद्रपदी ण्कादशीको व्रत समाप्त होनेके पश्चात् ण्काशन किया जाता है । पश्चात् पूर्ववत् सारी क्रियाएँ सम्पन्न होने लगती हैं । इस व्रतमें विधिपूर्वक सम्पन्न करनेमें सभी लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

मेघमाला व्रतकी विशेष विधि

मेघमाला कथयाम्यहम्—

भद्रे भाद्रपदे मासे मेघके प्रतिपदिने ।

आरम्भेत व्रत माम् प्रोपवेसान्तरेण च ॥

स्नातय च तुनीगस्य धारामि ब्रह्मचारिणि ।

आत्रम परिधातय शुक्लमेवाशुभद्वयम् ॥ १ ॥

जिनालये पुर प्रस्थायाकाशे विष्टर शुभम् ?

सस्थाप्य मेघ मालेय शुक्ल धार्यं वितानकम् ॥

विष्टरे ध्रीजिनाधीश यथाशक्ति मद्बोत्सवम् ।

स्नापयेदमृतेनापि पञ्च वा परमेश्वरम् ॥

सस्थाप्य कलशैर्द्वयेन वितानोपरि शान्तये ।

गन्धाम्बुचिन्तयेदेव पारिमेषाकृत यथा ॥ २ ॥

पूर्व सस्थाप्य पूजयेत्, तिथिद्वानिष्टुद्धो षोडशवारणव्रतमेघ माला श्रेया । मासिकव्रतत्वात्तरपाग्णा पात्रदानादनन्तर पञ्चवर्षं यावत्स्मरणीयम् । तत उद्यापनं कुर्यात् ।

अर्थ—मेघमाला व्रतकी विधिक्रम वृत्तन किया जाता है । कल्याणकारी भाद्रपद मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे एक महीने तक व्रत करना चाहिए । ण्कान्तर उपवाम व्रतके दिनोंमें करना चाहिए । धृत धारण करनेवाले ब्रह्मचारीको स्वच्छ प्रासुक जलसे स्नान करके व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए । व्रत समाप्त होतक दो शुक्ल वस्त्र धारण करने चाहिए । अर्थात् एक स्वच्छ धोती तथा दूसरा रुपड़ा धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए । यदि कोई नारा इस व्रतको सम्पन्न करे तो उसे एक साढ़ी तथा एक अन्य वस्त्र धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए ।

जिनालयके प्रागणम एक स्वच्छ दूधके समान सफेद चँदोवा लगा कर उसके नीचे सिंहासन बिठाकर भगवान्‌को स्थापित करना चाहिए । भगवान्‌को स्थापित करनेकी विधि यह है कि एक घड़ेको चन्दन, कपूर, केशर आदिसे मरुत कर उसके ऊपर थाल रखकर भगवान्‌को विराजमान करना चाहिए । प्रतिदिन अभिषेक, पूजन आदि कार्योंको उत्साह और उत्साह सहित करना चाहिए । पद्मामृतमे प्रतिदिन भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए । शान्ति प्राप्त करनेके लिए अभिषेक के कलशोंको स्वच्छ चँदोवेके ऊपर स्थापित कर मेघोंके वर्षणके समान अभिषेक किया जाता है । जल, चन्दन आदि पदार्थोंसे भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए । गन्धोदकरी चिन्ता इस प्रकार करनी चाहिए, मानो मेघकी जलधारा ही गिर रही हो । इस प्रकार अभिषेकके अनन्तर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए ।

यदि तिथि वृद्धि या तिथि-हानि हो तो सोरहकारण व्रतके समान पून दिन पहलेसे तथा एक दिन अधिक मेघमाला व्रत नहीं किया जाता है । मासिक व्रत होनेके कारण इस व्रतकी पारणा पात्रदानके अनन्तर की जाती है । आश्विन वरी प्रतिपदाको व्रत करनेके अनन्तर इस व्रतकी समाप्ति होती है । पाँच वर्षतक व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है । मेघमाला व्रतमें तिथिवृद्धि और तिथि हानिमें सोरहकारण व्रतके समान व्यवस्था है ।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

अथ रत्नत्रयव्रतमुच्यते—भाद्रपदमासे सिते पक्षे द्वादशीदिने स्नात्वा गत्वा जिनागारे पूजयित्वा जिनाम् । भोजनानन्तर जिन-वेदमणि गन्तव्यम् । त्रयोदश्या सम्यग्दर्शनपूजा चतुर्दश्या सम्यग्दर्शनपूजा पूर्णमास्या सम्यक्चारित्रपूजा आश्विनप्रतिपदि महापुण्यमेकमुक्त पूर्णाभिषेकश्च पञ्चामृतैः करणीय, चर स्थिरविम्बानाम् ॥

अर्थ—रविव्रत व्रतको कहते हैं—भाद्रपद शुक्लमे द्वादशी तिथि को स्नान कर विनाश्वरमें जाकर जिन भगवान्की पूजा की जाती है। भोजनके अनन्तर जिन मन्दिरमें जाना चाहिए। वहाँ दासस्वाध्याय, मोक्षपाठ आदि धर्मध्यानमें समयको व्यतीत करना चाहिए। त्रयोदशी तिथि को सम्पूर्णदर्शनकी पूजा, चतुर्दशीको सम्पूर्णगानकी पूजा, पूर्णिमाको सम्पूर्णधारिणकी पूजा, और आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको महापर्व, एक बार भोजन तथा चण्ड भौद अथवा निनयिम्बोंका पञ्चाशृत पूरा अभिषेक किया जाता है।

तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रविव्रत व्रतकी व्यवस्था

तिथिक्षये चादिदिन याविशेष्यधिक फलमिति। द्वादशपाधिके पूर्णतिथिनिर्णयग्रहणात् धारणाद्याः त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, इति तिथित्रयस्य मध्येऽन्यतरस्य वृद्धिगते सति प्रोपधाधिक्य कार्यम्, पारणाधिक्ये नियमो नास्तीति। तिथिह्रासे द्वादशीत व्रत कार्यम्॥

अर्थ—तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना पड़ता है। एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। यदि द्वादशा तिथि की वृद्धि हो तो पूर्णतिथि नियमसे अनुसार व्रत धारण करना चाहिए। यदि त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमासे कोई तिथि बढ़े तो एक अधिक प्रोपध करना चाहिए। यदि पारणाका दिन अर्थात् प्रतिपदाकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक उपवास या एकान्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। तिथिक्षय होनेपर द्वादशीसे व्रत करना चाहिए।

काम्यव्रतोका फल

एष पूर्वोक्तमनन्तचतुर्दशीग्रहणमपि काम्यमस्ति। काम्य व्रताचरणेन दुःखारिद्र्यादिक विनीयते, घनधान्यादिक धर्द्धने।

चन्द्रनारष्टीलब्धिविधानव्रतयोरपि काम्यत्वात् पुत्रपौत्रधनधान्य
श्रयविभूतीना वृद्धि जायते । विधिपूर्वककाम्यव्रताचरणेन
इष्टसिद्धिर्भवति रोगशोकादयः पलायन्ते, अमरा किंकरा
भजन्ति, किं यहुना ॥ काम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—इस प्रकार पूर्वाक्त आन्तर्चनुदशी व्रत भी काम्य व्रत है ।
काम्यव्रताके पालन करनेसे दुःख, दरिद्रता, शोक, व्याधि आदि दूर हो
जाती है और धन, धान्य, ऐश्वर्य आदिकी वृद्धि होती है । चन्द्रनारष्टी
और एन्द्रिविधान व्रताको भी काम्यव्रत होनेसे इनका पालन करने पर
पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, पशु, विभूति आदिकी वृद्धि होती है । विधि
पूर्वक काम्यव्रतोंके आचरणसे इष्ट सिद्धि होती है । रोग, शोक, व्याधि,
आपत्ति आदि दूर हो जाता है । अधिक क्या, काम्यव्रतोंके आचरणसे
देव दास बन जाते हैं, सभी प्रकारकी कामनाएँ सफल हो जाती हैं ।

तात्पर्य यह है कि काम्यव्रत शब्दका अर्थ ही है कि जो व्रत किसी
कामनासे किया जाता है तथा किसी प्रकारकी अभिलाषाओं पूरा करता
है, वह काम्य है । इस प्रकार काम्यव्रतोंका वर्णन पूर्ण हुआ ।

अकाम्यव्रतोंका वर्णन

अथाकाम्य लक्षणपक्तिसक्षर मेरुपक्तिसक्षर नन्दीश्वर-
पक्तिसक्षर पल्यव्रतविधानमित्यादिकु क्षेत्रम् । आर्पग्रन्थेषु कथा
कोपादियु स्वरूप छातव्यम् । अत्र तु विस्तारभयाद् व्रतन्यते,
इति अकाम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—लक्षणपक्ति, विमानपक्ति, मेरुपक्ति, नन्दीश्वरपक्ति, पल्य
व्रतविधान आदि अकाम्यव्रत हैं । आर्प ग्रन्थ यथाकोप आदिमें इनका
स्वरूप बताया गया है, वहाँसे अवगत करना चाहिए । यहाँ विस्तार
भयसे नहीं लिखा गया है । इस प्रकार अकाम्य व्रतोंका निरूपण समाप्त
हुआ ।

विवेचन—स्वर्गके विमानमें ६३ पटल हैं । एक-एक पटलको
अपेक्षा धार-धार उपग्राम और एक-एक बेली करना चाहिए । इस

प्रकार १३ पट्टोंकी अपेक्षा कुछ २५२ उपवास और ६३ वेला तथा अन्तमें एक तैला करने काही समाप्ति कर ही जाती है। इस प्रकार समाप्त करनेमें ६९० दिन लगते हैं। यह लगभग किया जाता है। यों तो इसका प्रारम्भ किसी भी महीनेमें किया जा सकता है, पर आश्विनमें इसे प्रारम्भ करना अच्छा होता है। यदि आश्विन कृष्ण प्रति पक्षाको आरम्भ किया तो प्रथम उपवास, अनन्तर पारणा, द्वितीय उपवास अनन्तर पारणा, तृतीय उपवास अनन्तर पारणा, चतुर्थ उपवास अनन्तर पारणा, इसके पश्चात् एक वेला उपवास किया आद्यता। इस प्रकार चार उपवास चार पारणाएँ और एक वेला प्रथम पट्ट सम्मधी किये जायेंगे। इसी तरह १३ पट्टोंके उपवास और पारणाएँ होगी, अन्तमें एक तैला कर व्रतका समाप्ति कर ही जाती है। अतः कुल उपवास $१३ \times ४ = २५२$ दिन, ६३ वेला $= १३ \times २ = २६$ दिन, एक तैला $= १$ दिन। $२५२ + २६ + १ = २७९$ उपवासके दिन। पारणाएँ $२५२ + ६३$ वेलाके अनन्तर $+ १$ तैलाके अनन्तर $= ३१६$ पारणा के दिन $२७९ + ३१६ = ५९५$ दिन इस व्रतको पूर्ण करनेमें लगते हैं। इस व्रतके लिए किसी तिथिका विधान नहीं है।

पक्षविधान नाम एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। प्रथम उपवास आश्विन वदी पक्षीको किया जाता है, द्वितीय आश्विन वदी प्रयोगशीको, तृतीय वेला आश्विन सुदी षष्ठादशा और द्वादाशीको की जाती है। इस प्रकार आगे आगे भी उपवास और वेला की जाती है। इस निम्न प्रकार है—

आश्विन वदी	६ तिथि उपवास	सुदी	३	उपवास
" "	१३ उपवास	सुदी	१२	उपवास
" सुदी	११, १२ वेला—	माघ-तीर्थ वदी	११	उपवास
	दो दिनका उपवास	" सुदी	३	उपवास
" सुदी	१४ उपवास	सुदी	१२	उपवास
शुक्ल वदी	१२ उपवास	पौष वदी	२	उपवास

पौष	धदी	अमावस्या	उपवास	ज्येष्ठ धदी	१०	उपवास
"	सुदी	५	उपवास	" "	१३ १४ ३०	तेला-तीन
"	सुदी	७	उपवास			दिनका उपवास
"	पूर्णिमा		उपवास	ज्येष्ठ सुदी	८	उपवास
भाद्र	धदी	४	उपवास	"	१०	उपवास
"		७	उपवास	"	१५	उपवास
"		१४	उपवास	भाद्र धदी	१०	उपवास
"	सुदी	७-८	वेला-दो	" "	१३ १४ ३०	तेला-तीन
			दिनका उपवास			दिनका उपवास
"		१०	उपवास	" सुदी	८	उपवास
फाल्गुन	धदी	५ ६	वेला-दो	" "	१०	उपवास
			दिनका उपवास	" "	१५	उपवास
फाल्गुन	सुदी	१	उपवास	श्रावण धदी	४	उपवास
"		११	उपवास	" "	६	उपवास
चैत्र	धदी	१-२	वेला-दो दिनका	" "	८	उपवास
			उपवास	" "	१४	उपवास
"		४	उपवास	" सुदी	३	उपवास
"		६	उपवास	" "	१५	उपवास
"		८	उपवास	भाद्रों धदी	२	उपवास
"		११	उपवास	भाद्रों धदी	६-७	वेला-दो दिन
"	सुदी	७	उपवास			का उपवास
"		१०	उपवास	"	१२	उपवास
वैशाख	धदी	४	उपवास	भाद्रों सुदी	५-६ ७	तेला-तीन
"	"	१०	उपवास			दिनका उपवास
"	सुदी	२-३	वेला-दो दिनका	" "	९	उपवास
			उपवास	" "	११ १२ १३	तेला-
"	"	७	उपवास			तीन दिनका उपवास
"	"	१३	उपवास	" "	१५	उपवास

इस प्रकार कुल ४८ उपवास, ४ मेल और ६ बेला किये जाते हैं।
अन्य ४८ + १२ + १२ = ७२ उपवास होते हैं। घन्ते दिन गृहा
रम्भका त्याग कर धर्मप्यान पूरक समयको विन्यास जाता है। सोय
अशाम्य व्रतोंका नियम पहले किया ज चुका है।

उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश

अधोनामार्थानि रत्नत्रयगोडशमरणाष्टाद्विदशला
क्षणिकपञ्चकक्ष्याणकमहापञ्चकक्ष्याणकसिंहनिष्पौडितधृतश्रा
वृषजिनेन्द्रमाहात्म्यश्रिलोकम्मारघातिश्रयप्यानपत्तिचारित्र्यशुद्धि
गुणपत्तिप्रसादपरिहारसम्यगपत्तिप्रतिष्ठाकारणमहोरमवादिषानि
मत्तानि उत्तमार्थानि क्षेयानि। एतेषा यिदोऽस्तु आर्यमन्येभ्यो क्षेय।

अर्थ—रत्नत्रय, पौष्टाकारण, भट्टादिका, पञ्चकक्ष्याणक, महापञ्चकक्ष्याणक, सिंहनिष्पौडित, धृतश्रावण, जिनेन्द्रमाहात्म्य, श्रिलोकम्मार, घातिश्रय, प्यानपत्ति चारित्र्यशुद्धि, गुणपत्ति, प्रसादपरिहार, संवमपत्ति, प्रतिष्ठाकारणमहोरमव और सम्यगतमहामव आदि मत्त उत्तमार्थमशुद्ध होते हैं। इनका विनोय व्रतन आर्यमन्योसे अवगत करना चाहिये।

विशेष—धुनवान व्रतम सोरह प्रतिरदाभोंके सोरह उपवास, तीन कूर्त्तयाभोंके तीन उपवास, चार चतुर्थियोंके चार उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, छ वष्टियोंके छ उपवास, सात सप्तमियोंके सात उपवास, आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, नव नवमियोंके नौ उपवास, बीस दशमियोंके बीस उपवास, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास, बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, पन्द्रह पूनमानियाके पन्द्रह उपवास एवं पन्द्रह अमावस्याओंके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

पञ्चकक्ष्याणक नामें अत्र-त्रय चौबीस तीर्थहराके पञ्चकक्ष्याणक हैं, उन उन तिथियोंमें उपवास करने चाहिये।

पञ्चकल्याणक व्रत-तिथि-योधक चक्र

तीर्थंकर	गर्भरक्षणक	जन्मकल्याणक	सुखरक्षणक	ज्ञानरक्षणक	निवाणरक्षणक
१ कृष्णनाथ	आषाढ वदी २	चैत्र वदी ९	चैत्र वदी ९	पाल्गुन वदी ११	माघ वदी १४
२ अजितनाथ	जेष्ठ वदी ३०	पौष सुदी १०	पौष सुदी ९	पौष सुदी ११	चैत्र सुदी ५
३ संभवनाथ	पाल्गुन वदी ८	मार्गशीर्ष सुदी १५	मार्गशीर्ष सुदी १५	फात्तिर वदी ४	चैत्र सुदी ६
४ अभिनन्दननाथ	वैशाख सुदी ६	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६
५ मुनिनाथ	भाद्रपद सुदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख सुदी ९	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
६ पराशर	माघ वदी ६	फात्तिर वदी १३	मार्गशीर्ष वदी १०	चैत्र सुदी १५	पाल्गुन वदी ४
७ गुणाधनाथ	भाद्रपद सुदी ६	जेष्ठ सुदी २२	जेष्ठ सुदी १२	पाल्गुन वदी ६	पाल्गुन वदी ७
८ चन्द्रप्रभ	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी १२	पाल्गुन वदी ७	पाल्गुन वदी ७
९ पुण्ड्रित्त	पाल्गुन वदी ९	मार्गशीर्ष सुदी १२	मार्गशीर्ष सुदी १२	फात्तिर सुदी २	भाद्रपद सुदी ८
१० शीतलनाथ	चैत्र वदी ८	पौष वदी १२	पौष वदी १२	पौष वदी १४	आश्विन सुदी ८

धैर्यान्तनाथ	ज्येष्ठ वदी ६	पान्नाग वदी ११	पाल्गुन वदी ११	माघ वदी ३०	श्रावण सुदी १५
वागुपुज्य	आषाढ सुदी ६	पाल्गुन वदी १४	पाल्गुन वदी १६	माघ सुदी २	भाद्रपद सुदी १४
पय	ज्येष्ठ वदी १०	पौष सुदी ४	पौष सुदी ४	माघ सुदी ६	आषाढ वदी ८
पय	प्रातः वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी ३०	चैत्र वदी ३०
पय	वशाख सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी ४
धान्तिनाथ	भाद्रपद वदी ७	ज्येष्ठ वदी १६	ज्येष्ठ वदी ४	पौष सुदी १२	ज्येष्ठ वदी १४
पुत्रनाथ	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १
अरुहनाथ	पाल्गुन सुदी ३	मागहाय सुदी १४	मागहाय सुदी १०	प्रातः सुदी १२	चैत्र वदी ३०
मरिचपय	चैत्र सुदी १	मागशीप सुदी ११	मागशीप सुदी ११	मागशीप सुदी ११	प्रातः सुदी ५
मुनिमुत्रताथ	श्रावण वदी २	चैत्र वदी १०	वशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	प्रातः सुदी १२
नमिनाथ	आश्विन वदी २	आषाढ वदी १०	आषाढ वदी १०	मागशीप सुदी ११	वैशाख वदी १६
नेमिनाथ	प्रातः सुदी ६	मागशीप सुदी ६	श्रावण सुदी ६	आश्विन सुदी १	आषाढ सुदी ७
पार्श्वनाथ	वैशाख वदी ३	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी ७
वीर	आषाढ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	प्रातः वदी १३	वैशाख सुदी १०	प्रातः वदी ३०

मुनिमुत्रताथ - १६ - १७ - १८ - १९ - २० - २१ - २२ - २३ - २४ - २५ - २६ - २७ - २८ - २९ - ३०

पञ्चपरमेष्ठी व्रत

अरिहन्तके ६४ गुणोंके लिपु चार चतुर्धिया के चार, आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, बीस दशमियों के बीस उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास किये जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठीके आठ मूल गुणके आठ अष्टमियोंके आठ उपवास किये जाते हैं। आचार्य के ३६ मूल गुणोंके लिपु बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, छ पष्ठियोंके छ उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, दस दशमियोंके दस उपवास और तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ३६ उपवास किये जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठाके २५ मूल गुण होते हैं, उनके लिपु ग्यारह द्वादशियोंके ग्यारह उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। साधु परमेष्ठाके २८ मूल गुण हैं। इनके लिपु पन्द्रह पञ्चमियोंके पन्द्रह उपवास, छ पष्ठियोंके छ उपवास एवं सात प्रतिपदाओंके सात उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ उपवास करनेका विधान है। जिस परमेष्ठीके मूल गुणोंके उपवास किये जा रहे हों, व्रतके दिन उस परमेष्ठाके गुणोंका चिंतन करना तथा 'ॐ ह्रीं अर्द्धदुभ्यो नम, ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नम, ॐ ह्रीं आचार्येभ्यो नम, ॐ ह्रीं उपाध्यायेभ्यो नम, ॐ ह्रीं सर्वेसाधुभ्यो नम।' का प्रमश जप करना चाहिए।

सर्वार्थसिद्धि व्रत

कार्तिक सुदी अष्टमीसे लगातार आठ दिन उपवास किये जाते हैं तथा कार्तिक सुदी सप्तमीका ण्काशन कर मागशीर्ष वदी प्रतिपदाको भी पुनः ण्काशन करनेका विधान है। इस व्रतमें लगातार आठ दिनतक उपवास करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें 'श्रीसिद्धाय नम' मन्त्रका जप किया जाता है।

धर्मचक्र व्रत

धर्मचक्र व्रत २२ दिनोंमें पूर्ण होता है। इसमें १६ उपवास और ६ पारणायें सम्पन्न होती हैं। प्रथम उपवास, पारणा, पश्चात् दो उप-

वास पारणा, अनन्तर तीन उपवास पारणा, तत्पश्चात् चार उपवास पारणा, पश्चात् पाँच उपवास पारणा एवं अन्तमें एक उपवास और पारणा की जाती है। घर्मचक्र व्रतके दिनमें 'ॐ ह्रीं अरिहन्तधर्म चक्राय नमः' मन्त्रका जाप गुग्गुलु और धूप देकर किया जाता है।

नवमिधि व्रत

नवमिधि व्रतमें २१ उपवास किये जाते हैं। चौदह चतुर्दशियोंके चौदह, नौ नवमियोंके नौ, तीन तृतीयाओंके तीन एवं पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर एकाग्रता करनेका विधान है। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अक्षयनिधिप्राप्तेभ्यो जिनेन्द्रेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है।

शील व्रत

शील व्रत एक वर्षमें पूरा किया जाता है। वर्षके १६० मिनोमें एकान्तरसे उपवास करने चाहिये। सम्पूर्ण शालका पालन करना इस व्रतके लिए अनिवार्य है। यात यह है कि बेबी, मनुष्यणी, तिर्यङ्गणी और अचेतन इन चार प्रकारकी स्त्रियोंको पाँच इन्द्रिय तथा मन, पचन, काय और कृत कारित अनुमादनासे गुणा कर तो १८० दिन उपवास के आते हैं। अर्थात् $४ \times ५ \times ३ \times ३ = १८०$ दिन उपवास और १८० दिन पारणा की जाती है अतः वर्ष भर एकान्तर रूपसे उपवास और एकाग्रता करने चाहिये। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं समस्तशीलव्रतमण्डिताय धीजिनाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिये।

श्रेयन किया व्रत

इस व्रतमें श्रावकके आठ मूल गुणोंकी विशुद्धिके निमित्त आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, पाँच अनुव्रताकी विशुद्धिके लिए पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास तीन गुणव्रताकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीयाओंके तीन उपवास चार शिक्षाव्रताकी विशुद्धिके लिए चार चतुर्दशियोंके चार उपवास, बारह तपाकी विशुद्धिके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, साम्य

भावनी प्रासिके निमित्त एक प्रतिपदाका उपवास , ग्यारह प्रतिमाओंकी विशुद्धिके लिए ग्यारह एकादशियाँके ग्यारह उपवास , चार प्रकारके दानोंके देनेके निमित्त चार चतुर्थियोंके चार उपवास , जल छाननेकी क्रियाकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास तथा निशिभोजन त्यागकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास एवं रत्नत्रयकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीया तिथियोंके तीन उपवास , इस प्रकार कुल ५३ उपवास किये जाते हैं । इसके दिनोंमें जमोकारमन्त्रका जाप प्रतिदिन १००८ बार वा कमसे कम तीन मालाओं प्रमाण करना चाहिए । व्रतके दिनोंमें भी दीहव्रतका पालन करना आवश्यक है ।

कर्मचूर व्रत

कर्मचूर या कर्मक्षय व्रत २९६ दिनोंमें पूरा किया जाता है । इस व्रतमें १४८ कर्मप्रकृतियाँको भष्ट करनेके निमित्त १४८ उपवास किये जाते हैं । प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है । यह व्रत लगातार २९६ दिनतक वृकान्तर रूपसे उपवास और पारणाका क्रम लगाकर किया जाता है । व्रतके दिनमें 'ॐ सर्गकर्मरहिनाय सिद्धाय नमः' अथवा जमोकार मन्त्रका जाप करनेका नियम है । व्रतके दिनाभ पाँच अशुभव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं सम्यक् तपका आचरण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेका विधान है ।

लघु सुखसम्पत्ति व्रत

इस व्रतमें १२० उपवास किये जाते हैं । प्रतिपदाका एक, दा द्वितीयाओंके दो, तीन तृतीयाओंके तीन, चार चतुर्थियोंके चार, पाँच पञ्चमियोंके पाँच, छ षष्ठियोंके छ, सात सप्तमियोंके सात, आठ अष्टमियोंके आठ, नौ नवमियोंके नौ, दश दशमियोंके दश, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह, बारह द्वादशियोंके बारह, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह एवं पन्द्रह पूणमासियोंके पन्द्रह इस प्रकार एक सौ बीस उपवास सम्पन्न किये जाते हैं । $1+2+3+4+5+6+7+8+9+10+11+12+13+14+15=120$ उपवास । उपवासके दिनोंमें

आयस्क के उत्तरगुणों का वाटन और शीतप्रत धारण करना आवश्यक है ।

चारहसौ चाँतीस व्रत या चारित्रशुद्धि व्रत

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदामे आरम्भ होता है, हममें १२३४ उपवास तथा एकदास कर पड़ते हैं । इस वर्ष और माते तीन माहमें पूर्ण किया जाता है । यदि एकान्तर व्रत किया जाय तो पाँच वर्ष बँने दो माहमें पूर्ण होता है । उपवासके अनन्तर पारणामे दिन रम त्याग कर पा नीरस भोजन करे, आरम्भ परिग्रहवा त्याग कर भक्ति पूजामें निमग्न रहे । 'ॐ ह्रीं असि आ उ सा चारित्रशुद्धियतेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन १०८ बार दिनमें तीन बार करे और व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करनेका विधान है ।

इष्टसिद्धिकारक निःशल्थ अष्टमी व्रत

भादों सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहर अभिषेक और पूजन करे । दिनमें बार बार पूजन और अभिषेक किये जाते हैं । त्रिकाल सामायिक और स्वाध्याय करने चाहिये । रातको जागरणपूर्वक स्तोत्र भजन पड़ते हुए बिताना चाहिये । पश्चात् नवमीको अभिषेक पूजन करके अनिषिकी भोजन कराके स्वयं भोजन करे । चारों प्रकारके मद्यको चतुर्विध दान देना चाहिये । यह व्रत १९ वर्षतक किया जाता है, तत्पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है । इस व्रतका विधिपूर्वक वाटन करनेसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

कोकिलापञ्चमी व्रत

आषाढ वदी पञ्चमीमे पाँच मासतक प्रत्येक ऋणपक्षकी पञ्चमीको पाँच वर्षतक यह व्रत किया जाता है । इस व्रतमें उपवासके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर पूजन, अभिषेक, सास्त्र स्वाध्याय एवं धर्म

ध्यान करने चाहिए। 'ओं ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप इस व्रतमें करना चाहिए।

जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत

अरेहन्त भगवान्के गुणोंका चिन्तन करते हुए दस जन्म, दस कैवल्यके अतिशयके कारण बीस दशमियाको बीस उपवास, देवव्रत चौदह अतिशयके कारण चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, आठ प्रतिहार्यके कारण आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, सोलह कारण भावनाकी प्राप्तिके लिए सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, पञ्चरक्षाणकी प्राप्ति के निमित्त पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, इस प्रकार कुल २० दशमी + १४ चतुर्दशी + ८ अष्टमी + १६ प्रतिपदा + ५ पञ्चमी = ६३ प्रोपधोपवास किये जाते हैं।

गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश

उतादानव्रतत्याग कार्यो गुरुसमक्षत ।

नो चेत्तन्निष्फलं श्रेयं कुतः शिक्षादिषु भवेत् ॥

यो स्वयं व्रतमादत्ते स्वयं चापि विमुञ्चति ।

तद्व्रतं निष्फलं श्रेयं साध्याभावात् कुतः फलम् ॥

गुरुप्रदिष्टं नियमं सर्वकार्याणि साधयेत् ।

यथा च मृत्तिकाद्वारेण विद्यादानपरो भवेत् ॥

गुर्यभावात्तथा त्यक्तं व्रतं किं कार्यं क्व भवेत् ।

त्रैलोक्यं मृत्तिकावेक्ष्य किं कुर्यात् फलं वर्जितम् ॥

अतो व्रतोपदेशस्तु ग्राह्यो गुर्वाननात् यत्तु ।

त्याज्यश्चापि विशेषेण तस्य साक्षितया पुनः ॥

क्रममुल्लङ्घ्य यो नारी नरो वा गच्छति स्वयम् ।

स एव नरकं याति जिनाङ्गागुह्यलोपतः ॥

इति आचार्यसिंहनन्दिर्विरचितं व्रततिथिनिर्णय समाप्तः ॥

अर्थ—गुरुके समक्षसे ही व्रतोंका ग्रहण और व्रतोंका त्याग करना चाहिए। गुरुकी साक्षीके बिना ग्रहण किये और त्यागने व्रत निष्फल

होते हैं, भन उन प्रतीने धन धन्य, पिशा आदि वगकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो स्वयं प्रतीको ग्रहण करता है और स्वयं हो प्रतीका मोद देता है, उसके प्रत निष्पन्न हो जाते हैं। गुप्तकी माक्षी न होनेसे प्रतीका क्या बन होगा ? अर्थात् गुप्त भी नहीं। गुप्त्य यथाविधि ग्रहण किये गये प्रत निष्पन्न ही सभी कार्योंको सिद्ध कर सकते हैं। जैसे मिल राव होणाचर्यकी मिश्रीकी मूर्ति बनकर उमे गुप्त मानकर विद्या-साधन करता था, उमे दृष्ट श्रुतिकामय गुप्तकी कृपासे विचारों मिद्ध हो गयी थीं, इस प्रकार गुप्तकी कृपासे ही मन मण्डल होते हैं। बिना गुप्तकी भावनाके ग्रहण किये गये मन कुछ भी वायकारी नहीं हो सकते हैं। द्रव्य मिश्रीका घर बिना कक्षाके निरर्थक है, उसी प्रकार गुप्तके साक्ष्यके बिना स्वयं प्रत भी निष्पन्न है। अतएव गुप्तके मुख्यम प्रतीको ग्रहण करना चाहिए तथा उन्हींकी माक्षी पूर्वक प्रतीका छोड़ना चाहिए। जो स्त्री या पुत्र्य क्रमका उदरधन कर स्वेच्छाम्य मन करते हैं, व गुप्तका भगवेलता एवं जिनालाका लोप करनेके कारण मरकमें पाते हैं।

नियोजन—मन सर्वदा गुप्तके सामने आकर ग्रहण करने चाहिए। यदि गुप्त न मिले तो किसी तत्पन्न विद्वान्, प्रज्ञाचारी, प्रती या अन्य घमांगमाले प्रत लेना चाहिए। तथा प्रतीको गुप्त या विद्वान्, प्रज्ञाचारीके समक्ष छोड़ना भी चाहिए। यदि गुप्त, विद्वान्, प्रज्ञाचारी न दिका साक्षिण्य भी प्राप्त न हो सके तो जिने द्र भगवान्की प्रतिमाके सामने ग्रहण करने तथा छोड़ने चाहिए। बिना साक्ष्यके प्रतीका यथावत् बन प्राप्त नहीं होता है। गाल्हाभ एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक सेदरे मरान धन रहा था, उसमें ईंट, चूना, मीमेण्ट होनेका काय बह मजदूर कर रहे थे। एक मजदूर सुरक्षाप बिना अपना नाम लिखाये काम करने लगा, दिन भर कठोर धम किया। सन्ध्या समय जब सबको मजदूरी दी जाने लगी तो वह परिश्रमी मजदूर भी मुनीमके सामने पहुँचा और कहने लगा—सरकार मैंने दिनभर सबसे अधिक धम किया है, अत मुझे अधिक मजदूरी मिलना चाहिए। मुनीमने रजिस्टरस मिलाकर सभी नामदर्न

मजदूरोंको मजदूरी दे दी, परन्तु जिसने कठोर श्रम किया और अपना नाम रजिस्ट्रम दर्ज नहीं कराया था, उसे मजदूरी नहीं दी। मुनीमने साफ माफ़ कह दिया कि तुम्हारा नाम रजिस्ट्रम में नोट नहीं है, अतः तुम्हें मजदूरी नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार जिन्होंने गुम्मी साक्ष्यसे व्यत ग्रहण नहीं किया है, उनके फलकी प्राप्ति नहीं होती है, अथवा अथर्व फल मिलता है। अतएव स्वेच्छासे कभी भी व्यत ग्रहण नहीं करने चाहिए।

इस प्रकार आचार्यसिंहनन्दिचिरचित व्यतिथिनिर्णय समाप्त हुआ।

ज्ञानपीठके महत्वपूर्ण प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक		कविता	
भारतीय विचारधारा	२)	वदमान [महाकाव्य]	५)
अध्यात्म-वदायरी	४४)	मिथुन-धामिनी	४)
कुन्दकुन्दासायदे तीन रत्न	२)	पूषके धान	३)
वैदिक साहित्य	१)	मेर बाबू	२॥)
जैन-आमन [द्वि० सं०]	२)	पंच प्रदीप	३)
उपन्यास, कदानियाँ		आधुनिक जैन-कवि	२४)
मुक्तिदूत [उपन्यास]	५)	ऐतिहासिक	
समयके बाद	३)	नगदरोंका वैभव	६)
गहरे पाना पैर	२॥)	नोत्रडी पगडिन्धियाँ	७)
आकाशके तारे धानीके धूर	१)	चातुर्विध कुमारपाल	४)
पहला कहानीकार	२४)	कालिदासका भारत [भाग १]	८)
सुन्दर-सिद्धिने	२)	हिन्दी जैन-साहित्य का स०	
अतनके कपन	३)	इतिहास	२४२)
जिन स्त्रोत्रा तिन पाइयो	२॥)	हिन्दी जैन-साहित्य परिसीलन	
नये बादल	२॥)	[दो भाग]	५)
उदु-दायरी		ज्योतिष	
सोरो सायरी [द्वि० सं०]	८)	भारतीय ज्योतिष	५)
सोरो सुवन [पाँचों भाग]	२०)	केचन-आमप्रशन-वदामणि	४)
संस्मरण, रेखाचित्र		करकभषण [सांमुद्रिक शास्त्र]	४)
हमारे भाराध्य	३)	नाटक	
संस्मरण	३)	रत्नरश्मि	२॥)
रेखा-चित्र	४)	रुडिया नाट्यशिरष	२॥)
जैन-आगरणके भद्रदूत	५)	और साईं बदती गई	२॥)
		पचपनका पेर	२॥)

विविध

द्विवेदी-यत्रावली	२॥॥
जिन्दगी सुसकराइ	४॥
ध्वनि और सगात	४॥
हिन्दू विवाहमें कन्यादान का स्थान	१॥
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	४॥
शरत्के नारीपात्र	४॥॥
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	२॥॥

सिद्धान्तशास्त्र

महाबन्ध [भाग १]	१२॥
महाबन्ध [भाग २ ३ ४ ५]	४४॥
तत्त्वार्थशुक्ति	१६॥
तत्त्वार्थराजवातिक [भाग १]	१२॥
समयमार [अंग्रेजी]	८॥
सवाधसिद्धि	१२॥

स्तोत्र, आचार

षसुनन्दिश्रावकाचार	५॥
जिनसहस्रनाम [स्तोत्र]	४॥

चरित

आदिपुराण [भाग १]	१०॥
आदिपुराण [भाग २]	१०॥
उत्तरपुराण	१०॥
पुराणसारसंग्रह [भाग १ २]	४॥
धर्मशर्माभ्युदय [धर्मनाथ-चरित]	३॥
जातकदृष्टका [पाली भाषा]	९॥

काव्य, न्याय

न्यायविनिश्चयविवरण [भाग १]	१५॥
न्यायविनिश्चयविवरण [भाग २]	१५॥
मदनपराजय [काव्य]	८॥

कोष, छन्दशास्त्र

नाममाला समाप्य	३॥॥
समाप्यरत्नमञ्जूषा [छन्दशास्त्र]	२॥

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

